गगनांचल

विदेश में हिन्दी

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

गगनांचल

विशेषांक

विदेश में हिंदी

गगनांचल

विशेषांक

विदेश में हिंदी

अतिथि सम्पादक

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा

भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्
नई दिल्ली

प्रकाशक

कुमार तुहिन
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,

प्रथम संस्करण : 2024

अतिथि संपादक

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002
ई-मेल : spd-hindi@iccr.gov.in; pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal पर क्लिक करें।

मूल्य (विशेषांक) : ₹ 750 यू.एस. $ 20

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	: ₹	500	यू.एस.	$	100
त्रैवार्षिक	: ₹	1200	यू.एस.	$	250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृति संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की ज़िम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद् की नहीं।

मुद्रक: सीता फाइन आर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड
ए-16, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया फेज-2, नई दिल्ली-110028 (इंडिया)
फोन : +91-9811406880; ई-मेल : sitafinearts@gmail.com

विदेश मंत्री
भारत

सत्यमेव जयते

Minister of External Affairs
India

मंगलकामना

भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली, विश्व के विविध देशों के बीच सांस्कृतिक समझ को विकसित कर सौहार्द और सद्भाव बढ़ाने के लिए कार्य करती है।

बहुभाषी भारत की प्रमुख भाषा हिंदी भारतीय गणतंत्र की संविधान स्वीकृत राजभाषा होने के साथ ही देश की विविध भाषाओं के बीच संपर्क भाषा के रूप में भी प्रयोग होने वाली देश की प्रधान भाषा है। विदेश में बसे हुए भारतीयों और भारतीय मूल के विदेशियों के बीच भी हिंदी भारतीय अस्मिता की प्रतीक भाषा सदियों से बनी हुई है और इसकी सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए प्रवासी भारतीय निरंतर सचेष्ट और प्रयत्नशील भी है।

जब देश की प्रतिष्ठा विश्व में बढ़ती है तो देश की भाषा के प्रति भी सम्मान बढ़ता है। पिछले दो दशकों में भारत विश्व पटल पर एक शक्तिशाली प्रभुता संपन्न राष्ट्र के रूप में उभरा है जिससे भारत की भाषा हिंदी के प्रति भी सभी देशों में गहन रुचि बढ़ी है और विदेश में विविध स्तरों पर हिंदी सीखने और सिखाने के लिए प्रयास हो रहे हैं क्योंकि भाषा के माध्यम से ही देश के हृदय तक पहुंचा जा सकता है।

मुझे प्रसन्नता है कि भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् ने अपनी हिंदी पत्रिका 'गगनांचल' के 'विदेश में हिंदी' विशेषांक निकालने की बात सोची। मुझे विश्वास है कि परिषद् का यह विशेषांक पाठकों को विदेश में हिंदी की वास्तविक स्थिति से तो परिचित कराएगा ही, विदेशी विद्वानों का हिंदी के माध्यम से भारत के प्रति बढ़ते लगाव का भी बोध कराएगा।

(डॉ. सु. जयशंकर)

172, South Block, New Delhi-110011 Tel : 91-11-23011127, 23011165 E-mail: diream@mea.gov.in

प्रकाशक की ओर से

मेरी दृष्टि

भारतीय अस्मिता की पहचान है हिंदी

भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् द्वारा प्रकाशित हिंदी द्वैमासिक पत्रिका 'गगनांचल' हिंदी के माध्यम से विश्व के अनेक देशों को जोड़ने का महत्वपूर्ण काम दशकों से करती आ रही है। वर्ष 2004 में परिषद् के अनुरोध पर देश के लब्धप्रतिष्ठ भाषा वैज्ञानिक डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा ने 'गगनांचल' के विशेषांक 'विदेश में हिंदी' का सम्पादन किया था जो 'पूर्वार्ध' और 'उत्तरार्ध' दो खण्डों में प्रकाशित हुआ था, और बहुत लोकप्रिय हुआ था।

2004 और 2024 के बीच दो दशकों से भी अधिक समय के अंतराल में हिंदी बहुत सुदृढ़ हुई है, और आज के वैश्विक परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति बता रही है। इसलिए परिषद् ने 'विदेश में हिंदी' शीर्षक से नये विशेषांक की बात सोची। मुझे प्रसन्नता है कि परिणाम स्वरूप डॉ. विमेलश कान्ति वर्मा के ही संपादन में 'गगनांचल' का नया विशेषांक 'विदेश में हिंदी' नये कलेवर में पाठकों के लिए अब उपलब्ध है।

प्रस्तुत विशेषांक का स्वरूप पिछले विशेषांक से पाठकों को पर्याप्त अलग लगेगा। ऐसा इसलिए क्योंकि हिंदी केवल पारंपरिक साहित्य और कविता तक ही सीमित नहीं है, अपितु आज यह विज्ञान, प्रौद्योगिकी, व्यापार और सोशल मीडिया जैसे आधुनिक क्षेत्रों में भी अपना स्थान बना रही है। हिंदी का सतत प्रसार यह दर्शाता है कि यह केवल संवाद का माध्यम नहीं बल्कि एक जीवंत और आधुनिक अभिव्यक्ति का साधन है, जो अपनी जड़ों से जुड़े रहते हुए भी बदलते समय के साथ खुद को ढाल रही है। श्रुति भी कहती है कि सुभाषितों के लिए प्रतिदिन नये और उनसे भी नये रास्ते बना और उन रास्तों को सुरुचिकर (नव नवोन्मेषकारी) बना जैसे पूर्व में विद्वज्जन बनाते आये हैं–''नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साध्यापथ: प्रत्नवद: रोचयारूच:'' (ऋग्वेद-9/9/8)।

मैं आशा करता हूँ कि यह 'विदेश में हिंदी' विशेषांक 'गगनांचल' के पाठकों को विदेश में हिंदी के विस्तृत होते आकाश का परिचय तो देगा ही हिंदी के चतुर्मुखी विकास के अध्ययन-अनुसंधान के लिए प्रेरित भी करेगा।

(कुमार तुहिन)

महानिदेशक, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्,आज़ाद भवन, नई दिल्ली।

सम्पादकीय

'सद्भाव' और 'समभाव' की भाषा हिंदी

पिछले दो दशकों में भारत की छवि विदेश में एक सशक्त और सम्पन्न राष्ट्र के रूप में उभरने से हिंदी को वैश्विक प्रतिष्ठा मिली है और हिंदी का चतुर्मुखी विकास हुआ है। अब भारत दूसरे संपन्न देशों का अनुगामी नहीं है, उसकी विकास की अपनी दृष्टि है, अपना सशक्त प्रशासन तंत्र है और अपने विकास की राह खोजने के लिए भारत अब किसी प्रभुता संपन्न राष्ट्र पर निर्भर भी नहीं है। यही कारण है कि विदेश में हिंदी अध्ययन और अनुसंधान के अब नए क्षेत्र खोजे जा रहे हैं और व्यापक स्तर पर हिंदी की यांत्रिक सुविधाओं का विकास भी हो रहा है।

जब देश शक्तिशाली होता है, आत्म निर्भर होता है तो विश्व में उसकी साख भी बढ़ती है और प्रभावशाली राष्ट्र को समझने के लिए, उससे निकटता स्थापित करने के लिए भाषा का माध्यम सबसे अधिक कारगर होता है। पहले विदेश की भारत में रुचि का कारण भारत का ऐतिहासिक वैभव और ज्ञानबोध होता था, आज उस अतीत के वैभव के साथ ही भारत की सुदृढ़ सामरिक शक्ति, वैज्ञानिक मेधा और वाणिज्यिक क्षमता ने विदेश में भारत का मान बढ़ाया है जिसके परिणाम स्वरूप हिंदी का भी विदेश में सम्मान बढ़ा है। विदेश में बसे हुए प्रवासी भारतीयों की सामाजिक प्रभुता के कारण भी हिंदी की विदेश में छवि बदली है।

हिंदी, भारत की संविधान स्वीकृत राजभाषा और सम्पूर्ण देश की संपर्क भाषा है। संख्याबल की दृष्टि से हिंदी विश्व की दूसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विदेश में बसे हुए विभिन्न भाषा भाषी भारतीयों के मध्य हिंदी संपर्क भाषा के साथ ही भारतीय अस्मिता की प्रतीक भाषा भी बन गई है। विशाल भारत के अंतरतम तक पहुँचने और उसे समझने के लिए भी हिंदी एक महत्वपूर्ण भाषा है।

भारत की केन्द्रीय भाषा होने के कारण हिंदी सम्पूर्ण भारत के लिए वाणिज्य और व्यापार की, राजनीति की, मनोरंजन की और जनसंपर्क की भाषा है। यही कारण है कि

भारत के प्रधान मंत्री महामहिम नरेंद्र मोदी विदेश में विभिन्न भाषा भाषी और विविध ज्ञान क्षेत्रों से जुड़े हुए भारतीयों के मध्य 'मन की बात' हिंदी में ही करते हैं।

दो देशों के मध्य कूटनीतिक संबंधों की सुदृढ़ता में पारस्परिक सौहार्द के लिए दो देशों के सांस्कृतिक सम्बन्ध की भूमिका महत्वपूर्ण देखी गई है। भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के अधीन स्वायत्त संस्था भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हिंदी द्वैमासिक पत्रिका 'गगनांचल' हिंदी के माध्यम से विश्व के अनेक देशों को जोड़ने का महत्वपूर्ण काम दशकों से करती आ रही है। वर्ष 2004 में परिषद् के अनुरोध पर मैने 'गगनांचल' के विशेषांक 'विदेश में हिंदी' का सम्पादन किया था जो पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो खण्डों में (पृष्ठ 452) प्रकाशित हुआ था, विद्वत्वर्ग में बहुत लोकप्रिय हुआ था और एक सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में उसका प्रयोग होता रहा और बहुत शीघ्र ही पाठकों के लिए वह विशेषांक अनुपलब्ध भी हो गया। 2004 और 2024 के बीच दो दशकों से भी अधिक समय के अंतराल में देश और विदेश में हिंदी बहुत सुदृढ़ हुई है, हिंदी की व्याप्ति विदेशों में बहुत बढ़ी है, इसलिए परिषद् ने 'विश्व में हिंदी' शीर्षक से नए विशेषांक की बात सोची।

प्रस्तुत विशेषांक का स्वरूप पिछले विशेषांक से पाठकों को पर्याप्त अलग लगेगा। समय बदला, दृष्टि बदली, अध्ययन अनुसंधान के नए आयाम खुले, स्वाभाविक था कि विदेश में हिंदी का विस्तार हुआ। देश ने भी इन दो दशकों में अपना स्वभाव बदला, रीति नीति बदली और हिंदी का विदेश में चतुर्मुखी विकास हुआ। हिंदी अब इन दो दशकों में एक सशक्त, विकसित राष्ट्र की भाषा बनी।

इस विशेषांक की सामग्री पांच खण्डों में वर्गीकृत है।

पहला खंड **'हिंदी की प्रासंगिकता : विदेश में'** है। इस खंड में विदेश में कार्यरत विशिष्ट विदेशी हिंदी विद्वान अपने देश में हिंदी की प्रासंगिकता की, अपेक्षा, उपेक्षा की चर्चा करते हैं, विकास मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ और चुनौतियां क्या हैं, किस तरह विदेश में हिंदी का विकास हो, इसकी बात करते हैं। इस खंड का संयोजन सुनंदा वर्मा ने किया है। मेरे निर्देशन में विद्वानों से सम्पर्क कर लेख प्राप्त करना, अंग्रेज़ी में प्राप्त लघु लेखों का हिंदी अनुवाद उनका दायित्व रहा है।

दूसरे खंड में **'विदेश में हिंदी: स्थिति और संभावनाएं'** विषय से जुड़े भारतीय विद्वानों के आलेख हैं जो विभिन्न देशों में हिंदी की वर्तमान स्थिति और संभावनाओं पर चर्चा करते हैं।

तीसरे खंड **'हिंदी : विविध प्रसंग'** में विदेश में हिंदी के विविध पक्षों पर चर्चा है। विदेश में हिंदी पत्रकारिता, विदेशी भाषा के रूप में हिंदी की चुनौतियां, विदेशी भाषा में अनूदित हिंदी साहित्य, रामचरित मानस की विश्व व्याप्ति पर चर्चा है।

चौथा खंड **'साहित्य संचयन'** खंड है। इस खंड में प्रमुख दिवंगत विदेशी रचनाकारों की रचनाएँ संकलित हैं जो भारतीय पाठकों को उनकी रचना शैलियों, काव्य विषय से तो परिचित करायेंगी ही हिंदी के प्रति उनकी निष्ठा और सम्मान का परिचय भी देंगी। प्रभूत उपलब्ध साहित्यिक सामग्री से उपयुक्त रचनाओं का चयन और सम्पादन सुनंदा वर्मा ने मेरे निर्देशन में किया है। इन कवियों की रचनाओं से हिंदी जगत आज भी विशेष परिचित नहीं है।

पांचवां खंड **'आकलन-नई किताबें'** समीक्षा खंड है जिसमें पिछले पांच वर्षों में प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों की विद्वानों द्वारा समीक्षाएं हैं।

'गगनांचल' का यह 'विदेश में हिंदी' विशेषांक अपनी गरिमा के अनुकूल एक महत्वपूर्ण विशेषांक बन सके इसके लिए देश और विदेश के अनेक हिंदी विद्वानों का मुझे सहयोग मिला है। मैं उन सभी का हृदय से आभारी हूँ जिनके सहयोग के बिना इस अल्पावधि में विशेषांक तैयार करना एक कठिन कार्य था। विशेषांक के प्रारम्भ में कविश्रेष्ठ पद्मश्री अशोक चक्रधर जी की कविता 'सद्भावना' कवि के हस्तलेख में दी गई है। इस हस्तलिखित कविता के प्रकाशन की अनुमति के लिए मैं प्रोफ़ेसर चक्रधर का आभारी हूँ। विश्व में हिंदी का प्रचार-प्रसार वैश्विक सद्भावना आधारित है यही कारण है कि विश्व में हिंदी का प्रसार निरंतर हो रहा है। भूगोल, व्यक्ति और देश को बांटता है जबकि भाषायी सद्भावना पारस्परिक स्नेह को स्थायी बनाने में महती भूमिका निभाती है। मैं वरिष्ठ पत्रकार सुनंदा वर्मा का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने 'हिंदी की प्रासंगिकता : विदेश में' के संयोजन तथा 'साहित्य संचयन' खंड के सामग्री संचयन में, अंग्रेज़ी में प्राप्त सामग्री के हिंदी अनुवाद में तथा विशेषांक की प्रेस कॉपी तैयार करने में मुझे पूरा सहयोग दिया है।

'विदेश में हिंदी' विषय की परिधि बहुत व्यापक है और विदेश में हिंदी भाषा और साहित्य पर विविध दृष्टि से बहुत कार्य भी हो रहा है। अंक के वैशिष्ट्य को देखते हुए देश

और विदेश के अनेक विद्वान विविध विषयों पर लेख के लिए आमंत्रित किये जा सकते थे पर अंक की आकार सीमा के कारण सम्पादक को अपने को बहुत सीमित रखना पड़ा है।

निवेदन है कि इस विशेषांक में सम्मिलित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के हैं और उनसे सम्पादक का और परिषद् का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

मैं भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली के महानिदेशक श्री कुमार तुहिन का आभारी हूँ जिन्होंने विषय के महत्व को समझा और विदेश में हिंदी के स्वरूप और विकास की बात पर नए सिरे से विमर्श करने की बात सोची और यह गुरु दायित्व मुझे सौंपा। मैं परिषद् के उपमहानिदेशक और प्रख्यात साहित्यकार श्री अभय कुमार का तथा परिषद् के वरिष्ठ प्रकाशन अधिकारी श्री अशोक जाजोरिया का उनके मार्ग दर्शन और सहयोग के लिए आभारी हूँ।

अंत में मैं यह रेखांकित करना चाहता हूँ कि हिंदी 'सद्भाव' और 'समभाव' की भाषा है। हिंदी के विश्व व्यापी स्वरूप से हम सब परिचित है। लोकनय की दृष्टि से हिंदी सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बांधने में सकारात्मक भूमिका आज निभा रही है।

विमलेश कान्ति वर्मा
अतिथि संपादक
vimleshkanti@gmail.com
www.vimleshkanti.org

14 सितंबर 2024
हिंदी दिवस

विषय-क्रम

हस्तलेख–हिंदी का सद्भावना गीत	पद्मश्री प्रोफ़ेसर अशोक चक्रधर	19
अग्रलेख–छोटे छोटे भारत	चेतना वशिष्ठ	20

खंड- एक
हिंदी की प्रासंगिकता: विदेश में
संयोजन-सुनंदा वर्मा

अमरीका	सुरेन्द्र गंभीर	31
अमरीका	पीटर नैप्सिक	33
ऑस्ट्रेलिया	पीटर फ्रीडलैंडर	36
इंडोनेशिया	धर्मयश	38
उज्बेकिस्तान	बायोट रख्मातोव	41
जापान	ताकाहाशी आकीरा	43
जापान	हिदेआकी इशिदा	45
डेनमार्क	एल्लार रेनर	47
डेनमार्क	विवेक शुक्ल	49

थाईलैंड	पैतून सांग्केओ	50
दक्षिण अफ़्रीका	उषा देवी शुक्ला	53
न्यूज़ीलैण्ड	सुनीता नारायण	55
फ़ीजी	सुभाषनी लता कुमार	59
बुल्गारिया	बोरिस्लाव कोस्तोव	61
मॉरीशस	बीरसेन जागासिंह	63
स्विटज़रलैंड	निकोला पोत्ज़ा	67
फ़ीजी	सुब्रमनी	69
जापान	हीरोको नागासाकी	71

खंड- दो
विदेश में हिंदी : स्थिति और संभावनाएं

अमरीका	कुसुम नैप्सिक	75
कनाडा	हंसा दीप	86
चीन	विवेकमणि त्रिपाठी	93
जापान	हरजेन्द्र चौधरी	101
डेनमार्क व स्कैंडिनेविया	अर्चना पेन्यूली	112
दक्षिण अफ़्रीका	सुनंदा वर्मा	121
नेपाल	संजीता वर्मा	130
फ़ीजी	मनीषा रामरक्खा	144

बुल्गारिया	देवेन्द्र शुक्ल	153
बांग्लादेश	पूनम गुप्त	160
मॉरीशस	अलका धनपत	164
रूस	हेम चन्द्र पाण्डेय	172
सूरीनाम	भावना सक्सैना	186

खंड-तीन
हिंदी : विविध प्रसंग

हिंदी प्रचार-प्रसार का वैश्विक मंच–विश्व हिंदी सचिवालय	शुभंकर मिश्र	205
रामचरितमानस की विश्व व्याप्ति	विभा नायक	212
भारत में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण : स्थिति और चुनौतियां	बीना शर्मा	223
हिंदी शिक्षण–अधिगम की वैश्विक चुनौतियाँ और संभावनाएं	नूतन पाण्डेय	232
ब्रिटेन के हिंदी सेवी डॉ. रोनल्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर और उनका हिंदी को अवदान	उषा राजे सक्सेना	239
विदेशी हिंदी पत्रकारिता–स्थिति संभावनाएं और चुनौतियां	जवाहर कर्नावट	244
हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य	विमलेश कान्ति वर्मा	256
विदेशी भाषाओं में अनूदित हिंदी साहित्य	सुष्मिता पारीक व राहुल पंवार	265

खंड-चार
साहित्य संचयन
संयोजन : सुनंदा वर्मा

चेक गणराज्य	ओदोलेन स्मेकल	277
इंग्लैण्ड	सत्येन्द्र श्रीवास्तव	279
गयाना	पंडित रामलाल	280
गयाना	लाल बहादुर शर्मा	281
फ़ीजी	कमला प्रसाद मिश्र	282
फ़ीजी	सुखराम	283
मॉरीशस	ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर'	284
सूरीनाम	अमर सिंह रमण	286
सूरीनाम	हरिदेव सिंह सहतू	287
दक्षिण अफ़्रीका	तुलसी राम पाण्डेय	290
दक्षिण अफ़्रीका	देवी दयाल	291

खंड-पांच
आकलन: नई किताबें

नेपाल में हिंदी: स्थिति और सम्भावनाएं	फणीन्द्रराज निरौला	295
विदेश में हिंदी पत्रकारिता	सोमदत्त शर्मा	304
विश्व हिंदी के भगीरथ [प्रवासी हस्ताक्षर]	अरुण मिश्र	311
फ़ीजी हिंदी: हिंदी का विश्व फलक	हेमांशु सेन	316

फ़ीजी का हिंदी साहित्य-एक संचयन	शोभना देवी	322
गिरमिटिया महाकाव्य	राजेश कुमार 'मांझी'	326
फ़ीजी में हिंदी: विविध प्रसंग	ऋतु शर्मा नन्नन पाण्डेय	323
सरनामी हिंदी: हिंदी का विश्व फलक	दीप्ति अग्रवाल	336
कालापानी के पार: उत्तर प्रदेश से फ़ीजी तक:	डोनिका बेलिसले	341
मॉरीशस और फ़ीजी : विश्व हिंदी सम्मलेन के झरोखे से	राकेश पाण्डेय	349
लेखक-मंडल		353
रचनाकारों से अनुरोध		356

हस्तलेख

हिंदी का सद्भावना गीत

गूंजे गगन में
महके पवन में
हर एक मन में - सद्भावना।

मौसम की बांहें
दिशा और राहें
सब हमसे चाहें - सद्भावना।

घर की हिफ़ाज़त
पड़ौसी की चाहत
हरेक दिल को राहत - तभी तो मिले

हटे सब अंधेरा
ये कुहरा घनेरा
समुज्वल सवेरा - तभी तो मिले

जब हर हृदय में
पराजय-विजय में
हिंदी की लय में - हो साधना।
गूंजे गगन में...

समय की रवानी
फतह की कहानी
धरा स्वाभिमानी - जवानी से है

गरिमा का पानी
ये गौरव निशानी
सुखी ज़िंदगानी - जवानी से है।

मधुर बोल बोले
युवा मन की हो ले
मिलन द्वार खोले - सद्भावना
गूंजे गगन में...

हमें जिसने बख़्शा
भविष्यत् का नक्शा
समय को सुरक्षा - इसी से मिली

ज़रा कम न होती
कभी जो न सोती
दिये की ये जोती - इसी से मिली

नफ़रत थमेगी
मुहब्बत रमेगी
ये धरती बनेगी - दिव्यांगना।

गूंजे गगन में
महके पवन में
हर एक मन में - सद्भावना!

ashok@chakradhar.com

अशोक चक्रधर

अशोक चक्रधर, *प्रसिद्ध हिंदी कवि, पूर्व प्रोफ़ेसर, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, दिल्ली। संपर्क: ashok@chakradhar.com*

अग्रलेख

छोटे-छोटे भारत

चेतना वशिष्ठ

भारत के प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र दामोदरदास मोदी जब भी विदेश जाते हैं तो विदेश में बसे हुए भारतीयों से संवाद करना नहीं भूलते। वे उनसे बात करते हैं, उनका हाल चाल पूछते हैं, उनकी समस्याओं के बारे में उनसे चर्चा करते हैं और अपने देशवासियों के बीच होने वाली बात या संवाद को वे 'मन की बात' कहते हैं। यह 'मन की बात' भारत की प्रधान भाषा हिंदी में होती है। वैसे भी अपने दिल या मन की बात हम उस भाषा में ही करते हैं जिसमें हम सहज होते हैं।

यह हम भारतीयों के लिए बड़े गर्व की बात है कि मोदी जी विदेश की धरती पर बड़े आत्मविश्वास और गर्व के साथ हिंदी बोलते हैं और मोदी जी को हिंदी बोलने में कोई संकोच नहीं होता और कोई यह शिकायत भी नहीं करता कि वे हिंदी में क्यों बोलते हैं, अंग्रेज़ी में क्यों नहीं बोलते। मोदी जी की मातृभाषा गुजराती हैं, अंग्रेज़ी अच्छी जानते हैं, उन्हें दुभाषिये की भी सुविधा है और जिस देश में वे जाते हैं वहां बसे हुए सभी पढ़े लिखे भारतीय जिनकी अपनी अलग अलग मातृभाषायें गुजराती, मराठी, पंजाबी, बँगला, तमिल, तेलुगु, मणिपुरी, कश्मीरी आदि हैं, जो भारत के विभिन्न प्रान्तों से आये हुए हैं और अपना काम-काज अंग्रेज़ी में सामान्यतया करते हैं। भारतीयों के मध्य भाषा, खानपान, वेशभूषा, धर्म, रीति-रिवाज़ के विभिन्न होते हुए भी मोदी जी ने विदेश में 'मन की बात' के लिए हिंदी को चुना क्योंकि चाहे देश हो या विदेश हो 'मन की बात' तो देश की भाषा बहुभाषी भारत में सभी भारतीयों को जोड़ने वाली संपर्क भाषा हिंदी में ही हो सकती है। हिंदी सभी भारतीयों को जोड़ने वाली है और विदेश में भारतीय अस्मिता की प्रतीक भी है।

विदेश में बसे हुए भारतीयों की संख्या भारत सरकार के सरकारी आंकड़ों के अनुसार आज तीन करोड़ से भी अधिक है। इस संख्या में एन.आर.आई और पी.आई.ओ

की ही गणना है और उनकी गणना नहीं है जो भारत से गिरमिट प्रथा के अंतर्गत विदेश गये और वहीं बस गये। इस प्रकार विदेश में बसे भारतीय दो कोटि के हैं। पहले तो वे हैं जो आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले गिरमिट प्रथा के अंतर्गत विदेशी उपनिवेशों में ले जाए गये थे। ये देश थे मॉरीशस. सूरीनाम, फ़ीजी, त्रिनिदाद और टोबेगो, गयाना तथा दक्षिण अफ़्रीका आदि। इन देशों को गये और वहां बस गये भारतीय आज इन देशों के प्रतिष्ठित नागरिक हैं। वे राजनीति, व्यापार, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में कार्यरत हैं। दूसरी कोटि के वे भारतीय हैं जो भारत की स्वतंत्रता के बाद अर्थात वर्ष 1947 के बाद अच्छे रोज़गार की तलाश में, अच्छी शिक्षा के लिए या अधिक धन कमाने के लिए विदेश गये और वहीँ बस गये। इन देशों में अमरीका, कनाडा, इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी आदि कितने ही देश हैं।[1] विदेश में बसे हुए इन भारतीयों को आज हम प्रवासी भारतीय भी कहते हैं।

भारतीय, आज विश्व का कोई भी देश हों, सभी जगह आपको मिलेंगे। इससे आप कह सकते हैं कि यत्र तत्र सर्वत्र भारत। विदेश में बसे हुए भारतीयों के सन्दर्भ में एक बात और भी आपको दिखेगी। ये बात चीनी लोगों के बारे में भी बहुत कुछ एक सी है। कहा जाता है कि विश्व में दो मानव जातियाँ ऐसी हैं जो विश्वभर में आज सबसे अधिक फैली हुई आपको दिखेंगी। इन्होंने अपना देश तो छोड़ा पर अपने संस्कार नहीं छोड़े। अपनी भाषा, अपना खान-पान, आस्था और विश्वास, रीति-रिवाज़, पारिवारिक व्यवस्था नहीं छोड़ी और विदेश में जहाँ भी जा कर बसे अपनी अस्मिता और अपनी संस्कृति को बचा कर रखा। आप दुनिया के किसी भी बड़े देश में जाएँ आपको ‘चाइना टाउन’ और ‘लिटिल इण्डिया’ ज़रूर देखने को मिलेंगे;चाहे वह सिंगापुर का लिटिल इंडिया हो। अमरीका का न्यू जर्सी, इंग्लैण्ड का साउथ हाल और मिडिलसेक्स, कनाडा का ब्रैम्पटन सभी स्थानों पर आपको हिंदी बोलते लोग दिखेंगे और, समान खान-पान, रीति-रिवाज़ वेशभूषा के कारण आपको विदेश में एक लिटिल इंडिया का एहसास देंगे।

चाहे दूर देश सूरीनाम में एक छोटा भारत हो, चाहे मॉरीशस में एक लघु भारत हो या केरेबियन में बसा त्रिनिदाद और गयाना हो, या प्रशांत महासागर में एक लिटिल इंडिया फ़ीजी हो, इन सभी देशों में आपको भारतीय संस्कृतियों का संगम दिखाई देगा और जब लोग आपस में और आप से हिंदी बोलते हैं तब आपको ऐसी अनुभूति होगी जैसे आप भारत में ही हो। हिंदी में बात करते लोग और उनमें रची-बसी भारतीय संस्कृति आपको यह अहसास कभी नहीं होने देगी कि आप भारत से कोसों दूर हैं। ये भारतीय अपने आप में भारतीय संस्कृति और हिंदी की प्रतिकृति हैं। ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ हमारी भारतीय

संस्कृति का मूल मंत्र है। हम यह कह सकते हैं कि हमारे यहाँ अलग धर्म, पूजा पद्धतियां, भाषाएं और सामाजिक मूल्य का अनुसरण करते हुए भी हम सब भारतवासी अनेकता में एकता देखते हैं। इन विभिन्नताओं को एक सूत्र में पिरोने का काम हिंदी विदेश में भी बखूबी कर रही है।

इधर हाल ही में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली और मॉरीशस स्थित विश्व हिंदी सचिवालय के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित एक कार्यक्रम में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में मुझे मॉरीशस जाने का अवसर मिला। वहां मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मॉरीशस में चार-पांच पीढ़ियों से बसे हुए भारतीयों के वंशज आज भी अपनी हिंदी को संजोये हुए हैं। उनका खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज़, पारिवारिक व्यवस्था और हिंदी के प्रति मोह हम भारतीयों जैसा ही है। हिंदी फिल्मों के गाने बड़े शौक से सुने जाते हैं। शादी, विवाह, रामचरित मानस का प्रभाव सब भारत जैसा ही है। कुछ ही दिनों में मुझे लगने लगा कि हज़ारों किलोमीटर की दूरियाँ होते हुए भी मॉरीशस एक छोटा भारत ही है। इतना ही नहीं, वहां आज जो साहित्य सृजन हिंदी में हो रहा है वह भी हमारी हिंदी में या भारत में प्रचलित भोजपुरी जैसा ही है। मॉरीशस के प्रवासी भारतीय अपनी हिंदी को प्रतिष्ठित करने में भी तन-मन से संलग्न हैं। यदि मैं मन की बात कहूँ तो विदेश में मॉरीशस मुझे छोटा भारत ही लगा। इतना ही नहीं विदेश में अपनी भारतीय अस्मिता बनाए रखने के लिए वे हिंदी की प्रतिष्ठा को महत्वपूर्ण भी मानते हैं। मॉरीशस के प्रमुख हिंदी कवि ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर'. की रचना में यह भाव कितनी सघनता से अभिव्यक्त आपको दिखेगा। उनकी कविता 'चेतावनी' की पंक्तियां मैं उद्धृत करती हूँ अपनी भाषा हिंदी और भारतीय संस्कृति के विषय में कवि क्या सोचता है–

हिंदी गई रसातल में तो गई हमारी आशा,
संस्कृति सिसक-सिसक रोयेगी धर्म मरेगा प्यासा।
हिंदी को कुचलेगी प्यारे गौरांगों की भाषा,
हिन्दू एक न होगा जग में पलट जायगा पासा।
जिस हिंदी ने स्वतन्त्रता दी उसको नहीं लजायें
राम, कृष्ण, गौतम, गांधी की सीख सदा अपनायें।।
युवक-युवतियों आओ मिलकर हिंदी ध्वजा उड़ायें,
दुनिया के कोने-कोने में हिंदी सुमन खिलायें।
हिंदी के रक्षक प्रतिपालक दुर्दिन में बन जायें,

भाषाओं की समर भूमि में विजय सदा अपनायें।
अटल प्रतिज्ञा यही हमारी कभी न पीठ दिखायें,
जय जय जय हिंदी के नारे विश्व सकल गुंजायें।[2]

करेबियन सागर के तट पर बसे हुए सूरीनाम में भारतीय भी यही चाहते हैं कि भारतीय संस्कृति अक्षुण्ण रहे और इसके लिए वे तन मन धन से प्रयत्न भी कर रहे हैं। यही कारण है कि भारत से हज़ारों मील दूर देश सूरीनाम में बसी हुई एक प्रसिद्ध हिंदी लेखिका संध्या भग्गू अपनी भावाभिव्यक्ति कविता में इस रूप में करती हैं–

हिंदी पढ़ो पढ़ाओ
अपनी भाषा को आगे बढ़ाओ
हिंदी से मान है
वेद रामयाण गीता का ज्ञान है
हिंदी से हमारी पहचान है।

इतना ही नहीं कवयित्री संध्या भग्गू आगे अपनी एक छोटी कविता में सूरीनाम को 'छोटा भारत' बनाने की बात कहती हैं। अपनी एक कविता 'छोटा भारत' में वे लिखती हैं–

भारत से,
सूरीनाम में आये।
पुष्प पूर्ण से,
सारा देश सजाये
सुनकर देखकर भारतवासी
गदगद हो जाएँ
यूं तो ये हैं हमारे लोग
जो धोखे से आये
सरनामी बनकर
सूरीनाम देश को
छोटा भारत बनाएं।[3]

फ़ीजी में बसे भारतवासी भी मॉरीशस और सूरीनाम में बसे हुए भारतीयों की तरह ही हिंदी की प्रतिष्ठा को अपनी प्राथमिकता मानते हैं। फ़ीजी के प्रतिष्ठित हिंदी कवि काशी राम कुमुद अपनी एक कविता 'हिंदी बिरवा' में लिखते हैं–

कभी बैठ इस रम्य विजन में,
हम गायक बन जाते हैं।
अपनी कल्पना वेदी पर,
स्वप्निल धूनी रमाते हैं।
उन्मादित हो बीच बीच में, हिंदी का अलख जगाते हैं।
हम रक्त बिन्दुओं से सींच सींच, हिंदी बिरवा पनपाते हैं।।[4]

दक्षिण अफ़्रीका के भरतवंशी मॉरीशस, सूरीनाम और फ़ीजी के ही समान अपने देश में हिंदी को बचाए रखने के लिए कृतसंकल्प हैं। दक्षिण अफ़्रीका की हिंदी कवयित्री शिल्पा नायडू अपनी एक लम्बी कविता 'भाषा की रानी' में हिंदी के प्रति अपने उद्गार इस रूप में प्रगट करती हैं और देशवासियों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित करती हैं। कविता की पंक्तियाँ हैं–

हिंदी है भाषा की रानी
सदियों से ये बात पुरानी।
देश-विदेश में फैल गई,
हिंदी रानी प्रसिद्ध हुई।
घर घर में हिंदी की चर्चा
बोलने में नहीं कोई खर्चा
हिंदी बोलो हिंदी गाओ
हिंदी सीखने आज ही आओ।[5]

हिंदी के प्रति सम्मान, उसकी प्रतिष्ठा के प्रति चिंता और उसके विकास के लिए निष्ठा आपको सामान्यतः सभी विदेश में बसे हुए भारतीयों में दिखेगी क्योंकि हिंदी भारतीय अस्मिता की पहचान है अन्यथा विदेश में गया व्यक्ति पीढ़ी दर पीढ़ी विदेशी ही रहता है। भाषा ही उसे अपनों से जोड़े रखती है।

अपने कथ्य को और स्पष्ट करने के लिए मैं एक और उदाहरण आपके समक्ष रखना चाहती हूँ। गिरमिटिया समाज का मैंने आलेख में ज़िक्र किया है, जो अब सुदूर देशों में बसे प्रवासी भारतीय हैं। प्रवासी भारतीय दिवस के अवसर पर इन भरतवंशियों का भारत के प्रति प्रेम मैने उस समय देखा जब पत्रकारों ने इन भारतवंशी मूल के बच्चों से प्रश्न किया कि वे भारत में जाकर कहाँ घूमना पसंद करेंगे। बच्चों ने बनारस और हरिद्वार सहित अनेक धार्मिक स्थानों पर जाने की इच्छा प्रकट की। बच्चों की इस सोच

का प्रभाव भारत से बाहर लिखे जा रहे साहित्य पर भी स्पष्ट झलकता है। जो कहानी मॉरीशस में लिखी जाती है वह अमरीका से बिलकुल भिन्न है। भाषा के संदर्भ में भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी प्रभाव देखा जा सकता है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि हिंदी विश्वभर में एक महत्वपूर्ण भाषा बन गई है, विशेषकर उन देशों में जहां भारतीय विदेशी समुदाय निवास करते हैं। यहां भारतीय समुदायों के बीच हिंदी का उपयोग उनकी भाषा और संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा बना हुआ है। इन देशों में हिंदी स्कूल, समुदाय केंद्र, मीडिया, और सामाजिक गतिविधियों में प्रयोग होती है। इस प्रकार, हिंदी का प्रवासी देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

कहना न होगा हिंदी विदेशों में एक अहम और सशक्त भाषा और सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बन गई है, जिससे भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति की गहरी समझ का विकास होता है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि हिंदी भारतीय सभ्यताऔर संस्कृति की प्रतीक भाषा है और भारत से बाहर इन छोटे छोटे भारत में पूर्णतः आज स्थापित हो रही है। इस तरह से हिंदी एक ऐसी भाषा बन रही है जो भारत की विविध सांस्कृतिक समृद्धि को तो दर्शाती ही है साथ ही विश्व में भारतीय विचारधारा और संस्कृति का प्रसार करती है।

हिंदी विशेष रूप से भारत और इन देशों के बीच एक सशक्त संवाद का माध्यम है। इसकी व्यापकता ने इसे अन्य विदेशी भाषाओं में इस तरह सम्मिलित कर दिया है, जिससे विदेशी भाषाओं को सीखने में भी आसानी होती है।

भारतीय व्यापार, वित्तीय और सांस्कृतिक रूप से हिंदी एक महत्वपूर्ण भाषा है। यह भारत और अन्य देशों के साथ विभिन्न क्षेत्रों में जैसे कि विज्ञान, वाणिज्य, कला, साहित्य और समाज में भी अपना सम्पर्क स्थापित कर रही है। हिंदी का उपयोग विभिन्न अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, संगठनों में भी हो रहा है, जो भारतीय विचारधारा को विश्वस्तर पर प्रसारित करता है।

हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति, गायन, नृत्य, वस्त्र, भोजन और धार्मिक रीति-रिवाज़ों को उक्त कथित देशों के साथ-साथ अन्य देशों में जाने और समझे जाने में सहायता मिलती है। इसमे कोई दो राय नहीं है कि हिंदी एक सामर्थ्यपूर्ण माध्यम है जो भारतीय संस्कृति की अद्वितीयता और विशेषता को दुनियाभर में प्रस्तुत करती है। भारतीय संस्कृति के दृश्य और हिंदी को झलकाते हिंदी सिनेमा का भी हिंदी को विश्वमंच पर स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान है।

त्रिनिदाद के विषय में तो ये विख्यात है कि वहाँ पर 'सुहानी रात ढल चुकी, ना जाने तुम कब आओगे' गीत एक अघोषित राष्ट्रीय गान का स्थान ले चुका है। किसी भी सामूहिक आयोजन में यह गाना बजाया जाता है। इसी प्रकार फिजी के विलेज सिनेमाघर में निरंतर भारतीय हिंदी फिल्मों को दिखाया जाता है। भारतवंशी देशों में धार्मिक धारावाहिक सदा ही लोकप्रिय होते हैं और बहुत से समाचार चैनल सीधे प्रवासी भारतीयों के घर पहुंचते हैं। फ़ीजी टीवी में 'झरोखा' और 'आइना' नाम से हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। फ़ीजी का एक और चैनल वर्ल्ड ऑफ़ बॉलीवुड के नाम से हिंदी गाने प्रसारित करता है। भारत से हिंदी की जड़ों को सुदृढ़ करने में समय-समय पर अनेक देशों के हिंदी प्रेमियों ने जो पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं उनका विश्व हिंदी को पुष्पित-पल्लवित करने में एक महत्वपूर्ण योगदान है। गन्ने के खेतों में पनप रही हिंदी और लोकभाषाओं ने भारतवंशियो को इस कदर प्रेरित किया कि इन गिरमिटिया मजदूरों ने साहित्यिक कृतियाँ और पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। मॉरीशस में प्रकाशित पत्रिका 'दुर्गा' और फ़ीजी की 'जय फिजी' फ़ीजी की उल्लेखनीय पत्रिका रही हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि भारतीय संस्कृति को संजोए इस गिरमिटिया समाज ने हिंदी में उपमाओं को अंकित कर ऐसे देशों में भारतीय संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी है। हमारे बहुभाषी राष्ट्र भारत की 'हिंदी' प्रतिनिधि भाषा कही जा सकती है। हिंदी विश्वभर में हमारे देश का प्रतिनिधित्व करती है।

विश्व स्तरीय बैठकों में पहले अंग्रेज़ी में ही बातचीत होती थी अब विश्व स्तरीय बैठकों में जो हिंदी नहीं भी जानतें वे भी टूटी-फूटी हिंदी में बातचीत करते हैं। इसका पूरा श्रेय प्रधानमंत्री जी को जाता है। इतना ही नहीं भारत वंशी ऋषि सुनक जो कि पंजाबी भाषी है, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बनने पर उन्होंने हिंदी बोलकर हिंदी को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। अपने विचारों को समेटते हुए मैं अंततः अपने पाठकों के लिए यही कहना चाहूंगी कि भाषा संस्कृति का अभिन्न अंग होती है और हिंदी, प्रमुख भारतीय भाषा के रूप में विश्व भर में प्रतिष्ठित भी है। भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार मेंआज हिंदी अपनी अहम् भूमिका निभा भी रही।

आलेख के अंत में विनम्रता पूर्वक मैं यह भी उल्लेख करना चाहूँगी कि वर्ष 2018 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली की गृह पत्रिका राजभाषा मंजूषा का एक विशेषांक मेरे सम्पादन में प्रकाशित हुआ था जिसका केन्द्रीय विषय था 'भारत के बाहर छोटे-छोटे भारत'[6] और इस विशेषांक को भारत सरकार के गृहमंत्रालय ने मंत्रालय के सर्वोच्च पत्रिका पुरस्कार 'कीर्ति पुरस्कार' से सम्मानित कर यह सन्देश देना चाहा था कि विश्व

के मानचित्र पर अनेक ऐसे देश हैं जो भारतीयता को अपने में संजोये हुए हैं और विविध अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की शक्ति के रूप में विद्यमान हैं।

सन्दर्भ संकेत :

1. Lal, B.V. Encyclopaedia of the Indian Diaspora, University of Hawaii Press, Hawaii 2006.
2. मॉरीशस का सृजनात्मक हिंदी साहित्य: विमलेश कान्ति वर्मा, साहित्य अकादमी, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार 2016 नई दिल्ली पृष्ठ 85
3. सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य: विमलेश कान्ति वर्मा व भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन, (राजकमल प्रकाशन समूह), 2015, नई दिल्ली पृष्ठ 147
4. फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य: विमलेश कान्ति वर्मा, साहित्य अकादमी, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार 2012, नई दिल्ली पृष्ठ 98
5. प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, विमलेश कान्ति वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली व महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा 2016 पृष्ठ 156
6. राजभाषा मंजूषा अंक 21 वर्ष 2018 अर्धवार्षिक भारत से बाहर छोटे छोटे भारत, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली

चेतना वशिष्ठ *राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार में सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत हैं और विद्यालय की प्रतिष्ठित हिंदी पत्रिका 'राजभाषा मंजूषा' की सम्पादक हैं। संपर्क: vashishtchetna@gmail.com*

खंड–एक
हिंदी की प्रासंगिकता: विदेश में

संयोजन: सुनंदा वर्मा

अमरीका

सुरेन्द्र गंभीर

संयुक्त राज्य अमरीका में हिंदी की प्रासंगिकता के मुख्य रूप से छह संदर्भ हैं–भारत से आए आप्रवासियों में हिंदी का जीवंत प्रयोग, शैक्षिक संस्थाओं में हिंदी भाषा का शिक्षण-अध्ययन, कुछ सरकारी अधिकारियों के लिए हिंदी भाषा सीखने की व्यवस्था, कुछ न्यायालयों और बैंकों जैसी संस्थाओं में हिंदी-से-अंग्रेज़ी दुभाषियों का प्रयोग, कुछ संस्थाओं के लिखित सूचना-पत्रकों में हिंदी समेत विविध भाषाओं के माध्यम से सूचना-प्रसारण, और हिंदी भाषा में प्रवीणता का मानक मूल्यांकन।

हिंदी-भाषी वयस्क आप्रवासियों की पहली पीढ़ी में पारस्परिक संवाद में हिंदी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। उनमें हिंदी चलचित्र और टेलीविज़न का दैनंदिन प्रयोग लोकप्रिय हैं। हिंदी में धार्मिक प्रवचन और हिंदी के कवि-सम्मेलनों का आयोजन भी ऐसे लोगों के आनंद और रसास्वादन के लिए होता रहता है। दूसरी और तीसरी पीढ़ी में हिंदी का प्रयोग उत्तरोत्तर क्षीण होने लगता है। इसके अतिरिक्त हिंदी-भाषी और अहिंदी-भाषी समुदायों के बीच भी हिंदी का प्रयोग कमोबेश कम मात्रा में होता है।

दूसरा वर्ग विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षार्थियों का है जिनमें लगभग साठ-सत्तर प्रतिशत विद्यार्थी भारतीय-मूल के होते हैं। इन हिंदी-शिक्षार्थियों में अहिंदी-भाषी आप्रवासी परिवारों की छात्र-संख्या प्रायः अधिक होती है। कारण स्पष्ट है कि संपर्क-भाषा के रूप में हिंदी की उपादेयता है। भारतीय मूल से इतर दूसरे शिक्षार्थी भी भारत में विविध विषयों पर शोध करने के लिए हिंदी सीखते हैं। सामान्य हिंदी के शिक्षण के अतिरिक्त व्यावसायिक हिंदी सीखने वाला एक छोटा शिक्षार्थी-वर्ग है जो यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिल्वेनिया के वार्टन बिज़नेस स्कूल में है। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए हिंदी का एक बहुत उच्च-स्तरीय कार्यक्रम अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़ के तत्वावधान में जयपुर में चलता है। वहां अधिकांश विद्यार्थी हिंदी-भाषी परिवारों के

साथ रहते हैं जिससे उनका भाषा और संस्कृति में अवगाहन गहरा होता है। फिर स्वयंसेवी संस्थाएं हैं जो शनिवार-रविवार को स्कूल-स्तरीय छात्रों के लिए हिंदी की कक्षाएं चलाती हैं। इसके अतिरिक्त वर्ष 2006 की नेशनल सिक्योरिटी लैंगवेज इनिश्येटिव नामक सरकारी परियोजना के अंतर्गत स्टारटॉक कार्यक्रम में लगभग बीस ग्रीष्मकालीन हिंदी-शिक्षण कार्यक्रम सन् 2008 से 2021 के मध्य आयोजित हुए। यूनिवर्सिटी ऑफ़ टैक्सस में हिंदी-उर्दू का फ़्लैगशिप कार्यक्रम 2007 में प्रारंभ हो कर छात्रों के अभाव में कुछ वर्षों के बाद बंद हो गया।

सरकारी संदर्भ में कैलिफ़ोर्निया के मांट्रे नगर में स्थित सरकारी संस्था डिफ़ेंस लैंगवेज इंस्टिट्यूट में कुछ अमरीकी सैनिक हिंदी सीखते हैं और वे सरकारी नियमों के कारण हिंदी में उच्च-स्तरीय भाषा-प्रवीणता के अधिग्रहण के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। इसी प्रकार भारत जाने वाले राजनयिकों के लिए हिंदी-शिक्षण का प्रबंध वाशिंगटन डी.सी. के निकट आरलिंगटन नगर में फ़ॉरन स्टडीज़ इंस्टिट्यूट में है। अधिकांश महानगरों के न्यायालय और बैंकों में अंग्रेज़ी न जानने वालों के लिए हिंदी के भी दुभाषिए उपलब्ध कराने की व्यवस्था होती है। फिर कुछ सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं के सूचना-पत्रकों में अंग्रेज़ी के अतिरिक्त संसार की विविध आवश्यक भाषाओं के साथ हिंदी का विकल्प भी होता है। इसके अतिरिक्त लैंगवेज टैस्टिंग इंटरनेशनल नामक संस्था के माध्यम से हिंदी जानने वाले किसी भी व्यक्ति की आरंभिक स्तर से उच्चतम स्तर तक की भाषा-प्रवीणता का आकलन एक्टफ़ल प्रवीणता निर्देशिका (ACTFL Proficiency Guidelines) के मानक मापदंड पर प्रमाणित परीक्षकों द्वारा किया जाता है।

सुरेन्द्र गंभीर *सेवा-निवृत्त वरिष्ठ प्रोफ़ेसर, यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिल्वेनिया, अमरीका।*

संपर्क: surengambhir@gmail.com

अमरीका

पीटर नैप्सिक

अप्रैल 2023 में यह घोषणा हुई कि लगभग 1.4 बिलियन आबादी वाला भारत, विश्व की सर्वाधिक आबादी वाले देश चीन को पछाड़ कर सबसे आगे निकल गया है। इसमें ग़ौर करने वाली बात यह है कि भारत की लगभग आधी आबादी हिंदी बोलती है।

इसी तरह, हम वैश्विक मंच पर भारत के बढ़ते प्रभाव और इसकी अर्थव्यवस्था की प्रगति की ख़बरें लगातार सुनते रहते हैं तो लगता है कि हिंदी का बोलबाला वैश्विक स्तर पर पहुँच गया है, लेकिन आँकड़े देखने पर पता चलता है कि अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिंदी सीखने की रुचि पहले से तो बढ़ी है, फिर भी अन्य एशियाई भाषाओं की तुलना में हिंदी के छात्रों की संख्या काफ़ी कम है- उदाहरण के लिए, 55 अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिंदी के कार्यक्रम चल रहे हैं, लेकिन अन्य एशियाई भाषाओं के कार्यक्रमों से इसकी तुलना की जाए तो पता चलता है यह संख्या अन्य भाषाओं में कहीं ज़्यादा है जैसे कोरियाई में हिंदी से तीन गुना अधिक कार्यक्रम हैं, जिसके बोलने वाले मात्र 82 मिलियन हैं। मॉडर्न लैंग्वेज एसोसिएशन के अनुसार, हिंदी और अन्य एशियाई भाषाओं के बीच एक बड़ी असमानता पाई जाती है जहाँ अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ने वाले कुल 2000 छात्र हैं, वहीं अरबी के लिए 22,000 छात्र, चीनी के लिए 45,000 और जापानी के लिए 65,000 छात्र हैं। अब देखने वाली बात है कि इतनी आबादी होने के बावजूद अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिंदी की प्रासंगिकता इतनी कम क्यों है? और अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिंदी कार्यक्रम के छात्रों को कैसे आकर्षित किया जा सकता है?

देखा गया है वर्तमान पीढ़ी के छात्रों पर ऐसे विषय चुनने का दबाव होता है जो उनको नौकरी दे सकें। आम धारणा है कि हिंदी सीखने का कोई व्यावहारिक लाभ नहीं है, जबकि जापानी, चीनी या अन्य भाषाओं के छात्र ऐसा नहीं सोचते क्योंकि यदि उनको

इन देशों में जाना पड़े तो नौकरी करने में इन भाषाओं से सहायता मिलती है। वहीं जब भारत की बात आती है, तो यह ग़लत धारणा बनी हुई है कि अधिकांश भारतीय तो अंग्रेज़ी बोलते हैं, इसलिए हिंदी सीखना समय की बर्बादी है। हालाँकि वास्तविकता यह है कि केवल 10% भारतीय ही धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोल सकते हैं और जो ऐसा करते हैं वे मुख्यतः अमीर हैं और शहरों में रहते हैं। और भले ही ये लोग अपनी नौकरी के लिए अंग्रेज़ी बोलते हैं, किंतु अपने निजी जीवन में परिवार और दोस्तों के साथ बातचीत करने के लिए हिंदी या अपने राज्य की भाषा का उपयोग करते हैं। ज़ाहिर है, अगर भारत में अलग-अलग प्रांतों के लोगों को आपस में बात करनी होती है तो उन्हें हिंदी का ज्ञान ज़रूरी है।

दूसरी चुनौती यह है कि हाल के दशकों में अमेरिकी विश्वविद्यालयों में भारतीय अप्रवासियों के बच्चों की आबादी बढ़ी है। उनके माता-पिता उच्च-स्तर की नौकरियाँ करते हैं, और उन्होंने भारत के अंग्रेज़ी-माध्यम स्कूलों और विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त की है, और ये लोग अमरीका में रहने वाले 5 मिलियन दक्षिण एशियाई लोगों का हिस्सा हैं। ये लोग अपनी सफलता का श्रेय एक हद तक अपने अंग्रेज़ी के ज्ञान को देते हैं। अतः ये लोग हिंदी को हेय की दृष्टि से देखते हैं और चाहते हैं कि इनके बच्चे अपनी ऊर्जा उन चीज़ों में लगाएँ जो उनको नौकरी के अवसर देने में सहायता करें।

अच्छी ख़बर यह है कि इतना होने पर भी हिंदी की स्थिति निराशाजनक नहीं है: क्योंकि कई सकारात्मक रुझान देखने में आए हैं जो हिंदी के भविष्य के लिए अच्छे संकेत देते हैं। युवा पीढ़ी के हिंदी-शिक्षक भाषा शिक्षण के आधुनिक तरीकों में प्रशिक्षित होकर अमरीका-भर के प्रमुख विश्वविद्यालयों में पढ़ा रहे हैं और उनके द्वारा नई-नई शिक्षण सामग्री का निर्माण हो रहा है, जिससे हिंदी कार्यक्रमों में नई ऊर्जा पैदा हो रही है इसलिए बच्चे हिंदी पढ़ना चाहते हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि हिंदी को और प्रासंगिक बनाने के लिए इन शिक्षकों को चाहिए कि वे इस पीढ़ी के छात्रों की रुचियों, चुनौतियों और ज़रूरतों को ध्यान में रखकर अपने कार्यक्रम और पाठ्यक्रम बनाएँ। शिक्षकों को अपने छात्रों को 600 मिलियन हिंदी बोलने वालों के साथ जोड़ने के लिए सतत प्रयास करने होंगे। उदाहरण के लिए वे भारतीय शरणार्थियों के साथ काम कर सकते हैं; वे भारतीय चिकित्सा पद्धतियों को पाठ्यक्रम में जोड़ सकते हैं; जलवायु परिवर्तन की समस्याओं के समाधान पर विचार करके विद्यार्थियों को नई दिशा दे सकते हैं; और सबसे ज़रूरी चीज़ सामाजिक न्याय

के मुद्दों की वकालत करने में हिंदी का व्यावहारिक उपयोग करके उसे समाज के लिए प्रासंगिक बना सकते हैं। इसके साथ ही सर्विस-लर्निंग पर आधारित उत्कृष्ट मॉडल को अपने कार्यक्रमों में अपनाकर हिंदी शिक्षण को नई ऊँचाइयों पर ले जा सकते हैं।

दुनिया में भारत के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए, हिंदी की प्रासंगिकता भारत के भीतर और दुनिया-भर में बढ़ रही है और बढ़ती रहेगी। और इसे देखते हुए कहा जा सकता है कि यह अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिंदी कार्यक्रमों के लिए अपनी पहुँच बढ़ाने और नए छात्रों को आकर्षित करने के लिए एक सुनहरा अवसर है क्योंकि पूरा विश्व भारत के साथ सम्बंध बनाने के लिए लालायित है।

पीटर नैप्सिक *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी-उर्दू, वेक फ़ॉरेस्ट यूनिवर्सिटी, नॉर्थ कैरोलाइना, अमरीका। संपर्क: knapczp@wfu.edu*

ऑस्ट्रेलिया

पीटर फ़्रीडलैंडर

मैं अब लगभग चालीस साल से ऑस्ट्रेलिया में रहता हूँ। मेरा जन्म इंग्लैण्ड में हुआ और सन् 1977 से 1982 मैंने भारत में हिंदी सीखी और भारतीय संस्कृतियों के बारे अध्ययन किया। बहुत कुछ बदल गया मेरे जीवन में, अपने आप में और दुनिया में। जब मैं छियानबे में ऑस्ट्रेलिया में बस गया तो ऑस्ट्रेलियाई जनगणना के आँकड़े के अनुसार उस समय हिंदी भाषी लोगों की आबादी क़रीब 33,983 थी। पर अब के आँकड़ों के अनुसार वह आबादी क़रीब दो लाख हो गयी। लेकिन ये आंकड़े सिर्फ़ स्थायी आबादी के हैं। उसके ऊपर हिंदी भाषी विद्यार्थियों की संख्या काफ़ी है, अगर वे भी गिने जाते हैं तो भारतीय मूल की हिंदी भाषी आबादी ऑस्ट्रेलिया में कम से कम पाँच लाख गिनना चाहिए। और भी बहुत लोग है जो जनगणना में अपनी मातृभाषा को हिंदी नहीं बताते, लेकिन भारतीय मूल होने के नाते दूसरी या तीसरी भाषा के रूप में भी हिंदी जानते हें।

खैर ये गिनतियाँ सिर्फ़ हिंदी की छाया दिखाती हैं उसका असली रूप नहीं। पूरी तरह से ऑस्ट्रेलिया में हिंदी की प्रासंगिकता को समझने के लिए उस के इस्तेमाल और समाज में उसकी जगह के बारे में सोचना चाहिए।

ऑस्ट्रेलिया की हर जगह में जहाँ हिंदी भाषी बसते हैं वे अपने बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए स्कूली शिक्षा करवाने के बहुत बड़े प्रयास करते हैं। अब हर प्रदेश में हिंदी शिक्षा उपलब्ध है, जैसे एनएसडब्ल्यू में 'कॉम्यूनिटी स्कूलों' से, जैसे आईएबीबीवी से और विक्टोरिया में वीएसएल से। मैंने 2016 में राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी संस्थाओं में कार्यशाला भी करवायी। पिछले साल मुझे एनएसडब्ल्यू के वार्षिक इंडियन सब कॉन्टिनेंटल भाषा स्कूलों के समारोह को संबोधित करने का मौक़ा भी मिला जिसमें बहुत बड़ी तादाद में हिंदी शिक्षकों ने भाग लिया।

संचार माध्यमों में भी ऑस्ट्रेलिया में हिंदी बहुत अग्रसर है। हमारे देश में हिंदी के कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर एसबीएस, पर तीनों, टीवी, रेडियो और इंटरनेट पर प्रसारित किए जाते हैं। इसके अलावा बहुत सारी स्थानीय सामाजिक इंटरनेट रेडियो सेवाएँ भी हैं, जैसे कैनबेरा शहर का रेडियो मनपसंद। यहाँ हिंदी गद्य और कविता लिखने की प्रथा भी सशक्त और जीवित है। यहाँ इन रचनाकारों के नामों की सूची देने की जगह नहीं है, लेकिन एक उदाहरण है रेखा राजवंशी, जिनके हिंदी लेखन को यूपी सरकार ने 2022 में सम्मानित किया।

अंत में मुझे यह भी कहना है कि हिंदी, हिन्दुस्तानी, और उर्दू की आवाज़ इस दूर देश के आकाश में अब भी गूँज रही है। जैसे डेढ़ सौ साल पहले जब भारत से आए हुए लोग अंग्रेज़ों के साथ यहाँ बसने लगे और दिन भर काम करने के बाद एक दूसरे से मिलते और अपनी मातृभूमि की भूली बिसरी मीठी यादों में शायरी और कविताएँ एक दूसरे को सुनाते थे। वैसे अब भी यहाँ जब हिंदी भाषी लोग एक दूसरे से मिलते हैं, वे अनेक समारोह और महफ़िलें आयोजित करते हैं जहाँ वे एक दूसरे को अपनी जन्म भूमि की यादें दिलाते हैं और अपने ऑस्ट्रेलिया में जीने के अनुभव, अपनी दिल की भाषा में, एक दूसरे को सुनाते हैं।

पीटर फ्रीडलैंडर *सेवा-निवृत्त वरिष्ठ हिंदी अध्यापक, ऑस्ट्रलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, ऑस्ट्रेलिया।*
संपर्क: peterfriedlander@yahoo.com.au

इंडोनेशिया

धर्मयश
अनुवाद: सुनंदा वर्मा

इंडोनेशिया में हिंदी की प्रासंगिकता बहुत गहरी है। भारत और इंडोनेशिया के बीच संबंध प्राचीन काल में भारत के नाम भारतवर्ष से शुरू हुए थे। कहा जाता है कि 8 महाद्वीप और 8 उपमहाद्वीप मिलकर भारतवर्ष है। और इनमें से दो उपमहाद्वीप सुमात्रा और जावा (इंडोनेशिया) हैं।

वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव, सीता की खोज में दक्षिण की ओर प्रस्थान करने से पहले वानर सेना को निर्देश देते हैं: "यत्नवनतो यावद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्..."–जावा द्वीप जाओ जिसमें सात राज्य हैं।

इंडोनेशिया में हजारों मंदिरों की वास्तुकला, खास तौर पर बोरोबुदुर और प्रम्बानन जैसे दो सबसे बड़े मंदिर, भारतीय संस्कृति के गहरे प्रभाव का प्रमाण हैं। इन मंदिरों की शिल्पकारी में भारतीय और स्थानीय कला का प्रभाव दिखता है। रामायण, महाभारत जैसी लोक कथाएँ, वायंग कुलित (कठपुतली का नाच) और रामायण बैले जैसी प्रदर्शन कलाओं में भारतीय कहानियों को इंडोनेशियाई सांस्कृतिक संदर्भ में रूपांतरित देखा जा सकता है जिसमें राम और कृष्ण जैसे पात्रों को इंडोनेशियाई मूल्यों के साथ स्थानीय आख्यानों में दर्शाया जाता है।

इंडोनेशियन भाषा की शब्दावली, जो इंडोनेशिया गणराज्य की जनसंख्या की राष्ट्रीय भाषा है, जिसकी जनसंख्या दुनिया में पाँचवीं सबसे बड़ी है, में हिंदी और/या संस्कृत के कई शब्द शामिल हैं। यह दोनों देशों के बीच ऐतिहासिक संपर्क, व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का परिणाम है। उदाहरण के लिए, 'राजा' (राजा), 'महाराजा'

(महान राजा), 'तत्काल' (तत्काल), 'पहल' (फल), 'शीघ्र' (शिघ्र), 'कार्य' (काम), 'कर्म' (कर्म) और अन्य शब्द संस्कृत/हिंदी से आते हैं।

इंडोनेशिया के कई सरकारी शब्द संस्कृत/हिंदी से आते हैं:

–शब्द 'नेगारा' (राज्य, राष्ट्र) 'नगर' से आता है।

–पंचशील (फ़ाउन्डेशन ऑफ़ द रिपबलिक ऑफ़ इंडोनेशिया) संस्कृत से आता है, जिसमें "पंच" का अर्थ पाँच और "सिला" का अर्थ आधार, दर्शन या सिद्धांत है।

–भिन्नका तुंगगल इका इंडोनेशिया गणराज्य का आधिकारिक आदर्श वाक्य है जिसका अर्थ है "विविधता में एकता"। यह आदर्श वाक्य इंडोनेशिया गणराज्य के प्रतीक, गरुड़ (ईगल) पर छपा है, जो गरुड़ के दोनों पैरों के पंजों से पकड़े गए स्क्रॉल पर लिखा गया है। यह आदर्श वाक्य संस्कृत/हिंदी (पुरानी जावानीस में भी अपनाया गया) 'भिन्ना' (अलग), और पुरानी जावानीस 'इका' (वह) और 'तुंगगल' (एक) से आया है। 'विविधता में एकता' शब्द महान साहित्यिक कृति (महाकाव्य) काकाविन सुतसोमा से लिया गया है, जिसे 14वीं शताब्दी में महान प्राचीन जावा लेखक मपु तंतुलर ने लिखा था।

साथ ही इंडोनेशिया गणराज्य की सेना और पुलिस द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों में भी कई संस्कृत शब्द हैं: त्रि धर्म एक कर्म (इंडोनेशियाई राष्ट्रीय सेना), कार्तिक एक पक्षि (सेना), जलेस्वेवा जयमाहे (नौसेना), स्व भुवना पक्षा (वायु सेना), राष्ट्र सेवकोत्तमा (पुलिस)

आधुनिक समय में इंडोनेशिया में हिंदी का प्रभाव अनूठा है। जो भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत अपने साथ लाए उन्होंने खास तौर पर इंडोनेशिया के उन समुदायों को प्रभावित किया जिनके मूल भारतीय हैं या जो भारतीय संस्कृति में रुचि रखते हैं। युवाओं में हिंदी का प्रभाव बॉलीवुड फिल्मों, संगीत और भारतीय नृत्य के प्रसार में व्यापक रूप से देखा जा सकता है। इंडोनेशिया में भारतीय कंपनियों की बढ़ती संख्या के कारण अब हिंदी भाषा के औपचारिक और अनौपचारिक पाठ्यक्रम आ रहे हैं जो व्यापार, व्यवसाय और शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने की कोशिश कर रहे हैं। कई इंडोनेशियाई बच्चे हिंदी सीखने के लिए भारत भी आते हैं। इंडोनेशिया में किताबों की दुकानों में कई हिंदी

सीखने की किताबें भी दिखाई देने लगी हैं। हिंदी के कुछ शब्द सामाजिक और सांस्कृतिक संपर्कों के माध्यम से इंडोनेशियाई में अधिक प्रवेश करने लगे हैं, जिससे इंडोनेशियाई की शाब्दिक समृद्धि बढ़ रही है। इंडोनेशिया के कुछ विश्वविद्यालय अपने दक्षिण एशियाई अध्ययन कार्यक्रमों के हिस्से के रूप में हिंदी भाषा के अध्ययन पर विचार करना शुरू कर रहे हैं।

धर्मयश *वरिष्ठ पत्रकार, लेखक और साधना यूथ कैंप, बाली, इंडोनेशिया के संस्थापक हैं। संपर्क: darmayasa@darmayasa.com*

सुनंदा वर्मा *सिंगापुर निवासी वरिष्ठ पत्रकार हैं और प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान पर पिछले दो दशकों से कार्यरत हैं। संपर्क: www.sunanda.net; sunandaverma@yahoo.com*

उज़्बेकिस्तान

बायोत रख़्मातोव

उज़्बेकिस्तान में हिंदी भाषा के अध्ययन की प्रासंगिकता सन् 1947 में भारत की आज़ादी के साथ शुरू हुई थी। उस समय हमारे देश में भारत की सर्वाधिक प्रचलित भाषाएं हिंदी और उर्दू के विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता थी। तब ताशकंद राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की पूर्वी फ़ेकल्टी में भारतीय भाषाशास्त्रीय विभाग की स्थापना हुई थी, जिस के संस्थापक मास्को और लेनिनग्राद (वर्तमान सेंट पीटर्सबर्ग) से आए वैज्ञानिक थे। उनमें सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक वी.एस. मोस्काल्योव और आई.डी. सेरेब्रयकोव भी थे।

आगे चलकर, भारत और हमारे देशों के बीच संबंधों के विकास के साथ-साथ हिंदी भाषा की प्रासंगिकता भी बढ़ता गयी और सन् 1955 से ताशकंद शहर के तीन स्कूलों में हिंदी भाषा और एक स्कूल में उर्दू भाषा का शिक्षण शुरू हुआ। 15 जुलाई, 1991 को ताशकंद राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की पूर्वी फ़ेकल्टी एक स्वतंत्र ताशकंद स्टेट इंस्टीट्यूट ऑफ़ ओरिएंटल स्टडीज बनी।

अप्रैल सन् 2020 को ताशकंद स्टेट इंस्टीट्यूट ऑफ़ ओरिएंटल स्टडीज को एक विश्वविद्यालय में बदल दिया गया। 1994 में भारतीय भाषाविज्ञान विभाग का नाम बदलकर "दक्षिण एशियाई भाषाओं का विभाग" कर दिया गया और सितंबर 2019 में इस की गतिविधियाँ विस्तारित होकर दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशियाई भाषाओं का विभाग बना।

फिलहाल, विभाग के स्नातक विदेश मंत्रालय, सामरिक अध्ययन संस्थान, विदेशों में उज़्बेकिस्तान के दूतावासों, उज़्बेकिस्तान एयरवेज़, उज़बेक विज्ञान अकादमी

की ओरिएंटल अध्ययन संस्थान जैसे संगठनों में काम करते हैं भारत और उज़्बेकिस्तान के बीच व्यापक संबंधों के विकास में अपना योगदान देते आ रहे हैं।

जुलाई सन् 2015 को भारत के प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी की उज़्बेकिस्तान की तथा सितम्बर-अक्तूबर 2019 को उज़्बेकिस्तान के राष्ट्रपति शौकत मिर्जियोयेव की आधिकारिक भारत यात्राओं से उज़्बेकिस्तान और भारत के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों को नई गति मिली है। इन यात्राओं के दौरान, दोनों देशों की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के साथ-साथ उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी सहयोग विकसित करने के लिए समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए। इसके परिणामस्वरूप, ताशकंद यूनिवर्सिटी ऑफ़ ओरिएंटल स्टडीज़ के विभिन्न संकायों और विभागों में हिंदी भाषा का शिक्षण शुरू हुआ, वर्तमान में भाषाशास्त्र संकाय के अलावा, इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, वैश्विक अर्थशास्त्र और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंध, अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता और अनुवाद के विभागों में हिंदी भाषा पढ़ाई जाती है। नौकरी के अवसरों को और बढ़ाने के लिए उपरोक्त सभी विभागों में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेज़ी भी पढ़ाई जाती है।

वर्तमान में ताशकंद यूनिवर्सिटी ऑफ़ ओरिएंटल स्टडीज़ के अलावा, ताशकंद यूनिवर्सिटी ऑफ़ वर्ल्ड लैंग्वेज़ेज, लाल बहादुर शास्त्री के नाम पर बने भारतीय संस्कृति केंद्र, लाल बहादुर शास्त्री नाम पर 24-माध्यमिक विद्यालय में भी हिंदी भाषा का अध्ययन किया जाता है। उज़्बेकिस्तान में हिंदी भाषा पढ़ने वाले छात्र और छात्राओं की कुल संख्या लगभग 700 है।

आजकल उज़्बेकिस्तान में भारतीय निवेश की भागीदारी के साथ लगभग 40 संयुक्त उद्यम हैं, साथ ही अनेक भारतीय कंपनियों के प्रतिनिधि कार्यालय भी हैं। दोनों देशों के बीच सूचना प्रौद्योगिकी, उद्योग, संस्कृति, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग विकसित हो रहा है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ रही है। यह सब हिंदी भाषा के अध्ययन का दायरा बढ़ाने की प्रासंगिकता को आधार बनाता है।

बायोत रख़्मातोव *सेवानिवृत वरिष्ठ अध्यापक हिंदी, ताशकंद विश्वविद्यालय, उज़्बेकिस्तान।*
संपर्क: bayot@list.ru

जापान

ताकाहाशी आकीरा

लगभग 50 वर्ष पहले मैंने ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में हिंदी में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की और मुझे छोड़कर मेरे सभी सहपाठियों को (क्योंकि मैंने हिंदी विभाग के एम.ए. कोर्स में दाखिला लिया था) अपनी पसंद की या नापसंद की नौकरी मिली। लेकिन जहाँ तक मुझे याद है उनमें से किसी को भी हिंदी से संबंधित कोई नौकरी न मिली होगी। उन दिनों जापानी समाज में हिंदी भाषा की कोई माँग न थी। आम जापानी लोग यह भी न जानते थे कि हिंदी किस चिड़िया का नाम है।

10 या 15 साल पहले से इस माहौल में साफ परिवर्तन होते हुए दिखाई देने लगे हैं। अच्छी मानी जाने वाली कुछ जापानी कंपनियाँ विशेष रूप से ऐसे विद्यार्थियों को चाहने लगी हैं जिनके पास हिंदी की डिग्री है। कुछ प्रशिक्षण हासिल करने के बाद, या किसी प्रकार के प्रशिक्षण के बिना उन विद्यार्थियों को धड़ल्ले से भारत भेज दिया जा रहा है, केवल यह सोचकर कि तुम्हें हिंदी आती है, इसलिए कम से कम भाषा की समस्या न होगी और भूखों मरने की नौबत भी न आएगी। कुछ भारतीय लोग भी यह जानकर खुश हो जाते हैं कि नये जापानी आगंतुकों को टूटी फूटी हिंदी आती है, लेकिन उन्हें काम करना पड़ता है 24 घंटे सिर्फ़ अँग्रेज़ी में। बेचारे जवान जापानी अँग्रेज़ी जल्दी सीख लेते हैं और मेहनत भी खूब करते हैं। भारतीय लोगों के साथ दोस्ती करने में हिंदी बड़ी काम आती है। लेकिन बिजिनेस सिर्फ़ अँग्रेज़ी में। जापानी कंपनी के उच्च और समझदार अधिकारियों को भारत की भाषा संबंधी असली परिस्थिति का सही ज्ञान हो जाने पर हिंदी की माँग जो सतही तौर पर वर्तमान जापानी समाज में तरंगित होते दिख रही है, उसके लुप्त हो जाने में देर न होगी।

लेकिन इस दयनीय परिस्थिति का दोष मैं किसी को देना नहीं चाहता। 50 वर्ष पहले लोग मुझसे यही प्रश्न करते थे कि आप हिंदी क्यों सीख रहे हैं, अँग्रेज़ी या जर्मन क्यों नहीं? आज लोग जर्मन या फ्रेंच विभाग के विद्यार्थियों से भी इस तरह पूछते हैं कि आप जर्मन या फ्रेंच क्यों सीख रहे हैं, अँग्रेज़ी क्यों नहीं? बिज़िनेस की भाषा अँग्रेज़ी है, यह अवस्था सिर्फ़ भारत की ही न होकर आज दुनियाभर की हकीकत बनकर रह गई है। ज़ोरों से हो रहे भूमंडलीकरण के सामने नक्कारखाने में तूती की आवाज़ का उदाहरण भी है। लेकिन एक पुराने फ्रेंच लेखक का कथन मुझे याद आता है, अर्थात् वतन का दूसरा नाम है मातृभाषा। बिज़िनेस ज़रूरी है बेशक, लेकिन प्रेम भी उतना ही ज़रूरी है।

अंत में मैं जापान में हिंदी के प्रसारकार्य में संलग्न एक सार्वजनिक मीडिया संस्था की चर्चा करना चाहता हूँ। वह एनएचके, वर्ल्ड-जापान की हिंदी सेवा है।

जापान में भूकंप एवं त्सुनामि की विस्तृत जानकारी हासिल करने के लिए, दैनिक बोलचाल एवं यात्रा के लिए जापानी भाषा सीखने के लिए इत्यादि अनेक उद्देश्य के लिए हिंदी में विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किये जा रहे हैं। एक बार आप देख लें, तो वहाँ काम कर रहे हिंदी प्रेमी जापानियों को प्रोत्साहन और प्रेरणाएँ मिल जाएँगी। यही मेरी विनम्र इच्छा है।

ताकाहाशी आकीरा *प्रोफ़ेसर एमेरिटस, ओसाका विश्वविद्यालय, जापान। संपर्क: atul53jp@zeus.eonet.ne.jp*

जापान

हिदेआकि इशिदा

इतिहास में जापान और भारत के संबंध हमेशा अच्छे रहे हैं। जापानी लोग भारत को बुद्ध के देश के रूप में सम्मान देते आए हैं। द्वितीय महायुद्ध में जापान अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़ा था, लेकिन नेता जी के आज़ाद हिन्द फ़ौज की वजह से भारत के साथ हमारा संबंध कभी बिगड़ा नहीं था। आजकल तो आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी पहलुओं में हमारे संबंध मज़बूत हैं।

इस समय पूरे जापान में लगभग पचास हज़ार भारतीय रहते हैं। तोक्यो में अट्ठारह हज़ार, आस-पास के इलाकों को मिलाएँ तो तोक्यो एरिया में तीस हज़ार से ज़्यादा। ज़्यादातर लोग आईटी, तकनीकी, मशहूर बहुराष्ट्रीय कंपनी के कर्मचारी हैं। व्यापारी, भारतीय रेस्टोरेंट के रसोइये भी हैं। निश्चित रूप से कहना मुश्किल है कि इनमें हिंदी को मातृभाषा मानने वाले कितने होंगे, लेकिन हिंदी बोलने वाले तो लगभग सभी होंगे। रोचक बात यह है कि जापान में रहने वाले बहुत से नेपाली, पाकिस्तानी, बांग्लादेशी आदि भी हिंदी बोल लेते हैं इसलिए इन लोगों को भी मिलाएँ तो जापान में हिंदी बोल सकने वाले गैर जापानी एक लाख तक पहुँच सकते होंगे।

जापान में हिंदी का शिक्षण सन् 1911 को ''तोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय'' में हिन्दुस्तानी विभाग के खुलने पर शुरू हुआ था। असल में वह हिंदी न होकर हिन्दुस्तानी (वास्तव में उर्दू) थी, लेकिन व्यापक अर्थ में उसको हिंदी शिक्षण की शुरुआत माना जाता है।

इस समय जापान में हिंदी शिक्षण के दो केंद्र हैं; उपर्युक्त ''तोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय'' से विकसित ''तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय'' और ''ओसाका

विश्वविद्यालय"। दोनों में बी.ए. से लेकर पीएच.डी. तक के कोर्स हैं। इनके अलावा दसेक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इतर संस्थानों, छोटे मोटे भाषा स्कूलों को मिलाएँ तो हर साल कई सौ जापानी नौजवान हिंदी पढ़ने लगते हैं। इधर भारत के आर्थिक जगत में खूब विकसित होने से जापान के लिए भारत का स्थान अधिक ऊँचा हो गया है और जो भारतीय जापान में रहते हैं प्रायः उच्च शिक्षित होते हैं इसलिए भारतीयों के प्रति जापानियों के मन में सम्मान की भावना ही है, यह सब से बड़ी खुशी की बात है।

जापान एकभाषिक देश है, यानी यहाँ जापानी भाषा ही चलती है। भारतीय लोग बहुत जल्दी विदेशी भाषा सीख लेते हैं इसलिए यहाँ के भारतीय या तो जापानी में बोलते हैं या अंग्रेज़ी में। नहीं लगता कि वे हिंदी के प्रचार में बहुत उत्साही हैं। यहाँ हर साल इंडिया फ़ेस्टिवल मनाया जाता है। त्योहार स्थल पर पचास के करीब दुकानें सजती हैं लेकिन किसी भी बूथ में हिंदी का नामोनिशान नहीं है। हिंदी दिवस के दिन दूतावास की सुंदर रंगशाला में भारतीय स्कूल के बच्चे हिंदी की महिमा गाते दर्शाते अघाते नहीं हैं, लेकिन मंच से उतरते ही वे आपस में अंग्रेज़ी में बतियाने लगते हैं। मैं तो इसके पीछे की एक तरह की मजबूरी को समझ सकता हूँ लेकिन आम जापानी के लिए यह एक अजीब सी अनुभूति है। यहाँ हिंदी के प्रचार के लिए भारतीय लोग ही अग्रसर होंगे तो स्थिति में वांछनीय परिवर्तन हो जाएगा ऐसा लगता है।

अंत में कुछ शब्द अपने बारे में क्षम्य हों। मेरा विषय है आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य। लंबी चीज़ का तो मुश्किल है, इसलिए हिंदी कहानियों का जापानी में अनुवाद करके अपनी पत्रिका "हिंदी साहित्य" के मारफ़त जापानी पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश कर रहा हूँ। साहित्य में लोगों को आकर्षित करने की अदम्य शक्ति है इसके विश्वास में अपने अदना कार्य से हिंदी की जरा सी भी सेवा हो जाए तो मेरा अहोभाग्य होगा।

हिदेआकि इशिदा *प्रोफ़ेसर इमेरिटस, दाइतो बुंका विश्वविद्यालय, जापान। संपर्क: ishardas920@gmail.com*

डेनमार्क

एल्मार रेनर

आजकल युवा पीढ़ी में पहले की तुलना में बहुत कम लोग हिंदी भाषा सीखने आते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों की बढ़ती व्यापकता, अंग्रेज़ी का बढ़ता प्रभाव इत्यादि।

जैसे यह स्थिति सभी देशों में हर भाषा के साथ है, वैसी ही डेनमार्क में हिंदी के साथ भी है, आजकल हिंदी का अध्ययन करने काफ़ी कम छात्र आ रहे हैं। सिर्फ़ एक कोरियाई भाषा की स्थिति काफ़ी अच्छी है, विश्वविद्यालयों में कोरियाई भाषा के छात्र बढ़ रहे हैं। इसका एक मुख्य कारण यह कि उनके पॉप कल्चर से पश्चिमी और विश्व भर के देशों में युवा वर्ग आकर्षित होता है और उनकी भाषा और संस्कृति में उनकी रुचि जाग्रत होती है। दस साल पहले तक यह बात बॉलीवुड के साथ भी थी। बॉलीवुड फ़िल्मों ने विश्व भर में हिंदी का विज्ञापन किया। लगभग 2000 से 2015 तक पाश्चात्य देशों में बॉलीवुड फिल्मों की एक लहर थी, जो लगता है 'लगान' और 'कभी खुशी, कभी गम' फ़िल्मों से शुरू हुई। युवाओं का रुझान बढ़ाने में शाहरुख ख़ान, फराह ख़ान तथा अन्य हिंदी फिल्मी कलाकारों का बड़ा योगदान रहा है। वह लहर अब ख़त्म होती जा रही है। जर्मनी में ज़ी चैनल पर हिंदी फ़िल्में जर्मन भाषा में डब करके दिखाई जाती थीं। तीन साल पहले वह ज़ी चैनल ख़त्म हो गया क्योंकि अब लोग कोई उसकी सदस्यता नहीं ले रहे।

स्कैंडेनेविया में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए संभावनाएं इसलिए बहुत अधिक हैं क्योंकि इधर डेनमार्क और भारत के राजनीतिक सम्बन्ध काफी प्रगाढ़ हुए हैं। व्यापारिक, आदि कई स्तरों पर उनके सम्बन्ध विकसित हुए। लाजमी है यहाँ की जनता भारत को अधिक जानना चाहेगी, जिससे भाषा का भी महत्व बढ़ेगा।

आजकल हिंदी का पॉप कल्चर पाश्चात्य देशों के लोगों को उतना अधिक आकर्षित नहीं करता। पश्चिम में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए लाभदायक हो सकता है, अगर भारत के कलाकार अपनी पॉप संस्कृति–संगीत, कला, साहित्य, फैशन, नृत्य, फिल्म, साइबर संस्कृति, टेलीविज़न और रेडियो जैसे सांस्कृतिक उत्पादों को ऐसे प्रस्तुत करें कि विदेशी लोग भी उनसे जुड़ सकें। लोकप्रिय संस्कृति मीडिया के वे प्रकार हैं जिनकी व्यापक पहुँच होती है। हिंदी साहित्य को पहले भारत में प्रमुख सामाजिक चर्चाओं का माध्यम बनाना और फैलाना आवश्यक है, ताकि वह फ़िर विदेशों की तरफ अग्रसर हो सके। हिंदी-ऊर्दू जुड़वा भाषा के माध्यम से भी हिंदी को बढ़ावा दिया जा सकता है।

एल्मार रेनर *एसोसिएट प्रोफ़ेसर, कोपनहेगन यूनिवर्सिटी, डेनमार्क, संपर्क: pxd337@hum.ku.dk*

डेनमार्क

विवेक शुक्ल

कुछ यूनिवर्सिटीज़ को छोड़ कर यूरोप में सिर्फ़ हिंदी के कोर्स नहीं हैं। हिंदी भाषा पाठ्यक्रम आमतौर पर दक्षिण एशियाई अध्ययन, इंडोलॉजी, इंडस स्टडीज़ क्लब या इसी तरह के क्षेत्रों में व्यापक कार्यक्रमों के हिस्से के रूप में पेश किए जाते हैं। छात्र भारतीय भाषाओं, जैसे हिंदी, संस्कृतियों और समाजों पर ध्यान केंद्रित करते हुए स्नातक या स्नातकोत्तर डिग्री हासिल कर सकते हैं। ज़्यादातर विश्वविद्यालयों में जब आप किसी और विषय में, जैसे एन्थ्रोपोलॉजी पीएच.डी. लिख रहें हैं तो विद्यार्थियों के लिए भाषा की कोई आवश्यकता नहीं है। जबकि यूएसए में भले ही आप एन्थ्रोपोलॉजी में एम.ए. या पीएच.डी. कर रहे हैं, आपको अपने शोध के लिए उस क्षेत्र की भाषा सीखने पड़ेगी जहाँ आप शोध करना चाहते हैं। चाहे आप उस भाषा का एक साल का डिप्लोमा करें या दो साल का, मगर भाषा आनी ज़रूरी है। यूरोप के ज़्यादातर विश्वविद्यालयों में ऐसी कोई बाध्यता नहीं। आप भारत एन्थ्रोपोलोजी में थीसिस लिख सकते हैं बिना भाषा की कोई जानकारी लिए। एक पहलू यह भी है कि मीडिया में भारत की जो खबरें विदेश में आती हैं वे नकारात्मक आती हैं, ये भी विदेशियों को हिंदी के अध्ययन के लिए हतोत्साहित करती हैं।

जितना जापान और चाइना अपना कल्चरल एजेंडा पुश करते हैं उतना भारत नहीं कर पा रहा है। हिंदी के विकास के सन्दर्भ में सम्भावनाएं बहुत हैं। अगर प्रयत्न किये जाएँ तो यह समस्या दो-तीन साल में ख़त्म हो सकती है। जो डिप्लोमेटिक लॉबी हैं वे स्केन्डिनेवियन देशों के स्कूलों में हिंदी को एक वैकल्पिक भाषा प्रस्तुत करने की दिशा में प्रयत्न करें। हिंदी एक बड़े राष्ट्र और आबादी की भाषा है, इसको अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित करने के लिए एक मुहिम की आवश्यकता है। हिंदी या अन्य भाषाओं में दक्षता प्रमाणन को स्टैण्डर्ड किया जाए, भारत सरकार कुछ नेशनल रेंकिंग शुरू करे।

***विवेक शुक्ल** एसोसिएट प्रोफ़ेसर, आरहुस यूनिवर्सिटी, डेनमार्क, संपर्क: vivekshukla@cas.au.dk*

थाईलैंड

पैतून सांग्केओ
अनुवाद: सुनंदा वर्मा

थाईलैंड में हिंदी की प्रासंगिकता भारत और थाईलैंड को जोड़ने वाले गहरे सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक संबंधों को दर्शाती है। हालाकि थाई समाज मुख्य रूप से अपनी समृद्ध परंपराओं और थाई भाषा से प्रभावित है, हिंदी भाषा ने भी एक स्थान पाया है, जो अंतर-सांस्कृतिक संबंधों और आपसी समझ को बढ़ाता है।

सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संबंध

भारत और थाईलैंड के बीच गहरा ऐतिहासिक संबंध है, जिसमें प्राचीन काल से सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा है। भारतीय महाकाव्य रामायण, जिसे थाईलैंड में 'रामकियन' के नाम से जाना जाता है, लंबे समय से चले आ रहे सांस्कृतिक संबंधों को उजागर करता है। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान में हिंदी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह एक पुल का काम करती है, जिससे थाई लोगों को भारतीय संस्कृति और विरासत को गहराई से समझने का मौका मिलता है। यह संबंध पारंपरिक थाई नृत्य रूपों जैसे खोन (थाई में โขน) और लाखोन (थाई में ละคร) से भी स्पष्ट है, जो भारतीय कथाओं से प्रेरित हैं।

आर्थिक और व्यावसायिक संबंध

भारत और थाईलैंड के बीच आर्थिक संबंध समृद्ध हैं, और दोनों देशों के बीच व्यवसाय के क्षेत्र में सहयोग निरंतर बढ़ रहा है। थाईलैंड के भारतीय उद्यमी और भारत के साथ व्यवसाय करने वाले थाई व्यवसायी हिंदी को अपनी बात समझाने कि लिए उपयोगी पाते हैं। हिंदी भाषा का यह पुल व्यापार और लेन-देन को आसान बनाता है। थाईलैंड

में 50,000 से अधिक भारतीय अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने और स्थानीय वाणिज्य में प्रभावी रूप से संलग्न होने के लिए हिंदी पर निर्भर हैं। अंग्रेज़ी में अधिकतर सब काम हो जाता है लेकिन हिंदी सांस्कृतिक परिचय और विश्वास बढ़ाती है जिससे व्यावसायिक संबंध बढ़ते हैं।

शैक्षिक रुचि

थाई छात्रों के बीच हिंदी में बढ़ती रुचि उल्लेखनीय है। चूललोंगकोर्न विश्वविद्यालय, थम्मासैट विश्वविद्यालय सहित कई थाई विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम हैं, जो भारतीय संस्कृति और भाषा के प्रति व्यापक जिज्ञासा को दर्शाता है। हिंदी सीखने से थाई छात्रों के लिए भारतीय साहित्य, दर्शन और इतिहास को जानने के अवसर खुलते हैं।

हिंदी के साथ यह शैक्षणिक जुड़ाव न केवल विद्वानों और कलाकारों को लाभान्वित करता है, बल्कि द्विभाषियों की एक नई पीढ़ी को भी तैयार करता है जो बढ़ती भारत-थाईलैंड साझेदारी की जटिलताओं को समझ सकती है।

मीडिया और मनोरंजन

थाईलैंड में भारतीय सिनेमा के बहुत प्रशंसक हैं। बॉलीवुड फिल्मों के हिंदी डायलॉग और गीतों ने थाई दर्शकों में हिंदी भाषा के प्रति रुचि जगाई है। यह सांस्कृतिक आत्मीयता भाषा सीखने की इच्छा को बढ़ावा देती है और इससे दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक पुल और मजबूत होता है।

भारतीय दूतावास और सांस्कृतिक केंद्रों की भूमिका

थाईलैंड में भारतीय दूतावास और थाई-भारत कल्चरल लॉज (टीबीसीएल) सहित अन्य सांस्कृतिक केंद्र भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों, भाषा शिक्षण की कक्षाओं और संगोष्ठियों के माध्यम से हिंदी को बढ़ावा देते हैं। यह सभी भारतीय प्रवासियों और थाई नागरिकों को हिंदी से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। यह प्रयास सांस्कृतिक संबंधों में हिंदी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाते हैं।

निष्कर्ष

थाईलैंड में हिंदी की प्रासंगिकता बहुआयामी है, जिसमें सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक आयाम शामिल हैं। यह भारतीय समुदाय के लिए एक महत्वपूर्ण

कड़ी है, जो उन्हें थाई समाज में एकीकृत होने के साथ-साथ अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में मदद करती है। थाई लोगों के लिए हिंदी भारतीय संस्कृति का प्रवेश द्वार प्रदान करती है। भारत और थाईलैंड के बीच बढ़ते और मजबूत होते संबंधों में हिंदी की भूमिका निस्संदेह बढ़ेगी।

पैतून सांग्केओ *सेवानिवृत्त राजनयिक, थाईलैंड विदेश मंत्रालय के अधीन थाईलैंड फाउंडेशन में प्रशासनिक निदेशक, थाईलैंड। संपर्क: paitoon.songkaeo@gmail.com*

सुनंदा वर्मा *सिंगापुर निवासी वरिष्ठ पत्रकार हैं और प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान पर पिछले दो दशकों से कार्यरत हैं। संपर्क: www.sunanda.net; sunandaverma@yahoo.com*

दक्षिण अफ़्रीका

उषा देवी शुक्ल

हमारी सुंदर, मधुर और गहरी हिंदी भाषा उतनी ही पुरानी है जितना कि दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों का प्रवास। गिरमिटिया 1860 में अपनी संस्कृति, धर्म और भाषाओं को साथ लेकर आए। तब से देश में हिंदी विद्यमान है।

एक अनजान देश में प्रवासी की निजी संपत्ति उनकी अपनी पहचान थी जो भाषा, संस्कृति, परंपरा, मूल्यों और धर्म से जुड़ी होती है। हिंदी प्रवासी कई दशकों तक भोजपुरी बोलते थे। उनके कष्ट और संघर्षपूर्ण जीवन का एकमात्र सहारा रामचरितमानस था। रामचरितमानस ने उनकी आकांक्षाओं को पूरा किया और कठिनाइयों में आसरा दिया। जैसे-जैसे देश में जीवन आगे बढ़ा, हिंदीभाषियों ने घरों, मंदिरों और धार्मिक संस्थाओं में, पाठ्य पुस्तकों के अभाव में, रामचरितमानस के माध्यम से हिंदी का अध्ययन करना शुरू किया। दशकों तक हिंदी सीखना और पढ़ाना अनौपचारिक रूप से जारी रहा। हिंदी शिक्षण को अधिकारियों द्वारा कभी भी समर्थन नहीं मिला। यहां तक कि जब भारतीय छात्रों ने सरकारी स्कूलों में जाना शुरू किया, तब भी भारतीय भाषाएं कभी भी पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं थीं। उस समय तक हिंदी भाषा अध्यापकों की सूझबूझ के अनुसार पढ़ाई जाती थी। भाषा का विकास अनिश्चित और अनियमित ढंग से हो रहा था।

1948 में भारत के पंडित नरदेव वेदालंकार द्वारा दक्षिण अफ़्रीका का हिंदी शिक्षा संघ स्थापित हुआ। संघ एक स्वैच्छिक संस्था है। संरचित पाठ्यक्रम के साथ-साथ, उपयुक्त पुस्तकों की तैयारी तथा शिक्षक प्रशिक्षण पद्धति के कारण हिंदी-शिक्षण में सुधार हुआ। हिंदी शिक्षा संघ ने कई शहरों में हिंदी पाठशालाएँ खोलीं। हिंदी विद्यार्थियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई और हिंदी शिक्षा समाज का गौरव बनी।

1961 से डर्बन वेस्टविल विश्वविद्यालय में हिंदी बीए से लेकर पीएचडी तक पढ़ाई जाती थी। दक्षिण अफ़्रीका के अपने प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम ने काशी विश्वविद्यालय से हिंदी में पीएचडी प्राप्त कर, कुछ वर्षों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन स्तर को बढ़ा दिया। फलस्वरूप सैकड़ों विद्यार्थियों को हिंदी का उच्च ज्ञान प्राप्त हुआ।

हिंदी शिक्षा संघ और डरबन-वेस्टविल विश्वविद्यालय में समानांतर कार्य ने हिंदी को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। देश में हिंदी का प्रचार और प्रसार बहुत तेजी से होने लगा। दुर्भाग्यवश वर्ष 2000 में विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा विभाग बंद हो गया तथा कोविड काल में हिंदी की संख्या पर बुरा प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप हिंदी-शिक्षा और छात्रों की संख्या पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

लेकिन हिंदी को लेकर एक तथ्य है जो हमें सुकून और उम्मीद देता है कि संस्कृति, धर्म और भाषा का अटूट संबंध है। भाषा संस्कृति की वाहिका है। आज हिन्दू धर्म तथा हिन्दू धर्मग्रंथ हिंदी भाषा को जीवित रखते हैं। यद्यपि आज हिंदी कम बोली जाती है तथापि हिन्दू धर्म, अध्यात्म, संस्कृति और पूजा-परंपराओं के द्वारा हिंदी भाषा दक्षिण अफ़्रीका में प्रासंगिक है। मनोरंजन भी रुचि बनाए रखता है। हिंदी सिनेमा, हिंदी टेलीविज़न कार्यक्रम, हिंदी संगीत, भजन और फ़िल्मी गाने आज भी वयस्कों और युवाओं के बीच लोकप्रिय हैं। हमारे तीन लोकप्रिय रेडियो स्टेशन हैं जो धार्मिक कार्यक्रमों और वर्तमान मुद्दों पर चर्चा के माध्यम से हिंदी को बढ़ावा देते हैं, जिनमें हिंदी प्रस्तुतियाँ और गाने भी शामिल होते हैं। घरों में हम आज भी खाने-पीने की चीजों और कपड़ों के लिए हिंदी नामों का प्रयोग करते हैं। पिछले 164 वर्षों के हिंदी शिक्षण का प्रभाव आज भी महसूस किया जाता है। आज भी जो लोग हिंदी जानते हैं, पढ़-लिख सकते हैं, उनका बहुत आदर-सम्मान किया जाता है।

हिंदी भाषा को जीवित और प्रासंगिक बनाए रखने में हिंदू धर्म और संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका है। जब तक हमारी धार्मिक संस्थाएँ और मंदिर कार्यरत रहेंगे और हम हिंदू रीति-रिवाजों का पालन करेंगे, तब तक हिंदी सुरक्षित रहेगी। आवश्यक है कि हिंदी भाषियों को यदि अपनी पहचान और अस्तित्व की परवाह है तो किसी न किसी तरह से हिंदी को अपनाना होगा। हिंदी शिक्षा संघ में छात्रों की संख्या और स्तर कैसे बढ़ाएं, इस चुनौती से हम जूझते रहते हैं।

मुझे ब्रह्मा जी के आशीर्वाद पर पूरा भरोसा है कि जब तक धरती पर पहाड़ खड़े रहेंगे और नदियाँ बहती रहेंगी, श्री राम की कथा जीवित रहेगी। जहाँ रामचरितमानस कवच है हमारी हिंदी सुरक्षित रहेगी और दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की प्रासंगिकता पर आँच नहीं आएगी।

उषा देवी शुक्ल *सेवा-निवृत्त वरिष्ठ प्रोफ़ेसर, डरबन विश्वविद्यालय, दक्षिण अफ़्रीका। संपर्क: ushadevishukla56@gmail.com*

न्यूज़ीलैण्ड

सुनीता नारायण

हमारे देश में हिंदी कई कारणों से प्रासंगिक है:

सांस्कृतिक समझ: हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है, और इसे सीखने से भारतीय संस्कृति, परंपराओं और मूल्यों को आंतरिक स्तर से समझने में मदद मिलती है।

संचार: हिंदी जानने से भारत, नेपाल, फ़ीजी, मॉरीशस और अन्य देशों तथा विश्व के 500 मिलियन से अधिक हिंदी भाषियों के साथ संचार का माध्यम हो सकता है। व्यावसायिक अवसर: भारत आज एक बढ़ती अर्थव्यवस्था है।

भारतीय बाजार में व्यापारिक चर्चा के लिए हिंदी जानना लाभदायक है।

राजनीति में भी हिंदी का महत्वपूर्ण स्थान है। न्यूजीलैंड के सरकारी कार्यरतों को फ़ीजी या भारत में कार्य शुरू करने पहले उनको हिंदी की बेसिक ज्ञान दिया जाता है ताकि वे वहाँ के हिंदी भाषियों से सम्वाद कर सकें तथा उनकी संस्कृति को समझ सके।

यात्रा: भारत या अन्य हिंदी भाषी देशों की यात्रा और पर्यटन में हिंदी जानने से यात्रा का अनुभव सुनहरा हो सकता है और यहां का पर्यावरण आसानी से नेविगेट करने में मदद कर सकती है।

व्यक्तिगत विकास: हिंदी जानने से अन्य नई भाषा सीखने में सरलता हो सकती है। यह हमारी याद्दाश्त में सुधार कर सकता है और हिंदी के माध्यम से समस्या-समाधान कौशल में भी वृद्धि हो सकती है।

मेरे लिए हिंदी जानना आज के वैश्वीकरण में एक बहुमूल्य संपत्ति है जो कई व्यक्तिगत, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक लाभ प्रदान करती है।

मैं फ़ीजी हिंदी, हिंदी तथा अंग्रेज़ी में सक्षम हूँ। त्रिभाषी होने से मैं बहुत कुछ पढ़-लिख सकती हूँ, सिखाती हूँ तथा अनुवाद भी कर लेती हूँ। मेरे अस्तित्व एवं पहचान के लिए दोनों हिंदियाँ–मानक हिंदी और फ़ीजी हिंदी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जैसा कि मेरी इस कविता में व्यक्त है–

ऐसी इनकी दोस्ती
हिंदी मेरी नानी मां
फ़ीजी हिंदी मेरी मां
ऐसी इनकी दोस्ती
फ़ीजी हिंदी सीखा घर के आंगन में
हिंदी सीखा गुरुकुल के आंगन में
ऐसी इनकी दोस्ती
घर में बोली मां की हिंदी
बाहर बोली नानी की हिंदी
ऐसी इनकी दोस्ती
एक ने सोचना-बोलना सिखाया
एक ने मुझे लिखना-पढ़ना
ऐसी इनकी दोस्ती
अपनी विरासत दुई (दो) हिंदी
दोनों लेकर न्यूज़ीलैंड आई
ऐसी इनकी दोस्ती
बेटियाँ सीखीं अपनी नानी की हिंदी
सिखाई उनको मैं पर-नानी की हिंदी
ऐसी इनकी दोस्ती
नानी की हिंदी मेरी आत्मा
माँ की हिंदी मेरा हृदय
ऐसी इनकी दोस्ती
दोनों को सिर बिठाऊँगी
साथ इनको ले जाऊँगी
ऐसी इनकी दोस्ती

–सुनीता नारायण

वैलिंग्टन, न्यूज़ीलैंड के कुछ आप्रवासी भारतीयों के विचार हैं–

कश्मीर कौर

मुझे मेरी विरासत, पहचान और संस्कृति से जोड़ती है।

मैं रामायण का पाठ करने में सक्षम हूं–यह हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाओं को संरक्षित करने में मदद करता है और हमारे पास जो थोड़ा ज्ञान है उसे अपने बच्चों तक पहुंचाता है। मैं अपने नेटवर्क के अन्य हिंदी भाषी लोगों के साथ बातचीत करने में सक्षम हूँ।

उपरोक्त मानक हिंदी के लिए हैं, जिसका मैं कभी-कभी उपयोग करती हूँ। मेरी रोजमर्रा की भाषा फ़ीजी-हिंदी, मेरे दिल की भाषा है और न्यूजीलैंड में मेरे लिए इसकी प्रासंगिकता मेरे और मेरे बच्चों के लिए पहचान और अस्तित्व में से एक है।

हर्ष वर्धन

हिंदी सिर्फ़ एक भाषा ही नहीं है, यह एक भावना और जुड़ाव है जो मेरी जड़ों से जुड़ाव का अनुभव कराता है। यह मुझे अपनी मातृभूमि से जोड़े रखता है और मेरी पहचान को एक स्तंभ प्रदान करता है तथा मेरे जीवन में संतुलन प्रदान करता है।

आद्विक घोष

हिंदी भाषा बोलने वाले किसी भी व्यक्ति को एक बड़ा कनेक्शन प्रदान करती है– और यह विश्व में कहीं भी हो सकता है। अपनी विरासत के संपर्क में रहने से मुझे मेलबर्न, ऑस्ट्रेलिया में मित्रों की एक मंडली बनाने में मदद मिली। यह मेरे लिए बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उन मुख्य भाषाओं में से एक है जिसका उपयोग मैं अपने दादा-दादी और परिवार के साथ संवाद करने के लिए करता हूँ।

नितिमा पडनेकर

भले ही '7 समुंदर पार' हूँ, मुझे लगता है कि न्यूजीलैंड में रहते हुए भी मैं भारत के करीब हूँ। इसका एक मुख्य कारण हमारी भाषा हिंदी है, जो भारत या फ़ीजी में जन्मे सभी भारतीयों द्वारा बोली और समझी जाती है। यह हमें एक साथ लाती है और एक सामान्य अभिव्यंजक तरीके से जोड़ती है। जब मैं किसी भी भारतीय से बात करती हूँ तो मैं किसी का रंग के आधार पर नहीं बल्कि बातचीत के माध्यम से भी जुड़ाव महसूस करती हूँ।

न्यूजीलैंड में बड़ी संख्या में हिंदी बोलने-समझने वाले लोग हैं जो प्रवासी और स्थानीय भी हैं। हम सभी इसी भाषा में सांस्कृतिक एवं भारतीय कार्यक्रम मनाते हैं। न्यूज़ीलैंड वासी हमारे बहुभाषी होने का सम्मान और प्रशंसा करते हैं और हमारे इस कौशल की तहेदिल से प्रशंसा करते हैं।

हिंदी मेरे बच्चों को मेरी संस्कृति से जोड़ रही है। वे महाकाव्य और धारावाहिक टीवी देखते हैं जो भारत का इतिहास बताते हैं और उन्हें हमारे मूल्यों, घर-परिवार और भारत से जोड़ते हैं। जब वे विदेश यात्रा करते हैं और हिंदी का प्रयोग करते हैं, तो उन्हें भारतीय और न्यूजीलैंड होने पर गर्व महसूस होता है। मेरे तीन बच्चे दक्षिण अफ्रीका में पैदा हुए हैं, लेकिन चूंकि भारतीय धाराप्रवाह हिंदी बोल पाते हैं, भारतीयों को भी यह पता नहीं होता कि वे भारत से नहीं हैं। उन्हें यह पसंद है और इससे उन्हें गर्व होता है जिसे वे हमारे आसपास के लोगों से बांटना पसंद करते हैं। हम सभी इस भाषा को आसपास के लोगों के साथ साझा करते हैं, उन्हें सिखाते हैं, और हिंदी भाषा का गर्व से प्रदर्शन करते हैं।

दूसरी बात यह है कि चूंकि हम हिंदी जानते हैं इसलिए हम संस्कृत को आसानी से चुन सकते हैं। प्राचीन भाषा संस्कृत आसानी से पढ़ाई नहीं जाती बल्कि इसे सीखने के लिए विशेष विद्यालय में जाना पड़ता है। चूंकि हम हिंदी में सक्षम हैं, इसलिए हमें संस्कृत से जुड़ना, पढ़ना तथा अभ्यास करना आसान लगता है।

सुनीता नारायण *भारत सरकार द्वारा 'विश्व हिंदी सम्मान' से सम्मानित वरिष्ठ हिंदी सेवी, प्रख्यात लेखिका और समाज सेवी, न्यूज़ीलैंड। संपर्क: sunita.d.narayan@gmail.com*

फ़ीजी

सुभाषिनी लता कुमार

भारत से बहुत दूर प्रशांत महासागर की गोद में बसा फ़ीजी देश है, जहाँ की बहुसंख्यक जनता में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार तथा विकास काफी उच्च स्तर तक पहुंचा है। यहाँ के प्रवासी भारतीय रामचरितमानस और हनुमान चालीसा पढ़ते हैं और रामचरितमानस को "रामायण महारानी" कहकर नित्य प्रति उनकी पूजा करते हैं। दिन भर रेडियो फ़ीजी टू, नवतरंग, रेडियो मिर्ची में हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित होते हैं तथा नई से नई हिंदी फ़िल्म लोग देखते हैं। यहाँ का राष्ट्रीय गान भी अंग्रेज़ी और फ़ीजियन भाषा के अलावा हिंदी में भी गाया जाता है। यहीं नहीं, यहाँ पर अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन तथा वर्ष 2023 में 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन का भव्य आयोजन भी हो चुका है।

प्रवासी भारतीयों ने फ़ीजी में हिंदी भाषा और साहित्य को कई दशक पहले से ही अपने साहित्यिक क्षितिज का हिस्सा बना लिया था। यहाँ हिंदी का इतिहास लगभग 145 वर्ष पुराना है। गिरमिट काल के दौरान अनेक अभावों को सहते हुए गिरमिटिया मजदूरों ने अपने आप को तथा अपने अस्तित्व को बचाए रखने की शक्ति महाकाव्य रामचरितमानस से पाई। अनजान देश में विपरीत परिस्थितियों में जीवित रहने की दृढ़ता के मूल में इनका भाषा, धर्म और सांस्कृतिक प्रेम था जो उनके सुख-दुख में, विवशता में, और त्योहारों में इनका साथ देती आया है। दैनिक व्यवहार के लिए भोजपुरी, अवधी फ़ीजियन और अंग्रेज़ी मिश्रित हिंदी बोली और समझी जाती है।

सन् 1920 के बाद, हिंदू मंदिरों का निर्माण शुरु हो गया था और उनमें भजन, कीर्तन, लोकगीतों के साथ-साथ हिंदी की भी पढ़ाई ज़ारी रही। फ़ीजी में हिंदी भाषा का इतना जो प्रचार प्रसार हो रहा है उसका श्रेय प्रवासी भारतीयों को जाता है क्योंकि उन्होंने अब तक हिंदी को न सिर्फ़ जीवित रखा है बल्कि अपनी जड़ों की पहचान कराने में सशक्त

भूमिका भी निभा रहे हैं। प्राइमरी, सेकेंड्री तथा विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा एवं साहित्य की शिक्षा उपलब्ध है जिससे भारतीय बच्चों में हिंदी की परंपरा कायम है।

भारतवंशियों में बोलचाल की भाषा के रूप में 'फ़ीजी हिंदी' या 'फ़ीजी बात' का प्रयोग सामाजिक स्तर पर देखने को मिलता है। यहाँ की आधिकारिक भाषा अंग्रेज़ी है, लेकिन समाज में लगभग सभी हिन्दुस्तानी और कुछ गैरभारतीय भी हिंदी बोलते और समझते हैं। आज फ़ीजी में भारतीय फिल्मी कलाकारों के माध्यम से रेडियो से लेकर टीवी, तथा इंटरनेट और हिंदी समाचार पत्रों के माध्यम से मनोरंजन, संस्कृति, धर्म, सामाजिक शिक्षा आदि विषयों पर हिंदी कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें बॉलीवुड का मुख्य स्थान है। अतः हिंदी मनोरंजन के साथ-साथ मेल-मिलाप और सौहार्द की भाषा है।

फ़ीजी के हिंदी साहित्य को हम दो वर्गों में बांटकर देख सकते हैं। पहले वर्ग का साहित्य वह है जो वहाँ के भारतीयों की अपनी सहज बोलचाल की फ़ीजी हिंदी है। तथा दूसरा वर्ग, हिंदी के उस रूप का है जिसे हम मानक हिंदी की संज्ञा देते हैं। प्रोफ़ेसर सुब्रमनी, प्रोफ़ेसर ब्रिज विलास लाल, रेमण्ड पिल्लई आदि अनेक लेखक हैं जिन्होंने फ़ीजी हिंदी में उपन्यास, नाटक, कहानी लिखकर विश्वव्यापी यश अर्जित किया। हिंदी भाषा न केवल विचारों के आदान-प्रदान का साधन है, बल्कि वह संपूर्ण परंपरा की संवाहक भी है।

12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के पश्चात फ़ीजी में हिंदी भाषा के भविष्य के संबंध में नई राहें दिखाई दे रही है। यह फ़ीजी को भारत तथा अन्य देशों से जोड़ने का माध्यम बनी है। यहाँ हिंदी भाषा एक दूसरे से जुड़ने, धर्म ग्रन्थों की कथाएं सुनने और संस्कृति से जुड़ने की भाषा है।

सुभाषिनी लता कुमार *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, फ़ीजी नेशनल यूनिवर्सिटी, फ़ीजी। संपर्क: Subashni.Kumar@fnu.ac.fj*

बुल्गारिया

बोरिस्लाव कोस्तोव
अनुवाद : सुनंदा वर्मा

बुल्गारिया के लोगों को भारत हमेशा ही एक महान सभ्यता और संस्कृति के उद्गम स्थल के रूप में आकर्षित करता रहा है। 19वीं सदी के महान बल्गेरियाई कवि, लेखक, पत्रकार और क्रांतिकारी–गिओर्गी राकोवस्की, जिन्होंने भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857-59) के दौरान भारत की स्वतंत्रता के समर्थन में आवाज़ उठाई थी, ने बुल्गारिया की भाषा और संस्कृति, बुल्गारिया के रीति-रिवाजों और भारतीय पौराणिक कथाओं के बीच, और बुल्गारिया और भारतीय लोककथाओं के तत्वों में घनिष्ठ समानताएँ स्थापित की थीं। आज नई दिल्ली में "गिओर्गी राकोवस्की" विद्यालय बुल्गारिया-भारत मित्रता का प्रतीक है।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को सीखना भारत की समृद्ध संस्कृति और सांस्कृतिक विरासत को समझने और सराहने की कुंजी है, इसलिए हिंदी और संस्कृत भाषाओं को बुल्गारिया के सोफ़िया विश्वविद्यालय "सेंट ओख्रिद्स्की" में कई वर्षों से सर्टिफ़िकेट और डिप्लोमा स्तर पर पढ़ाया जाता रहा है।

बुल्गारिया और भारत के बीच बढ़ते मैत्री और सहयोग संबंधों ने हिंदी जानने वाले विशेषज्ञों की आवश्यकता को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप 1983 में सोफ़िया विश्वविद्यालय में इंडोलॉजी विभाग "सेंट क्लमेंट ओह्रिडस्की" की स्थापना की गई। उसमें नियमित बी.ए., एम.ए. और पीएचडी कार्यक्रम शामिल थे, और हिंदी और हिंदी भाषाविज्ञान के साथ-साथ उर्दू और संस्कृत में पाठ्यक्रम; भारत का प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास; वैदिक साहित्य; महाकाव्य, प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय साहित्य; आधुनिक हिंदी साहित्य; भारतीय धर्म; आधुनिक भारत पढ़ाए गए।

भारत को ज्ञान की सहस्राब्दी पर्याय के रूप में देखते हुए इंडोलॉजी विभाग के छात्र अत्यधिक प्रेरित हैं। बुल्गारिया की यात्रा के दौरान कई भारतीय नेताओं और अधिकारियों ने सोफ़िया विश्वविद्यालय में इंडोलॉजी विभाग के छात्रों और शिक्षकों से भेंट की है और

सभी ने हिंदी में उनके कौशल और भारत के ज्ञान के उच्च स्तर पर आश्चर्य और प्रसन्नता व्यक्त की है।

इंडोलॉजी विभाग ने अक्टूबर 2023 में अपनी 40वीं वर्षगांठ मनाई। इस विभाग से 300 से ज़्यादा विद्यार्थी स्नातक हो चुके हैं, उनमें से कुछ ने डॉक्टरेट की डिग्री हासिल की है और इंडोलॉजी विभाग में प्रोफ़ेसर बन गए हैं; कई हिंदी, उर्दू, संस्कृत और भारतीय साहित्य पढ़ा रहे हैं और कई यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमरीका के विश्वविद्यालयों में शोध कार्य कर रहे हैं; कुछ विदेश मंत्रालय सहित विभिन्न बल्गेरियाई संस्थानों और विभागों में भी काम करते हैं। इंडोलॉजी विभाग के शिक्षकों, स्नातक और छात्रों ने भारत पर बड़ी संख्या में प्रकाशन किया है और हिंदी से बुल्गारियन भाषा में अनुवाद कर भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल्गेरिया के लोगों के करीब लाया है। वे हर साल बुल्गारिया में विश्व हिंदी दिवस मनाने के लिए तैयार हैं।

अपने कार्य से भारतीय अध्ययन के विद्वान दोनों देशों के बीच मैत्री के मजबूत सेतु का निर्माण करते हैं।

यह भी स्वाभाविक है कि बुल्गारिया के सोफ़िया स्थित इंदिरा गांधी माध्यमिक विद्यालय में भी इंडोलॉजी विभाग के स्नातकों द्वारा हिंदी पढ़ाई जाती रही है।

बुल्गारिया में भारतीय अध्ययन के सहयोग में भारत सरकार सोफ़िया विश्वविद्यालय के इंडोलॉजी विभाग में भारत से हिंदी और संस्कृत के प्रोफ़ेसरों को भेजती रही है; आगरा के केन्द्रीय हिंदी संस्थान में एक शैक्षणिक वर्ष के पाठ्यक्रम के लिए स्नातकों को छात्रवृत्ति प्रदान कर रही है; तथा भारत में विश्वविद्यालयों और संस्थानों में इंडोलॉजी विभाग के संकाय सदस्यों को छात्रवृत्ति प्रदान कर रही है।

मेरी राय में विश्व में भारत की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति लगातार बढ़ रही है, भारतीय कंपनियों की वैश्विक पहुंच बढ़ रही है, बुल्गारिया और भारत के बीच सहयोग गहरा हो रहा है और नए व्यापक क्षेत्रों को शामिल किया जा रहा है। ऐसे में बुल्गारिया में हिंदी की प्रासंगिकता और महत्व भविष्य में और अधिक बढ़ेगा।

बोरिस्लाव कोस्तोव *भारत में बुल्गारिया के पूर्व राजदूत व पूर्व व्याख्याता, इंडोलॉजी विभाग, सोफ़िया विश्वविद्यालय, बुल्गारिया। संपर्क: kostovbk@yahoo.com*

सुनंदा वर्मा *सिंगापुर निवासी वरिष्ठ पत्रकार हैं और प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान पर पिछले दो दशकों से कार्यरत हैं। संपर्क: www.sunanda.net; sunandaverma@yahoo.com*

मॉरीशस

बीरसेन जागासिंह

मॉरीशस के लिए हिंदी की प्रासंगिकता किसी भी रूप में भारत से कम महत्वपूर्ण नहीं है! गिरमिटियों को सर्वप्रथम 1834 में मॉरीशस भेजा गया! उन्हीं श्रद्धेय भोजपुरी भाषी पूर्वज गिरमिटियों के वंशज आज 2024 में हिंदी भाषी हैं!

मॉरीशस में चाहे अंग्रेज़ी राजभाषा है परन्तु फ्रेंच का दबदबा राज भाषा न होते हुए भी सर्व स्वीकार्य है! हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं को तीसरा दर्जा प्राप्त है! भाषाओं के फैले जाल से ऊपर क्रियोली बोली, जिसको बहुतायत बोलचाल में मॉरीशस भर में सभी नागरिक बोलते और समझते हैं, आज उसे भाषा का दर्जा प्राप्त है! यह भी सच है कि भारतीय वंशजों के आपस में प्रयोग की जाने वाली बोलचाल की भाषा भोजपुरी है!

1810 से आज 2024 तक जीवन के हरेक क्षेत्र में फ्रेंच लोगों का बोलबाला है! सभी दैनिक फ्रेंच में हैं! अतः फ्रेंच मॉरीशस में हिंदी सहित अन्य सभी भाषाओं से मीलों मील आगे है! मॉरीशस में भोजपुरी बहुसंख्यकों की बोली होने के कारण अन्य अल्पसंख्यक तमिल, तेलगू, मराठी और उर्दू भाषी लोग भी भोजपुरी समझते और बोलते भी हैं! बैरिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधी द्वारा गिरमिटियों की सेवा करने के लिए भेजे गये बैरिस्टर मणिलाल डॉक्टर ने "ज हिन्दुस्तानी" साप्ताहिक का सम्पादन अंग्रेज़ी और हिंदी में प्रारम्भ किया तब तक मॉरीशस के सभी भारतीय गिरमिटियों के वंशज भोजपुरी बोलते और समझते थे! परन्तु भोजपुरी से हिंदी की ओर मात्र बिहारी लोग अग्रसर हुए! शेष गिरमिटिये अपनी-अपनी तमिल, तेलगू, मराठी और उर्दू भाषा सीखने लगे, न कि हिंदी! अतः हिंदी मॉरीशस में आज सभी भारतीय वंशजों की भाषा न होकर लगभग पाँच लाख हिन्दुओं की भाषा है!

उपनिवेशकों की अंग्रेज़ी और धनकुबेरों की फ्रेंच मॉरीशस के सभी स्कूलों में माध्यमिक कक्षाओं तक अनिवार्यतः सभी छात्र पढ़ते हैं जबकि हिंदी मात्र लगभग पाँच लाख बिहारी वंशज हिन्दू ही पढ़ते हैं! शेष गिरमिटियों के वंशज तमिल, तेलगू, मराठी और उर्दू पढ़ते हैं! हिंदी बी ए ऑनर्स, एम ए और पीएच डी तक महात्मा गांधी संस्थान में पढ़ाई जाती है!

मॉरीशस के गिरमिटियों के वंशज आज के साथ-साथ कल की चिन्ता करने वाले कमरतोड़ परिश्रम करने वाले प्राणी थे! बचत और बच्चों की शिक्षा उनकी प्राथमिकताएँ थीं! थोड़ी सी समृद्धि आने पर उन्होंने अंग्रेज़ी-फ्रेंच पढ़ रहे अपने वंशजों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड भेजना प्रारम्भ किया था! हिंदी उनकी संस्कृति की भाषा मात्र थी! सांस्कृतिक कार्यक्रम, पूजा-पाठ, कथा-वार्ता, तीज-त्यौहार आदि के शुभ अवसरों पर हिंदी का सदुपयोग हुआ करता था… और आज भी है! वर्ष 1948 में संविधान में राजनीतिक परिवर्तन हुआ कि चुनावों में मतदान करने का अधिकार देश की किसी भी भाषा में हस्ताक्षर करने वाले नागरिक को प्राप्त होगा! मतदान करने का अधिकार पहले मात्र शिक्षित और धनी लोगों को प्राप्त था! मतदाता बनकर देश पर राज करने के लिए सभी भारतीय गिरमिटियों के वंशज अपनी-अपनी हिंदी, तमिल, तेलगू, मराठी, उर्दू आदि भाषाएँ सीखने लगे थे! चुनाव के समय बहुसंख्यक हिंदी भाषी हिन्दुओं को आकर्षित करने के लिए नेतागण हिंदी बोलने लगे थे! विधिवत स्कूली पाठ्यक्रमों में हिंदी शिक्षण के लिए व्यवस्था की गई थी! हिंदी संस्कृति की भाषा से वोटों की भाषा बन चली थी! और आज 2024 में हिंदी पूर्व प्राथमिक से विश्वविद्यालय तक में पढ़ी-पढ़ाई जाती है। मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता पनप न सकी। वर्ष 1909 से चाहे "ज हिन्दुस्तानी" साप्ताहिक हिंदी-अंग्रेज़ी में निकलने लगा था, बाद के वर्षों में भी दस-बारह और शीर्षकों से समय-समय पर पत्र–पत्रिकाएँ हिंदी में निकलीं-कुछ धार्मिक, कुछ राजनीतिक और कुछ साहित्यिक भी! सभी काल के गाल में असमय समा गईं! पहला कारण था–जाति-पाति और ऊँच-नीच और राजनीतिक मतभेद! दूसरा कारण था विज्ञापनों का अभाव! ढेरी के साँपों की तरह देश के समस्त उद्योग-धंधों, व्यापारों, बैंकों, इंश्योरेंस, आयात-निर्यात, शक्कर उद्योग आदि पर कुंडली मारकर बैठे फ्रेंच धनकुबेर भला हिंदी के पत्रों को विज्ञापन क्यों देते?! बिना विज्ञापनों के जल बिन मछली की तरह हमारी सभी हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ तड़प-तडप कर मरती रहीं! आज 2024 में भी स्थिति यथावत है।

आज–वर्ष 2024 में–हिंदी पत्रकारिता के नाम पर आर्य सभा मॉरीशस का साप्ताहिक "आर्योदय" 1950 से अविरल प्रकाश में आ रहा है! महात्मा गांधी संस्थान की "बसंत" और "रिमझिम" देश की दो साहित्यिक हिंदी पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं! शेष शीर्षक–पंकज, आक्रोश और इन्द्रधनुष जब-तब छपते हैं! न मासिक, न त्रैमासिक और न ही कोई वार्षिक पत्रिका छपती हैं, सिवाय विश्व हिंदी सचिवालय की "विश्व हिंदी पत्रिका" के! मॉरीशस का हिंदी साहित्य बहुत धीमी गति से चल रहा है! अभिमन्यु अनत के बाद कतिपय प्रसिद्ध हस्ताक्षर उभरे थे–रामदेव धुरन्धर, प्रह्लाद रामशरण, राज हीरामन, इन्द्रदेव भोला, धनराज शंभु, बीरसेन जागासिंह आदि! वर्ष 1968 में राष्ट्र कवि रामधारीसिंह दिनकर एवं कविवर शिवमंगलसिंह सुमन मॉरीशस पधारे थे! साहित्यकारों के संदर्भ में दिनकर ने कहा था "....पौधे वहीं रहते हैं, बसंत आने पर फूल नये-नये खिलते हैं!" मॉरीशस में बसंतें तो आती रहीं, जाती रहीं परन्तु आज 2024 में भी सुगंधित फूल खिलने में विलम्ब क्यों हो रहा है! प्रसारण क्षेत्र में सचमुच हिंदी फ़िल्मी गानों के कार्यक्रम सातों दिन और चौबीसों घंटे अर्ध सरकारी और प्राइवेट स्टेशनों से प्रसारित होते रहते हैं! हाँ, रेडियो-रूपक, भेंट-वार्ता, साक्षात्कार, व्यंग्य आदि विविधता की कमी खलती है! टेलीविजन की भी यही स्थिति है। हिंदी सीरियलों की बाढ़ उतरी रहती है परन्तु साहित्यिक कार्यक्रमों की कमी खलती है। कवि-सम्मेलन तक देखने-सुनने को नहीं मिलते! फ्रेंच और क्रियोल कार्यक्रमों की तरह हिंदी कार्यक्रमों में विविधता की कमी खलती है। देश की 70% जनता हिंदी समझती, बोलती और हिंदी गाने गाती-गुनगुनाती है! भोजपुरी में भी चैनल हैं परन्तु कार्यक्रमों में विविधता नहीं हैं।

ऊपर चर्चित तथ्यों के दर्पण में दृष्टिपात करने से स्पष्टतः आज 2024 के मॉरीशस में विश्व भाषा हिंदी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य सहित वर्तमान की बिना लाग-लपेट की स्थिति का भान हो जाता है! मॉरीशस में हिंदी की बागडोर थामकर चिर प्रतीक्षित उद्देश्य–हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का संकल्प–पूर्ण करने का जी-जान से प्रण करने वाले मॉरीशस के भारतीय गिरमिटियों के ठेठ वंशज ही हैं, न कि मूल भारतीय नागरिक जिन्होंने हरे-भरे चरागाहों की चाह लेकर विदेशों में डेरा जमाए हिंदी का जाप करते नज़र आते हैं! प्रश्न करना स्वाभाविक है कि इंदिरा गांधी के शब्दों में "ग्रेट लिटिल कन्ट्री" अर्थात् लघु महान देश मॉरीशस अपनी मध्यम आर्थिक स्थिति, मात्र साढ़े बारह लाख की आबादी, केवल पाँच-छः लाख हिंदी भाषी जनता और दक्षिण हिन्द महासागर में मात्र सात सौ बीस वर्गमूल का द्वीप-देश क्यों और कैसे भारतेतर देशों में हिंदी का संसार भर में सर्वश्रेष्ठ हिंदी पक्षधर देश है! क्योंकि भारत के बाहर मॉरीशस संसार का मात्र देश है

जहाँ प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति दोनों भारतीय वंशज हिंदी भाषी हिन्दू हैं! जहाँ की आधी से अधिक नागरिकों के माँगानुसार विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हुई है! जहाँ गलियों में भोजपुरी गूँजती है, जहाँ दिन-रात हिंदी फ़िल्में प्रदर्शित होती हैं, जहाँ हिंदी पीएच.डी. तक पढ़ाई जाती है, जहाँ विश्वस्तरीय अभिमन्यु अनत जैसे हिंदी साहित्यकार उत्पन्न हुए, प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल जैसे हिंदी-हिन्दुत्व-भारतीयता के महान प्रचारक-उपदेशक का जन्म हुआ, जहाँ घर-घर यज्ञ, हवन, पूजा, सत्संग, मानस-पाठ होते हैं, जहाँ तीन सौ तक मंदिर-शिवालय हैं, जहाँ शिवरात्रि, होली, दीपावली आदि पर्व-त्यौहार निष्ठा एवं भक्ति पूर्वक मनाई जाती हैं, जहाँ अंग्रेज़ी-फ्रेंच का साथ-साथ हिंदी का खूब बोलबाला है! भारत के बाहर मॉरीशस जैसा लघु भारत देश और कहीं नहीं है जहाँ लोग हिंदी, हिन्दुत्व, भारतीय संस्कृति, सनातन वैदिक हिन्दू धर्म से तन-मन-धन से जुड़े हों। मॉरीशस अफ्रीका महाद्वीप में सबसे उन्नतिशील देश है जिसका उदाहरण संयुक्त राष्ट्र संघ संसार भर के देशों के समक्ष प्रस्तुत करता है! मॉरीशस को पूर्ण विश्वास है कि शीघ्र राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में भारत को स्थाई सदस्यता प्राप्त हो जाएगी! तब विश्व की तृतीय महासत्ता बन रहे भारत की राष्ट्र भाषा हिंदी बिना किसी विघ्न-बाधा के संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बन कर रहेगी! मुट्ठी भर स्पैनिश, रूसी, फ्रेंच और अरबी बोलने वालों की भाषाएँ जब राष्ट्र संघ की औपचारिक भाषाएँ हैं तब उनसे कहीं अधिक बोलने वाले हिंदी भाषियों की हिंदी के साथ ऐसा अन्याय क्यों! मॉरीशस के हिंदी भाषी नागरिकों की चिर् प्रतीक्षित आशा पूर्ण होगी! मॉरीशस के लिए हिंदी की प्रासंगिकता किसी भी रूप में भारत से कम महत्वपूर्ण नहीं है!

बीरसेन जागासिंह *चर्चित हिंदी साहित्यकार तथा सेवानिवृत्त हिंदी अध्यापक, महात्मा गाँधी हिंदी संस्थान, मॉरीशस। संपर्क: beersen.jugasing@icloud.com*

स्विट्ज़रलैंड

निकौला पौत्ज़ा

लोज़ान विश्वविद्यालय में हिंदी, दक्षिण एशियाई अध्ययन विभाग (Department of South Asian Studies) में वर्ष 1971 से मौजूद है लेकिन संस्कृत भाषा 1903 से ही लोज़ान विश्वविद्यालय में पढ़ाई जाती है। 2011 में उर्दू के साथ हिंदी का एक नया पाठ्यक्रम भी शुरू किया गया। हिंदी भाषा और इसके विशाल साहित्य के ज्ञान को बढ़ावा देने के लिए बोलने, पढ़ने और अनुवाद करने के सेमिनार उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, पिछले सेमेस्टरों में ऐसे विषय पढ़ाए गए, जैसे आधुनिक हिंदी कविता (क्लास में हमने निराला, अज्ञेय, कुँवर नारायण और जसिंता केरकेट्टा की कविता पढ़ी), या हिमालय में हिंदी के यात्रा-वृत्तांत (जैसे राहुल सांकृत्यायन, अनिल यादव, गगन गिल, और अजय सोडानी के)।

हिंदी भाषा और साहित्य पर नियमित कक्षाओं के अलावा, हमारा विभाग भारत के इतिहास, संस्कृति और साहित्य पर सम्मेलन भी आयोजित करता है। उदाहरण के लिए, 2021 मैंने अपूर्व नारायण के साथ एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया था, जिसका शीर्षक था "So Far, Yet So Close. Kunwar Narain's Poetry in Translation"। संगोष्ठी के लिए इन प्रसिद्ध कवि के अनुवादकों को बुलाया गया था, जिनके द्वारा दुनिया भर की एक दर्जन भाषाओं और देशों का प्रतिनिधित्व किया गया। अपूर्व नारायण के साथ, अब हम इस संगोष्ठी पर आधारित निबंधों का एक पुस्तक संपादित कर रहे हैं। लॉज़ेन विश्वविद्यालय में हिंदी साहित्य और भारतीय संस्कृति पर नियमित रूप से आयोजित होने वाले कई कार्यक्रमों के ये कुछ उदाहरण हैं।

अकादमिक संसार में हिंदी और उर्दू का अध्ययन बहुत समृद्ध और सजीव है, फिर भी जब आम जनता या स्कूलों से निकलने वाले बच्चों की बात आती है, तो हिंदी के स्थान की पहचान बहुत कमज़ोर हो जाती है। हिंदी भाषा की विडंबना यह है कि दुनिया

में तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा होने के बावजूद, इसके महत्व को भारत के बाहर अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है।

हमारी परिस्थिति में, यानी एक छोटे देश के एक छोटे विश्वविद्यालय में, उस मामले में चीज़ों को बदलना मुश्किल है। फिर भी, हमारे यहाँ के शिक्षण में हिंदी और भारत को पढ़ाने और समझाने के उपाय पर हमारा कुछ प्रभाव कम से कम हो सकता है। इसीलिए कुछ साल पहले मैंने फ्रेंच भाषी छात्रों के लिए (स्विट्ज़रलैंड के इस हिस्से में बोली जाने वाली भाषा) एक नई हिंदी पाठ्यपुस्तक लिखने का फैसला किया था। उस किताब के दोनों खंड (आरंभिक और मध्यवर्ती स्तर) 2022 और 2023 में प्रकाशित हुए थे—किताब का शीर्षक है Le hindi… comme enl nde (भारत में जैसी हिंदी)। पुस्तक के संवाद 2022 अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार विजेता भारतीय लेखिका गीतांजलि श्री के द्वारा लिखे गए, और उसके अभ्यास विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के एक शिक्षक (वाराणसी से श्री विमल मेहरा) के सहयोग से लिखे गए।

यह पुस्तक जीवंत संवादों और मुहावरेदार वाक्यों के माध्यम से हिंदी भाषा की व्यापक रेंज प्रस्तुत करते हुए हिंदी साहित्य के सबसे प्रसिद्ध लेखकों के कार्यों में पाई जाने वाली हिंदी का सम्मान करती है। इस प्रसिद्ध कहावत को लागू करने की कोशिश करती भी है, जिसे गीतांजलि श्री ने एक संवाद में रूपांतरित किया है, "भारत तो अपनी विविधता के लिए प्रसिद्ध है। महाभारत के लिए कहा गया है कि जो कुछ दुनिया में है वह उसमें मिलेगा, और जो कुछ उसमें नहीं वह दुनिया में नहीं! यही बात इस देश पर भी लागू होती है। यह तो कहने का एक ढंग है, एक रूपक, कोई वैज्ञानिक सत्य नहीं। "

उम्मीद है कि स्विट्ज़रलैंड में हमारे छात्रों को इससे भारत की एक जीवंत और विविध छवि बनाने में मदद मिलेगी। मगर यह निश्चित है कि केवल यह किताब भारत के बारे में जनता की छवि और ज्ञान को नहीं बदल सकेगी। हिंदी में रुचि बढ़ाने के लिए किसी नई अराजनीतिक नरम शक्ति (apolitical soft power) की आवश्यकता तो है, जो आज की युवा पीढ़ी के सामान्य हितों और अपेक्षाओं का जवाब दे सके—जिस तरह दक्षिण कोरिया और जापान आजकल माँगा (manga), ऐनिमे (anime) इत्यादि के द्वारा सफलतापूर्वक कर रहे हैं। तभी—इसमें कोई संदेह नहीं—युवा पीढ़ी को भी (विद्वानों की पिछली पीढ़ियों की तरह) भारत की संस्कृति, साहित्य और भाषाओं में एक ताज़ी दिलचस्पी ज़रूर फिर हो जाएगी।

निकौला पौत्ज़ा *हिंदी प्राध्यापक, लोज़ान विश्वविद्यालय, स्विटज़रलैंड। संपर्क: nicola.pozza@unil.ch*

फ़ीजी

सुब्रमनी
अनुवाद: सुनंदा वर्मा

फ़ीजी में हिंदी और छोटी-छोटी क्रांतियाँ

भारत की महानता (आर्थिक और राजनीतिक) के इस दौर में, फ़ीजी के दृष्टिकोण से उन घटनाओं के बारे में बात करना उचित है जब हिंदी में क्रांति हो सकती थी, लेकिन हुई नहीं। यह एक संक्षिप्त और गूढ़ निबंध है, जो उन क्षणों पर केंद्रित है, जब हिंदी के लिए फ़ीजी में संभावनाएँ खुलीं और या तो उनका फ़ायदा उठाया गया या उन्हें टाल दिया गया।

मेरा अपना दृष्टिकोण एक ऐसे लेखक का है जो 1970-80 के दशक में दक्षिण प्रशांत क्षेत्र में कला और साहित्य के ऐतिहासिक पुनर्जागरण के बीच में था, जब कुछ नया अस्तित्व में आया था, जिसे अब 'दक्षिण प्रशांत साहित्य' कहा जाता है, और जिस पर भारत सहित दुनिया भर के विश्वविद्यालयों में अध्ययन और शोध किया जाता है।

साहित्यिक या भाषाई संस्कृति को अस्तित्व में लाने वाला व्यक्ति, क्षण या परिवेश होता है। 2018 में नव स्थापित यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ीजी में शिक्षा से जुड़े विद्वानो और गणमान्य नागरिकों के समक्ष, वातावरण को अनुकूल पाते हुए मैंने कहा था कि अपने देश में हिंदी एक लुप्तप्राय भाषा बन रही है। मेरा आकलन हाई स्कूल और विश्वविद्यालयों में हिंदी में नामांकन में कमी, हिंदी पढ़ाने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण लेने वाले स्नातकों की कम संख्या और देश के एकमात्र हिंदी समाचार पत्र द्वारा अपने आधे प्रकाशन को रोमन लिपि में प्रकाशित करने के विकल्प पर आधारित था। मैंने कहा था कि भाषा के एक्टिविस्टों को हिंदी के लिए एक अभियान चलाने की ज़रूरत है। मेरे शब्द सोच में क्रांति नहीं लाएंगें, यह मैं जानता था, लेकिन उम्मीद थी कि कम से कम गंभीर चिंता पैदा करेंगें। ऐसा कुछ नहीं हुआ।

2001 में, जब डउका पुरान पुस्तक प्रकाशित हुई, तब नई दिल्ली में हिंदी विद्वानों और लेखकों के सम्मेलन में प्रोफ़ेसर विमलेश कांति वर्मा ने इस पुस्तक को 'क्रांतिकारी

उपन्यास' बताया था। इस कथन पर संक्षिप्त चर्चा की उम्मीद थी। लेकिन इसके बजाय चर्चा आधार ग्रंथों की व्याख्या पर ही चलती रही।

डउका पुरान की प्रस्तावना में प्रोफ़ेसर हरीश त्रिवेदी ने उत्तेजक टिप्पणी की कि अगर वी.एस. नायपॉल और सलमान रुश्दी जैसे भारतीय मूल के लेखकों ने अपनी किताबें हिंदी में लिखी होतीं तो विश्व साहित्य में क्रांति आ जाती। आखिरकार वे 'जड़ों की तलाश' में थे। भाषा ने उन्हें नहीं चुना था।

2017 में पंद्रह साल की मेहनत के बाद 1000 से ज़्यादा पन्नों की एक महान कृति 'फ़ीजी माँ: मदर ऑफ़ अ थाउज़ेन्ड' पूरी हुई। हिंदी के मित्रों ने सुझाव दिया कि पांडुलिपि को नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पास ले जाया जाए, जो न सिर्फ़ इसे प्रकाशित करेगा बल्कि कई भाषाओं में इसका अनुवाद भी कराएगा। मैं वाकई बहुत उत्साहित था। ऑस्ट्रेलिया काउंसिल फ़ॉर द आर्ट्स ने इस उपन्यास को हिंदी में लिखने के लिए अनुदान दिया था (यह उनकी उदारतापूर्ण पहल थी); भारत इस काम को उसकी योग्यता के आधार पर प्रकाशित करेगा, यह उम्मीद रखी जा सकती थी। पांडुलिपि को दिल्ली के वसंत कुंज ले जाया गया। फ़ीजी द्वीप समूह के इस उपन्यास को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया गया।

इस वर्ष (2024) अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान विजय मिश्रा ने फ़ीजी हिंदी साहित्य में सबऑल्टर्न नैरेटिव्स नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें 'फ़ीजी मां' (और डउका पुरान) के लेखक को 'विश्व साहित्य के महान लेखकों' की श्रेणी में रखा गया है। आलोचकों ने तुरंत मिश्रा की पुस्तक और उनके द्वारा लिखे गए उपन्यासों को महान बताया, उन्होंने कहा कि दोनों ने साहित्य में ऐसा कुछ हासिल किया है जो पहले कभी नहीं हुआ।

भारत की महानता के वातावरण में यह विचार करना चाहिए कि कैसे भाषाई क्रांति से हिंदी को अर्थव्यवस्था, राजनीति और विश्व नेतृत्व में देश की असाधारण उपलब्धियों के साथ स्थान दिलाया जा सकता है।

सुब्रमनी *फ़ीजी के प्रख्यात अंग्रेज़ी और हिंदी लेखक, पूर्व प्रोफ़ेसर, अंग्रेज़ी विभाग, यूनिवर्सिटी ऑफ़ साउथ पैसिफ़िक, सूवा; 'डउका पुरान' तथा 'फ़ीजी माँ' जैसे महाकाव्यात्मक उपन्यासों के यशस्वी लेखक, विश्व हिंदी सम्मान से सम्मानित हिंदी रचनाकार। संपर्क: ramansubramani25@gmail.com*

सुनंदा वर्मा *सिंगापुर निवासी वरिष्ठ पत्रकार हैं और प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान पर पिछले दो दशकों से कार्यरत हैं। संपर्क: www.sunanda.net; sunandaverma@yahoo.com*

जापान

हीरोको नागासाकी

हिंदी-जापानी के मध्य शब्द-विनिमय: कुछ उदाहरण

ओसाका विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग अपनी एक शताब्दी से अधिक की अवधि पूरी कर चुका है। यहाँ चार-वर्षीय बी. ए. कार्यक्रम में लगभग सौ छात्र हिंदी का अध्ययन करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ हिंदी में एम. ए. तथा पी-एच. डी. की उपाधि भी प्राप्त की जा सकती है। मेरे लिए यह गर्व की बात है कि मैं अनेक वर्षों से यहाँ अध्यापिका के रूप में जापान के हिंदी-प्रेमियों को प्रेरित कर रही हूँ। हाल के कुछ वर्षों के दौरान जापान में आने वाले भारतीयों की संख्या में बढ़ोतरी के साथ हिंदी के महत्व में वृद्धि हुई है।

मेरा यह संक्षिप्त आलेख हिंदी-संस्कृत व जापानी के बीच हुए शब्द-विनिमय पर केंद्रित है। हालांकि हिंदी-संस्कृत और जापानी के बीच भाषावैज्ञानिक संबंध तो नहीं है, पर बौद्ध धर्म के माध्यम से आई शब्दावली में से कुछ शब्द समय के साथ जापानी में विशेष अर्थों में प्रयोग किए जाते रहे हैं। कुछ दिलचस्प उदाहरणों से मेरी बात स्पष्ट हो जाएगी। जापान में महात्मा बुद्ध जी के 'शरीर' को 'शरी' कहा जाता है तथा जापान के मुख्य भोजन, चावल को भी यही नाम दिया गया है। मान्यता है कि भगवान बुद्ध की हड्डियों का आकार चावल के समान है और ये दोनों बहुत पवित्र हैं। 'दान' को पालि भाषा के 'दन्न' के रूप में जापानी में अपनाया गया और पहले इसे मंदिर में दान देने वाले व्यक्ति के अर्थ में इस्तेमाल किया गया था, लेकिन आजकल यह पत्नियों द्वारा अपने पतियों के लिए प्रयोग किया जाता है। 'नरक' शब्द का प्रयोग जापानी नाटकों के मंच पर बने एक छेद के लिए किया जाता है। काबुकी जैसे पारंपरिक जापानी मंचों पर, अभिनेता वहाँ से नीचे कूदते हैं या अचानक उस गड्ढे में गायब हो जाते हैं। 'नरक के तल में गिरना' को जापानी में 'इस दुनिया में नरक जैसे दुख सहना' के अर्थ में प्रयोग किया जाता है,

पर यह अभिव्यक्ति समांतर रूप से नाट्य-मंच के उस छेद में गिरने के अर्थ में भी प्रयुक्त होती है।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक समय में जापानी मैंगा (कॉमिक्स) लेखकों ने हिंदी भाषा का बहुत ही उदारता से उपयोग किया है। उदाहरण के तौर पर, इस मनोरंजक जापानी विधा में कृष्ण, करुण, और क्षण जैसे नामों वाले पात्र अक्सर दिखाई देते हैं। भारतीय नामों वाले ये पात्र भारतीय नहीं होते, बल्कि जापानी किशोर होते हैं, जो नरक में जाकर राक्षसों से लड़ते हैं। मैंगा धारावाहिकों में लोकप्रिय चरित्र 'नारुतो' अपने शरीर में बड़ी संख्या में चक्र रखता है जिनके बल पर वह दुष्ट शत्रुओं को हराता है। इसी तरह, 'कढी (करी)' जो कि भारतीय व्यंजन है, जापान में 'करी राइस' (कढी-चावल) के रूप में बहुत लोकप्रिय है और रोजाना कई लोगों द्वारा खाया जाता है। यहाँ तक कि इसकी लोकप्रियता को देख कर विदेशी पर्यटक गलतफ़हमी के कारण इसे एक पारंपरिक जापानी व्यंजन समझ लेते हैं।

यह तो प्रसिद्ध है कि 'रिक्शा' जापानी शब्द है। जापान में 'रिक्शा' मूल रूप से एक मानव-चालित वाहन था जिसे व्यक्ति द्वारा खींचा जाता था। हिंदी भाषा में इस शब्द को अपनाने के बाद, 'साइकिल रिक्शा' और 'ऑटो रिक्शा' जैसे नए शब्दों का निर्माण हुआ। इस तरह, दोनों भाषाओं के बीच का यह शब्द-विनिमय भारत व जापान के दीर्घकालिक सांस्कृतिक संबंधों का सुफल है।

हीरोको नागासाकी *वरिष्ठ प्रोफ़ेसर, ओसाका विश्वविद्यालय, जापान। संपर्क: nagasakihiroko.hmt@osaka-u.ac.jp*

खंड-दो
विदेश में हिंदी
स्थिति और संभावनाएं

अमरीका

कुसुम नैप्सिक

उत्तरी अमरीका में हिंदी शिक्षण का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। बीसवीं शताब्दी में लगभग पचास के दशक में इसका आग़ाज़ हुआ, जहाँ हिंदी शिक्षण का सिलसिला अमरीका में भारतीय स्वतंत्रता के उपरांत नव भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति को बूझने के लिए हुआ, वहीं हिंदी की गाड़ी कनाडा में थोड़ी धीरे चली क्योंकि मुख्य रूप से वहाँ पंजाबी का बोलबाला था। इस लेख में अमरीका में हो रहे हिंदी शिक्षण का वर्तमान स्वरूप उकेरा जाएगा, इसमें होने वाले हिंदी प्रशिक्षण, सम्मेलन, शिक्षण पद्धति, शिक्षण सामग्री और शिक्षण की समस्याओं आदि बिंदुओं पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

शुरुआत अपने एक निजी अनुभव से करती हूँ। जब अमरीका में पहली बार मुझे फ़ुलब्राइट टीचर असिस्टेंट के तौर पर पढ़ाने का मौक़ा मिला तब मुझे एक हिंदी के प्रोफ़ेसर के साथ काम करना था। मुझे लगा हिंदी पढ़ाना बहुत आसान है, क्योंकि हिंदी तो मुझे आती ही है। ख़ैर, मुख्य प्रोफ़ेसर ही सभी कक्षाएँ लेते थे मैं कभी-कभी कुछ उदाहरण देती थी और गृहकार्य जाँचने का काम करती थी। मैंने कभी ध्यान ही नहीं दिया कि वे व्याकरण कैसे सिखाते हैं। एक दिन मैं कार्यालयी समय के दौरान अपने दफ़्तर में बैठी थी। तभी एक छात्रा आई और बोली कि उसके कुछ व्याकरण के सवाल हैं। उसने पूछा, “उसने खाना खा लिया होगा? इसमें क्यों ‘खा लिया होगा’ तीन क्रियाएँ एक साथ हैं? इसको इस तरह क्यों प्रयोग करते हैं?

मैं उसको वाक्य का मतलब बताने लगी जिससे वह थोड़ी बेचैन होकर बोली, “मुझे सिर्फ़ जानना है कि यहाँ तीन-तीन क्रियाएँ क्यों हैं?

मैंने कहा, “मुझे नहीं मालूम कि इसमें तीन क्रियाएँ क्यों हैं?”

मेरा तो मुँह ही उतर गया। मैंने कभी व्याकरण और वाक्य संरचना के बारे में सोचा ही नहीं था। तब मुझे लगा हिंदी पढ़ाना इतना भी आसान नहीं है। और अगर हिंदी पढ़ानी है तो इसका प्रशिक्षण लेना ही पड़ेगा क्योंकि भारत में इस तरह कोई भी भाषा नहीं सिखाई जाती, न अंग्रेज़ी, न हिंदी और न संस्कृत। तो फिर मैंने ख़ुद से हिंदी के व्याकरण का अध्ययन करना शुरू कर दिया और अमरीका में मिलने वाले प्रशिक्षण और सम्मेलन में जाने लगी।

तो मैं यहाँ उसी के बारे में बात करूँगी। इन प्रशिक्षण कार्यशालाओं में शिक्षकों को पढ़ाने की नई-नई तकनीकों से अवगत कराया जाता है। मेरे विचार से कोई भी भाषा शिक्षक अमरीका में इससे वंचित नहीं रह सकता क्योंकि ये प्रशिक्षण बार-बार और अनेक शहरों में साल-भर होते रहते हैं, और कोरोना के बाद तो अधिकांश ऑनलाइन होते हैं। सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात है कि ये प्रशिक्षण ज़्यादातर मुफ़्त होते हैं फिर कोई इनसे अछूता कैसे रह सकता है?

इनमें सबसे पहले आता है शिकागो विश्वविद्यालय के 'भाषा केंद्र' से चलने वाला भाषा प्रशिक्षण का कार्यक्रम जोकि 'ऐंड्रू मेलन फंड' से चलाया जाता है। इसमें मुख्य रूप से सिखाया जाता है कि कैसे पारम्परिक उपाख्यानों के बदले खेलों और बातचीत की गतिविधियों पर अधिक ज़ोर दिया जाए जिसमें विद्यार्थी-केंद्रित (student-centered) कक्षाओं पर अधिक बल हो।

इसमें बैकवर्ड डिज़ाइनिंग (backward designing) के ज़रिए पाठ्यक्रम बनाना सिखाया जाता है, जिसमें पहले सोचा जाता है कि सत्र के अंत में हम अपने पाठ्यक्रम से क्या परिणाम चाहते हैं और क्यों? और जो हम सिखाने का लक्ष्य कर रहे हैं जिसे 'can do statements' भी कहते हैं, उसे हमारे विद्यार्थी कैसे सीख सकते हैं। फिर विचार करते हैं कि किस प्रकार पाठ्यक्रम पढ़ाने के दौरान मूल्यांकन (assessment) होना चाहिए। इसके अंतर्गत सत्र के अंत में होने वाली परीक्षाएँ शामिल हैं जिसमें लिखना, पढ़ना, सुनना और बोलना सभी कौशल सम्मलित होते हैं। ये सभी बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके जवाब में ही भाषा शिक्षण का रहस्य छिपा हुआ है।

इसमें 'जीवंत सामग्री' (authentic material) के इस्तेमाल पर बल दिया जाता है। जीवंत सामग्री जिसका अर्थ मोटे तौर पर होता है वे सभी सामग्रियाँ जिनको पढ़ाने की दृष्टि से न बनाया गया हो और जिनका निर्माण देश के लोगों के लिए और उनके द्वारा किया गया हो। इसमें पुस्तकें, अख़बार, लेख, पत्रिकाएँ, फ़िल्में, टीवी धारावाहिक,

विज्ञापन, मेन्यू कार्ड, चिट्ठी आदि शामिल हैं। इसके महत्व और उपयोगिता का लोहा तो सभी मानते हैं लेकिन इसके प्रयोग में चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं।

कक्षा के वातावरण का भी कक्षा की सफलता में बहुत बड़ा हाथ होता है जिसमें विद्यार्थी निडर होकर कक्षा में पूछे गए सवालों का जवाब दे सकें और बेहिचक सवाल पूछ सकें। इस बात पर मुझे याद आए भारत के वे अध्यापक जिनके आते ही पूरी कक्षा थर-थर काँपने लगती थी और जवाब आते हुए भी आवाज़ हलक से बाहर नहीं आ पाती थी।

इस प्रशिक्षण में एक बहुत ज़रूरी बात यह हुई कि इसमें मुझे बहुत से लोगों से मिलने का अवसर मिला और लगा कि मैं अकेली नहीं हूँ बहुत से और लोग भी हैं जो हिंदी शिक्षण से जुड़े हुए हैं और उनकी भी समान समस्याएँ हैं। अच्छी बात यह है कि इस प्रशिक्षण का लाभ कोई भी उठा सकता है चाहे वह कहीं पढ़ाता हो, पहले से प्रशिक्षित हो या नौ-सिखिया।

इसके अलावा सालटा (The South Asian Language Teachers Association) हर साल सम्मेलन कराता है जिसमें सभी भारतीय भाषाओं जैसे तमिल, बांग्ला, तेलुगू, गुजराती, पंजाबी के शिक्षक मिलते हैं और अपने शिक्षण की नई पद्धति से अवगत कराते हैं और एक दूसरे का सहयोग करते हैं। इसमें किसी भी देश के शिक्षक या विद्यार्थी भाग ले सकते हैं। इसी तरह के कई और भी सम्मेलन हैं जिसमें बड़ी संख्या में हिंदी के शिक्षक भाग लेते हैं जिसमें 'निक्कलटिक्कल' NCOLCTL (National Council of Less Commonly Taught Languages), 'आस' AAS (The Association for Asian Studies) International Hindi Conference, और The Annual Conference on South Asia प्रमुख हैं।

ये सभी सम्मेलन अक्सर अमरीका के अलग-अलग शहरों में होते हैं और इनकी तारीखें भी हर वर्ष बदलती रहती हैं। इनमें भाग लेने से हिंदी के शिक्षकों में एक समूह (community) की भावना आती है और वे एक दूसरे से मेल-जोल बढ़ाते हैं और एक दूसरे की सहायता करते हैं और साथ ही उन्हें नई-नई शिक्षण पद्धतियों का भी ज्ञान होता है।

लगभग ये सभी संगठन भाषा से संबंधित सम्मेलन करवाने के साथ-साथ पत्रिकाएँ भी निकालते हैं जिसमें वे भाषा से सम्बंधित शोध-पत्रों का स्वागत करते हैं। यदि कोई चाहे तो इसमें अपना शोध प्रकाशित करवाकर अपने विचार दूसरों से साझा कर सकता है

लेकिन सम्मेलन और पत्रिका दोनों की भाषा अंग्रेज़ी ही होती है जिससे अन्य भाषा-भाषी भी इसे पढ़ सकें और इसका लाभ व्यापक हो सके।

इस प्रशिक्षण से अमरीका में हिंदी के पठन-पाठन में ख़ासी उन्नति हुई है और परम्परागत तरीक़े से पढ़ाने के ढंग से मुक्ति मिली है। इसी के साथ यह भी कहा जा सकता है अमरीका के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़नेवालों की संख्या पहले से बढ़ी है और लगभग हर विश्वविद्यालय में दो से तीन साल तक हिंदी पढ़ाई जाती है। विश्वविद्यालय में साल-भर चलने वाले पाठ्यक्रमों के अलावा भी कई संस्थाएँ हिंदी पढ़ाने का काम करती हैं जिसमें बड़े शहरों के कम्युनिटी कॉलेज प्रमुख हैं। इसके साथ ही मंदिरों में भी हिंदी की शिक्षा दी जाती है लेकिन यह काफ़ी नहीं है एक तो इसमें पढ़ाने वाले लोग प्रशिक्षित नहीं होते और दूसरे इसमें धर्म, प्रार्थना, प्रवचन पर ज़्यादा ध्यान दिया जाता है भाषा पर नहीं।

न्यू-जर्सी और कैलिफ़ोर्निया में कई ऑनलाइन पढ़ाने वाली संस्थाएँ हैं क्योंकि यहाँ बहुत हिंदुस्तानी रहते हैं। इसी तरह की एक संस्था इंडस हेरिटिज सेंटर (Indus Heritage Center) की संस्थापक 'अंशु जैन' हिंदी की कक्षाएँ स्कूलों में चलाती हैं। पेशे से वे इंजीनियर हैं फिर भी हिंदी में उनकी ख़ासी दिलचस्पी रही है उनका कहना है कि वैसे तो सभी उम्र के लोग उनकी संस्था में हिंदी पढ़ने आते हैं लेकिन ज़्यादातर छोटे बच्चों को हफ़्ते में एक दिन स्कूल के बाद हिंदी पढ़ाई जाती है जिसके लिए उन्होंने बच्चों की उम्र और स्तर के अनुसार पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक भी तैयार की है।

उनके इस काम में बहुत से और अध्यापक भी जुड़े हुए हैं जो उन्हें यह स्कूल चलाने में सहयोग देते हैं। इसमें परेशानी यह है कि बच्चे हफ़्ते में एक दिन हिंदी पढ़ते हैं और बच्चों को गृहकार्य भी ज़्यादा नहीं दिया जा सकता इसलिए सीखने की रफ़्तार थोड़ी धीमी होती है लेकिन उनके माता-पिता बहुत ज़्यादा हिंदी सीखने की अपेक्षा रखते हैं। अंशु जैन फिर भी इस तरह की कक्षाओं में छोटे बच्चों को पढ़ाने को बढ़ावा देती हैं क्योंकि जब भाषा की नींव बचपन में पड़ जाती है तो जल्दी नहीं भूलती। उनका लक्ष्य हिंदी भाषा का प्रसार करना है।

मेरीलैंड में रहनेवाली एक ऑनलाइन हिंदी अध्यापिका 'प्राजकता रनाडे' का कहना है कि "सभी की अलग-अलग माँग होती है कुछ लोग कहते हैं कि हिंदी तो सीखनी है लेकिन लिपि के बिना, कुछ कहते हैं सिर्फ़ बोलना ही सीखना है, कुछ को लिखना, पढ़ना, बोलना सभी कुछ सीखना है। कुछ सिर्फ़ व्याकरण ही सीखना चाहते हैं। इस तरह हर कक्षा के लिए उन्हें बहुत तैयारी करनी पड़ती है और यह चुनौतीपूर्ण कार्य है। "

इसी तरह न्यू जर्सी में 'हिंदी भाषा केंद्र' की नींव पड़ी। जिसमें पूरे साल स्कूली बच्चों को हिंदी सिखाई जाती है। इसमें मुख्य कार्यकर्ता ममता त्रिपाठी, सोमा व्यास और अवनि शाह हैं।

इस तरह के ऑनलाइन कार्यक्रम देखने में छोटे लगते हैं लेकिन इनका प्रभाव बहुत गहरा होता है। यहीं के विद्यार्थी ज़्यादातर आगे चलकर विश्वविद्यालयों में भी हिंदी लेते हैं।

अब चलते हैं पाठ्यक्रम की ओर, तो विदेश में हिंदी का पाठ्यक्रम बहुत भिन्न होता है और इसे भारत में नहीं सीखा जा सकता क्योंकि वहाँ के और यहाँ के पढ़ाने के ढंग में बहुत फ़र्क होता है। पढ़ाने के अनुभव के साथ ही हर शिक्षक बेहतर होता चला जाता है। यहाँ की चुनौतियों से जूझकर शिक्षक स्वयं ही रास्ता खोज लेता है। हिंदी के पाठ्यक्रम के मामले में किसी भी विश्वविद्यालय या संस्था में एकरूपता नहीं दिखाई देती किंतु भाषा सिखाने की ट्रेनिंग और ऑनलाइन सामग्री द्वारा इसे हर शिक्षक तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है।

शिक्षण-सामग्री जो किसी भी पाठ्यक्रम की बुनियादी ज़रूरत होती है उसके मामले में हिंदी की शिक्षण-सामग्री में कुछ ख़ामियाँ हैं जैसे उसमें एक स्तर से दूसरे स्तर में बहुत बड़ा 'गैप' या फ़ासला है जिससे ख़ासतौर से विदेशी छात्रों को हिंदी पढ़ने में कठिनाई होती है और वे आगे तक हिंदी की कक्षा नहीं ले पाते।

विदेशों में विश्वविद्यालय के विद्यार्थी जब पहली बार हिंदी की प्राथमिक कक्षा में आते हैं तो उन्हें हिंदी भाषा का पूर्व ज्ञान नहीं होता या कुछ देसी विद्यार्थियों को थोड़ा-बहुत बोलना आता है। वे अक्सर कक्षा में उपयोगी कुछ वाक्यांशों एवम् बातचीत और लिपि के अभ्यास से भाषा सीखने की शुरुआत करते हैं। इसके लिए भारत में मिलने वाली छोटे बच्चों की किताबें काम नहीं आतीं क्योंकि उन किताबों में बच्चों की कविताएँ, लोककथाएँ, और कहानियाँ बालसुलभ मन को केंद्र में रखकर लिखी गई होती हैं और उसमें बहुत मुश्किल व्याकरण और शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है। विदेशों में पढ़ने वाले युवा उसका आनंद नहीं उठा पाते और शायद उनको ये पुस्तकें बचकानी लगें, इसलिए उनकी ज़रूरतों और रुचियों को ध्यान में रखकर उनके लिए पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया जाता है और ऑनलाइन सामग्री का चुनाव किया जाता है।

प्रथम वर्ष की पुस्तकों में ज़्यादातर व्याकरण, वार्तालाप, शब्दावलियों, गतिविधियों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं जिनमें प्रमुख हैं: 'रूपर्ट स्नैल' कृत टीच योरसेल्फ़ सीरीज़ की 'कंपलीट हिंदी' यह किताब बहुत मशहूर हुई और शायद हर हिंदी पढ़ने और

पढ़ाने वालों के पास इसकी एक प्रति ज़रूर मिलेगी क्योंकि इसमें व्याकरण का स्पष्टीकरण सरल और संक्षिप्त है, इस पुस्तक से विभिन्न उदाहरणों के ज़रिए विद्यार्थी स्वयं पढ़के भी आसानी से हिंदी सीख सकते हैं। यह किताब अन्य सभी किताबों से सस्ती और आकार में छोटी भी है।

अन्य मशहूर व्याकरण की पुस्तकों में 'उषा जैन' द्वारा लिखित "इंट्रडक्शन टू हिंदी ग्रामर" का भी शुमार है इसमें व्याकरण के बेहतरीन अभ्यास दिए गए हैं जिसमें अंग्रेज़ी से हिंदी या हिंदी से अंग्रेज़ी अनुवाद करना, वाक्यों को परिवर्तन करके लिखना आदि अभ्यास शामिल हैं। एक और विशेषता यह है कि व्याकरण जितने स्पष्ट ढंग से इसमें समझाया गया है अन्य किसी पुस्तक में नहीं। इसमें व्याकरण के सम्बंध में वार्तालाप नहीं दिए गए हैं पहले व्याकरण समझाया गया है फिर उसको कैसे लिखा जाए उसका फ़ॉर्मूला दिया गया है फिर उदाहरण हैं और अंत में अभ्यास। इस पुस्तक को देखकर गणित की किताब की याद ज़रूर आएगी जिसमें पहले फ़ॉर्मूला दिया होता है फिर उसका प्रयोग, और अंत में अभ्यास। अभ्यास में पूछे गए सवाल के जबाव इसमें नहीं दिए गए हैं इसलिए कक्षा में और गृहकार्य के रूप में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

फिर 'रिचर्ड डिलेसी' और 'सुधा जोशी' की "एलिमेंटरी हिंदी" है जिसके साथ एक अभ्यास पुस्तिका भी है जो अलग से ख़रीदनी पड़ती है। इस पुस्तक से मैं पिछले कई सालों से हिंदी पढ़ा रही हूँ। इसमें भी व्याकरण से सम्बंधित वार्तालाप दिए गए हैं जो दीपक और कविता के कॉलेज की ज़िंदगी के इर्द-गिर्द घूमती है। इसमें दिए गए ब्यौरे अब वक़्त की गर्द में पुराने पड़ने लगे हैं और कई बातों के साथ उसका समय भी बताया गया है जो अब उतना मज़ेदार नहीं लगता।

स्थानों के नाम जैसे 'इलाहाबाद' का बहुत इस्तेमाल हुआ है लेकिन अब उसका नाम भी बदलकर 'प्रयागराज' हो गया है। कभी-कभी इसमें आए संवाद बहुत रसहीन और उबाऊ लगने लगते हैं किंतु इस किताब के साथ जो अभ्यास-पुस्तिका है उसमें अच्छी अभ्यास की गतिविधियाँ हैं। मुश्किल वही है जो अन्य पुस्तकों के साथ है कि सब प्रश्नों के उत्तर किताब के अंत मिल जाते हैं।

ग़ौरतलब है कि हिंदी शिक्षण से जुड़े लोग विभिन्न अध्यापन सामग्रियों का उपयोग करते हैं। कुछ शिक्षक कोई पाठ्यपुस्तक नहीं इस्तेमाल करते। वे कुछ इस पुस्तक से कुछ उस पुस्तक से और कुछ ऑनलाइन सामग्रियों से मिला-जुला कर पढ़ाते हैं। मेरे विचार से यह पढ़ाने का बहुत अच्छा तरीक़ा नहीं है क्योंकि कभी-कभी विद्यार्थी को समझ नहीं

आता कि कक्षा में क्या हो रहा है। एक पाठ्यपुस्तक होने से वे अपनेआप भी सीख सकते हैं। यूँ, कहा जा सकता है कि कोई एक सामग्री विदेशों में हिंदी शिक्षण के लिए पर्याप्त नहीं है। सदैव समसामायिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री जोड़नी ही पड़ती है जो तत्कालीन विद्यार्थियों की रुचियों के अनुसार हो।

प्रारंभिक अथवा माध्यमिक हिंदी सीखते हुए विद्यार्थी बहुत उत्साहित रहते हैं किंतु जैसे ही वे थोड़ा-बहुत पढ़ना, लिखना सीख लेते हैं उनके पढ़ने समझने लायक़ सामग्री का अभाव दिखाई देने लगता है। वे कुछ ऐसा पढ़ना चाहते हैं जो आसान हो और उनकी उम्र के अनुसार थोड़ा परिपक्व भी हो। विश्वविद्यालय के वातावरण में उन्हें अपने या अपने आसपास के वातावरण के बारे में तथा, समाज और संस्कृति के बारे में जानने और समझने की भी उत्सुकता बनी रहती है। वे भाषा में न केवल बातचीत करना बल्कि उसमें सुनना, पढ़ना और लिखना भी जानना चाहते हैं।

कठिनाई यह है कि इस प्राथमिक स्तर पर वे बहुत साधारण शब्दावली और व्याकरण ही समझ सकते हैं इसलिए हिंदी साहित्य पढ़ना उनके लिए कठिन होता है क्योंकि उसे समझने के लिए विद्यार्थियों को कुछ वर्षों का अनुभव अपेक्षित होता है। इस स्थिति में अक्सर शिक्षक व्याकरण की किताब से ही पढ़ाते हैं और उसी किताब के व्याकरण के अनुसार कुछ गतिविधियाँ करवाते हैं। ऐसा करवाना ठीक है क्योंकि इसके परिणाम साधारण होंगे लेकिन बहुत बढ़िया नहीं। ज़रूरी है कि शिक्षक इसके साथ-साथ नई तकनीकों के सहारे कुछ गतिविधियाँ भी करवाएँ।

कहा जा सकता है कि हिंदी लिपि सीखने के बाद जब विद्यार्थियों में थोड़ा-बहुत पढ़ने, लिखने और समझने की क्षमता आ जाती है तो इसी बीच की खाई को भरने के लिए शिक्षक स्वयं ही कुछ सामग्री तैयार करने लगते हैं जिनका सरोकार दैनिक आवश्यकताओं और सामाजिक न्याय के मुद्दों से जुड़ा होता है।

'कुसुम' और 'पीटर नैपसिक' ने भी इसी तरह की सामग्रियों को इकट्ठा करके इसे पुस्तक की रूपरेखा दी, जिसे 'रीडिंग हिंदी' का नाम दिया है। अनेक पाठकों और समीक्षकों के सुझावों के बाद इसे पुस्तकाकार रूप में लाया गया। यह पुस्तक व्याकरण और शब्दावली की दृष्टि से आसान से मुश्किल की तरफ़ जा रही है सबसे पहले वर्तमान काल और उससे सम्बंधित अभ्यास हैं और उसके बाद भूतकाल फिर भविष्य काल। इसमें ब्लैक-एंड-वाइट चित्रों और कार्टून का भी प्रयोग किया गया है।

पाठ की शुरुआत होती है एक तस्वीर से और प्री-रीडिंग के दो सवालों से ताकि विद्यार्थी पाठ से सम्बंधित बातों पर अपने विचार प्रकट कर सकें और पाठ पढ़ने के लिए तैयार हो सकें। हर कहानी के अंत में कहानी में आई संस्कृति से सम्बंधित बातों को विस्तार से बताया गया है। हर पाठ में पाँच गतिविधियाँ हैं जिनमें लिखने की गतिविधियाँ हैं जैसे ग़लत-सही, घटनाओं को क्रम से लगाना, पाठ में आए प्रश्नों के उत्तर देना, बातचीत करने के कुछ सवाल, पोस्टर बनाना इत्यादि। इस रीडर में जिन विषयों को उठाया गया है उनमें पारिवारिक मुद्दे, दहेज-प्रथा, ग़रीबी, शिक्षा, जाति-प्रथा आदि मुख्य हैं। इसमें व्याकरण की व्याख्या नहीं की गई है इसलिए इसका प्रयोग एक पूरक पुस्तिका के रूप में हो सकता है। यह पुस्तक विदेशी विद्यार्थियों को केंद्र में रखकर लिखी गई है जिसकी भाषा आसान है किंतु विषय गम्भीर।

इसके पश्चात 'उषा जैन' और 'करीन स्कोमर' की 'इंटरमीडिएट हिंदी रीडर' है जो शुरू होती है कुछ पत्रों और पौराणिक लोक-कथाओं से जो स्वयं लेखिका की क़लम से हैं विद्यार्थियों को ये लेख बहुत भाते हैं क्योंकि वे इनकी भाषा और व्याकरण समझ पाते हैं लेकिन बाद के पाठों में हिंदी साहित्य से कहानियाँ ली गई हैं जो विदेशी विद्यार्थियों के पल्ले नहीं पड़तीं। मात्र एक से डेढ़ साल तक हिंदी सीखकर कोई 'यशपाल' की कहानी 'पहाड़ की स्मृति' या 'मोहन राकेश' का यात्रावृतांत 'आख़िरी चट्टान तक' पढ़ ले तो अचरज की बात होगी। बहरहाल यह समस्या मेरी कक्षा में भी आई। मेरे विद्यार्थी विदेशी और नान-हेरिटेज थे उन्होंने कहा, "हमें हर वाक्य को समझने में कठिनाई हो रही है और इसलिए यह पढ़ना दिलचस्प नहीं लग रहा है। अगर कुछ और पढ़ें तो अच्छा होगा। "

ज़्यादातर माध्यमिक पुस्तक की समस्या यह है कि पहले साल से दूसरे साल की सामग्री का स्वरूप इतना अधिक बदल गया है कि संतुलित नहीं लगता। अधिकतर विदेशी विद्यार्थी इसके लिए तैयार नहीं हो पाते। उदाहरण के लिए यदि प्रथम वर्ष की पुस्तक के संवाद हैं। यह संवाद 'रिचर्ड डिलेसी' और 'सुधा जोशी' की 'एलिमेंटरी हिंदी' के आख़िरी पाठ, पृष्ठ संख्या २३० से लिया गया है।

"दीपक: कविता, तुम्हारा पहला इम्तहान कब है?

कविता: मेरा पहला इम्तहान परसों है। तुम्हारा पहला इम्तहान कब है?

दीपक: मेरा भी परसों है। कितने बजे?

कविता: ढाई बजे। क्या हम साथ-साथ चलें?

दीपक: ठीक है। अब मैं कुछ पढ़ाई करूँगा। ''

अब माध्यमिक पुस्तक का एक नमूना देखिए। यह 'उषा जैन' और 'करीन स्कोमर' की पुस्तक के प्रथम पाठ से लिया गया है। पृष्ठ संख्या एक है।

''भारत की संस्कृति बहुत पुरानी है। यह प्राचीन काल में कला, साहित्य, धर्म और विद्या का बड़ा केंद्र माना जाता था। पुराने समय से ही भारत के धन, वैभव और संस्कृति ने अनेक देशों के लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। पहले यहाँ यूनानी आए, फिर तुर्क और मुग़ल, और बाद में अँग्रेज़। ''

इस आधार पर कहा जा सकता है जहाँ प्रथम वर्ष की पाठ्यपुस्तक में छोटे-छोटे वाक्य हैं और वाक्यों का दोहराव है और अधिकतर वार्तालाप स्टाइल में लिखा गया है और व्याकरण की दृष्टि से भी वाक्य-विन्यास सहज और सरल है वहीं माध्यमिक हिंदी के प्रथम पाठ में ही लम्बे-लम्बे वाक्य दिए गए हैं और शब्दावली भी काफ़ी कठिन है। ज़्यादातर मशहूर साहित्यकारों के लेख, निबंध, कहानी और कविता माध्यमिक पाठ्यपुस्तकों में लिए जाते हैं। मेरे विचार से विद्यार्थी भाषा के क्षेत्र में इतनी लम्बी छलाँग नहीं लगा पाते। इस कारण बहुत से विदेशी छात्र भयभीत हो जाते हैं और हिंदी की कक्षा को अलविदा कह देते हैं।

भाषा से जुड़ना अपनी संस्कृति से जुड़ना ही है इसके लिए ज़रूरी नहीं है कि शिक्षक माध्यमिक कक्षाओं में ऐसा साहित्य पढ़ाएँ जो भारत में स्नातक के छात्र पढ़ते हैं। वे धीरे-धीरे ही विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं जैसे जब प्रथम वर्ष में उन्होंने व्याकरण पर अच्छी पकड़ बना ली हो, तो छोटे-छोटे लेख 'गृहशोभा' जैसी पत्रिकाओं से लिए जा सकते हैं। ये लेख पढ़ने में दिलचस्प और सरल भाषा में होते हैं इसके द्वारा भारत के लोगों के जीवन और भावनाओं के बारे में बहुत कुछ सीखा और समझा जा सकता है। फिर विद्यार्थी रेलवे स्टेशन पर बिकने वाले 'पल्प फ़िक्शन' जिसमें जासूसी और सनसनीखेज़ उपन्यास शामिल हैं, पढ़ सकते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है अभी तक कोई भी पाठ्यपुस्तक सम्पूर्ण नहीं है किसी में कोई समस्या है किसी में कोई। लेकिन अनुभवी एवं कुशल शिक्षक इसे अपनी सूझबूझ और भिन्न-भिन्न उपलब्ध सामग्रियों की मदद से सम्पूर्ण बना सकते हैं। पाठ्यपुस्तक कोई भी हो लेकिन कम से कम एक पुस्तक पाठ्यक्रम में ज़रूरी है जिससे विद्यार्थियों को भाषा समझने में सुविधा हो सके। उच्चारण, लिपि, व्याकरण के लिए और भी ऐप और

वीडियो बनने चाहिए जैसे स्पैनिश और चीनी भाषा में हैं। यू-ट्यूब पर उपलब्ध कार्यक्रम जैसे "सत्यमेव जयते" और 'गुलज़ार' के टीवी सीरीज़ पहले से ही अमरीका में पढ़ाने हेतु उपयोग किए जाते रहे हैं जिनमें सामाजिक असमानता और न्याय के प्रश्न उठाए जाते हैं। इसी प्रकार शिक्षकों द्वारा बनाई गईं ऑनलाइन सामग्री भी बहुत काम की हो सकती हैं अगर इनको यथोचित अपडेट किया जाए और समय के साथ इसमें उचित बदलाव लाया जाए अन्यथा लिंक पर जाने पर अधिकतर यही सूचना मिलती है 'यह पेज उपलब्ध नहीं है।

संदर्भ:

पत्र-पत्रिकाएँ

गंभीर, विजय. 2017. "अमरीका में हिंदी-शिक्षण व प्रशिक्षण". विश्व हिंदी पत्रिका, मौरिशस.

गंभीर, सुरेन्द्र. 2011 "अमरीका में हिंदी शिक्षण की लहर: हम कितना आगे कितना पीछे". विश्व हिंदी पत्रिका, मॉरिशस.

पैन्यूली, अर्चना. 2018. "विदेशों में हिंदी शिक्षण की चुनौतियाँ". बहुवचन (जुलाई-सितंबर), महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा.

बेदी, सुषम. 2010. "अमरीका में हिंदी-एक सिंहावालोकन". विश्व हिंदी पत्रिका, मौरिशस.

पाठ्यपुस्तक संदर्भ सूची:

Delacy, Richard, and Sudha Joshi. 2014. *Elementary Hindi: An Introduction to the Language*. Tokyo: Tuttle Publishing.

Jain, Usha R. 1995. *Introduction to Hindi Grammar*. Berkeley: Center for South Asia Studies, University of California.

Jain, Usha R., and Karine Schomer. 1999. *Intermediate Hindi Reader*. Berkeley: Center for South Asia Studies, University of California.

Knapczyk, Kusum, and Peter A. Knapczyk. 2020. *Reading Hindi: Novice to Intermediate*. New York: Routledge.

Snell, Rupert. 2014. *Complete Hindi*. Teach Yourself. London: McGraw-Hill, 3rd edition.

Websites:

Can do statements, ACTFL, 2020, accessed 19 March 2024, <https://www.actfl.org/publications/guidelines-and-manuals/ncssfl-actfl-can-do-statements>

South Asian Language Teachers Association, 2024, SALTA, accessed on 15 April 2024, <https://mysalta.org/>

World-readiness standards ACTFL, 2020, accessed 20 March 2024, <https://www.actfl.org/publications/all/world-readiness-standards-learning-languages>

साक्षात्कार के लिए आभार:

जैन, अंशु. संस्थापक, इंडस हेरिटिज सेंटर, कैलिफ़ोर्निया.

रनाडे, प्राजकता. ऑनलाइन हिंदी शिक्षक, मेरीलैंड.

कुसुम नैप्सिक *अमरीका की ड्यूक यूनिवर्सिटी में हिंदी की वरिष्ठ प्राध्यापिका, भाषा शिक्षण प्रविधि विशेषज्ञ तथा SALTA की वर्तमान अध्यक्ष हैं। संपर्क: kusum.knapczyk@duke.edu*

कनाडा

हंसा दीप

भारत और विदेशी धरती पर हिंदी अध्यापन की निरंतरता मेरा सौभाग्य रहा। बदलती सीमाएँ और बदलते देश, मुझे अपनी जमीन से दूर करते रहे परंतु अपनी भाषा से अनवरत जोड़ते रहे। एक ओर कई नए अनुभवों की थाती ने मेरा स्वागत किया तो वहीं दूसरी ओर कई चुनौतियों से सामना भी हुआ। भारत में भोपाल विश्वविद्यालय और विक्रम विश्वविद्यालय के विभिन्न महाविद्यालयों- विदिशा, ब्यावरा, राजगढ़, धार में तकरीबन ग्यारह साल स्नातक और स्नातकोत्तर हिंदी कक्षाओं को पढ़ाना मेरे लिए गौरवपूर्ण अनुभूति रही थी। पारिवारिक कारणों से मैंने अपनी धरती को जरूर छोड़ा, परन्तु अपने हिंदी अध्यापन, जो मेरा जुनून भी है और पेशा भी, को जारी रखने में सफलता मिली। न्यूयॉर्क, अमरीका की कुछ संस्थाओं में हिंदी अध्यापन के बाद, कनाडा के टोरंटो शहर के दो जाने-माने विश्वविद्यालयों, यॉर्क यूनिवर्सिटी एवं यूनिवर्सिटी ऑफ़ टोरंटो में शिक्षण के कई रूपों से मेरा परिचय हुआ।

हम हिंदी प्रेमियों के लिए गर्व की बात है कि उत्तरी अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। तकरीबन सभी शिक्षण संस्थानों के भाषा विभागों में चीनी, अरबी, फारसी, हिंदी, उर्दू, संस्कृत, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश, लेटिन जैसी कई भाषाएँ "मेजर" और "माइनर" प्रोग्राम की अपने विषय के इतर कोर्स लेने की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। एक ही विभाग के छत्र तले पढ़ायी जा रही अलग-अलग देशों की भाषाओं में तारतम्य के लिये "कैरक्यूलम मैपिंग" है जो भाषा विभाग में पढ़ायी जा रही हर भाषा के लिये काम करता है। इसी के साथ "कोर्स आउटलाइन्स" में समानता, निर्धारण पाठ्यक्रम में समानता तथा हर भाषा के लिये "नेटिव स्पीकर" और "नान नेटिव स्पीकर" के लिये कुछ निर्धारित शर्तों का पालन करते हुए "प्लेसमेंट टेस्ट" लिया जाता है। उसके माध्यम से तय किया जाता है कि छात्र किस कोर्स के लिये योग्य है।

हिंदी के लिए भी यही नियम लागू है। स्नातक कक्षाओं के पहले वर्ष के छात्रों के लिये "बिगिनर्स कोर्स" है उसमें निर्धारित पाठ्यक्रम की खास बातें हैं कि यह भाषा छात्र के लिये पूर्णत: नयी भाषा है। कोर्स के अंत तक छात्रों को रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा का ज्ञान हो जाना चाहिए जिसमें पठन-लेखन-बोलचाल और श्रवण ये मापदंड हैं। इन मापदंडों पर खरा उतरने के लिये शिक्षक को पूरी स्वतंत्रता है कि वह किस सामग्री का उपयोग करके अपने छात्रों को उतना वांछित ज्ञान दे सके। भाषा विभाग में हर भाषा में इस कोर्स को पढ़ाना आधारभूत कारणों से महत्वपूर्ण है।

"बिगिनर्स कोर्स" के बाद "इंटरमीडिएट कोर्स" में जहाँ भाषा का व्याकरण समाप्त होता है, वहीं से आगे के व्याकरण को जोड़ते हुए अनुच्छेद लेखन पर फ़ोकस करते हुए आगे बढ़ने की कोशिश होती है। यहाँ तक आते-आते भाषा विशेष के लिये छात्र की हिचक-संकोच कम होना चाहिए वरना वह आगे नहीं बढ़ पाएगा और "कोर्स ड्रॉप" कर देगा। नये ग्रामर के साथ नयी शब्दावली, नयी धरा पर नये विचार लाती है। उसका विश्वास जागने लगता है कि अब वह भाषा की आधारभूत जानकारी से परिचित है।

"रीडिंग्स" कोर्स तृतीय वर्ष के छात्रों के लिये संबल का काम करता है जिसमें भाषा विशेष के साहित्य की आसान रचनाओं के अंश लिये जाते हैं। हिंदी की लोकप्रिय पंचतंत्र की कथाएँ, लोक कथाएँ जैसी सामान्य और रोचक पठन सामग्री के साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ने की कोशिश की जाती है। ऐसी सामग्री जो विषय को रोचक बनाती है, शिक्षाप्रद होती है साथ ही सरल भी होती है। बड़ी कहानियाँ या कविताएँ छात्रों को डरा देती हैं। बजाय इसके एक छोटी-सी फिल्म दिखाकर उसके बारे में लिखने को कहा जाए तो वे अपने छोटे से निबंध में आसानी से अपनी बात लिख सकते हैं। कहने में कोई संकोच नहीं है कि हिंदी में आसान भाषा में लिखा साहित्य का कोई टुकड़ा ढूँढना भी टेढ़ी खीर है, जहाँ छात्रों के स्तर को समझते हुए उन्हें समझाया जा सके। कई बार स्थानीय संस्कृति से जुड़ी सीधी-सरल रचनाओं को लेना अधिक सुविधाजनक लगता है।

"एडवांस" व "मीडिया एंड कल्चर" चौथे वर्ष के कोर्स हैं जो समानांतर चलते हैं व सर्वाधिक लोकप्रिय भी होते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है कि चौथे वर्ष के अंत तक छात्र ग्रेजुएट होने के करीब आकर तनाव रहित हो जाता है। इस समय तक अपनी नौकरी का इंतजाम कहीं न कहीं कर ही लेता है। शिक्षा के धरातल से एक प्रोफ़ेशनल धरातल पर अपने प्रवेश और पैसों की खींचतान से लगभग मुक्ति मिल जाती है। मीडिया एंड कल्चर में बॉलीवुड, टीवी, और पत्र-पत्रिकाओं के रोचक और रोमांचक अंशों का विषयवस्तु में

शामिल होना इस कोर्स को हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय कोर्स में बदल देता है। छात्र हिंदी फिल्मों, अभिनेता और अभिनेत्रियों के साथ संस्कृति के बारे में लिखने के लिये अपनी हिंदी को एक अलग स्तर पर ले आता है।

जब ये कोर्स थोड़े अदल-बदल के साथ हर भाषा का प्रतिनिधित्व करते हैं तो नि:संदेह संस्थान को सबसे अधिक लाभ चीनी भाषा की कक्षाओं से होता है जहाँ हर कक्षा में जगह पाने के लिये छात्रों की होड़ होती है, प्रतीक्षा सूची होती है। इसकी वजह को उनकी जनसंख्या के आधार पर फोकस करके हम छूट नहीं सकते। इसकी खास वजह यह भी है कि वे अपनी भाषा को कितना मान-सम्मान देते हैं। दूसरी ओर सबसे कम लाभ हिंदी, संस्कृत और लेटिन में होता है।

टोरंटो, कनाडा के कई शिक्षण संस्थानों में हिंदी, संस्कृत के साथ-साथ पंजाबी, तमिल, उर्दू और बांग्ला भी पढ़ाई जा रही है। हिंदी के इतर इन भाषाओं को प्रमुखता देने का कारण है भारतीय क्षेत्रीय भाषी लोगों की बहुलता। इस तरह हिंदी के साथ संस्कृत और फिर भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं–पंजाबी, बांग्ला और तमिल, की उपस्थिति, हिंदी के वर्चस्व को कई गुना कम कर देती है। और तब क्षेत्रीय भाषाओं में बँटे हमारे देश की भाषा हिंदी अपनी कहानी कहने लगती है जब कई छात्र यह कहकर बिगिनर्स के आगे के कोर्स नहीं लेते–"हिंदी में हमारा कोई भविष्य नहीं।" जिस घर में वे पले-बढ़े वहाँ अंग्रेज़ी के साथ उनकी अपनी क्षेत्रीय भाषा बंगाली, पंजाबी, तमिल, गुजराती, उर्दू और अन्य भाषाओं में से एक रही तो हिंदी के लिये उनकी रुचि न के बराबर होती है। यही वजह है कि बिगिनर्स कोर्स के अलावा अन्य कोर्स में छात्र संख्या कम होने से कई बार कोर्स निरस्त कर दिए जाते हैं।

यह हिंदी के वर्चस्व के लिये रोना-गाना नहीं है बल्कि कटु सत्य है जिसे हम हिंदी भाषी जितनी जल्दी स्वीकार कर लें उतना ही बेहतर होगा। विदेशों में युवा पीढ़ी में हिंदी को जीवित रखने में सबसे अधिक योगदान अगर किसी का है तो वह है हमारे हिंदी सिनेमा जगत का। हिंदी गीतों पर थिरकते पैर और कुछ नहीं तो कम से कम इन संस्थानों में हिंदी की उपस्थिति का आभास तो दे ही देते हैं। हाई स्कूल, मिडिल स्कूल और प्राइमरी स्कूलों में भी हिंदी कक्षाओं में बीस से अधिक छात्रों की उपस्थिति कक्षाओं को निरंतर चलने में मदद करती है। यहाँ भी गंभीर मुद्दा है कि हिंदी पढ़ाने वाले शिक्षक "अ आ इ ई" पढ़ाते हुए वैसे ही पढ़ाते हैं जैसे सालों पहले उन्होंने भारत में हिंदी पढ़ना शुरू किया था। "इ इमली का" और "ई ईख का" पढ़ाकर मूल अंग्रेज़ी भाषी मासूम बच्चों की रुचि को मार

देते हैं। बच्चे हिंदी से कन्नी काटते हैं और ये कक्षाएँ भी बंद होने लगती हैं। शिक्षकों को समय और स्थान के अनुसार अपनी शिक्षण शैली में परिवर्तन का आभास नहीं होता व तब, स्कूल बोर्ड के समुचित उदार प्रयासों के बाद भी अपनी इस उपेक्षा के कारण हिंदी कक्षाएँ व हिंदी शिक्षक दोनों ही अपना स्थान ख़त्म कर लेते हैं।

विदेशों में हिंदी व अहिंदी भाषियों के बीच हिंदी का प्रचार-प्रसार कई समर्पित स्वयंसेवी कर रहे हैं। अपना अमूल्य समय देकर हिंदी की सेवा में लगे हुए हैं। हिंदी को वैश्विक मंच पर अनवरत आगे बढ़ाने में हिंदी फिल्मों एवं इन समर्पित हिंदी प्रेमियों और मिले-जुले अथक प्रयासों से हिंदी बोलने वालों की संख्या तो बढ़ रही है लेकिन लाख कोशिशों के बाद भी हिंदी लिखने और पढ़ने को बढ़ावा नहीं मिल पा रहा है।

बिगिनर्स कोर्स में भी वर्णमाला को सीखना ही अहिंदी भाषी छात्रों के लिए बहुत दुश्वार होता है। लिपि की दुरुहता उन्हें आगे बढ़ने से रोकने का सफल प्रयास कर जाती है। सपाट शब्दों में कहा जाए तो हमने धीरे-धीरे, एक-एक करके अपनी लिपि को जिस तरह से सजाया है, वे सारे भाषा के सौंदर्य प्रसाधन अपने "साइड इफेक्ट्स" की कहानी कहने लगते हैं। स्वर और व्यंजन के मूल 44 अक्षरों में कितनी मात्राएँ जोड़कर, कितने आधे-पूरे अक्षर मिलाकर, कितने संयुक्त अक्षर बना लिए हैं, कभी गिन कर देखने का तो समय ही नहीं मिला। और फिर इनको सजाने के लिए हर तरह के बिन्दु को स्थान दिया, जहाँ जैसे जगह मिली। शिरोरेखा के ऊपर, अक्षर के नीचे। अनुस्वार अनुनासिकता के साथ, यानि बिन्दु, चंद्र बिन्दु के साथ, चन्द्र, विसर्ग, हलन्त तो ज़रूरी ही थे अब कुछ अक्षरों के नीचे दाएँ-बाएँ भी सजा रहे हैं। अंग्रेज़ी शब्दों के लिए ऑ को लिया और उर्दू, अरबी, फारसी शब्दों के लिए क ख ग ज फ में नुक्ता लगाना ज़रूरी होता गया। आज हर उस शब्द में जहाँ क ख ग ज फ आता है नुक्ता लगा दिया जाता है। गुस्सा बताने के लिए भी ग़ुस्सा लिखना पड़ता है। फिल्म और फ़ेसबुक तो अंग्रेज़ी के शब्द हैं वहाँ भी नुक्ता लगाना अनिवार्य कर देते हैं हम। शायद हमारे फल वाले "फ" में इतनी ताकत ही नहीं कि वह फ़िल्म और फ़ेसबुक को ध्वनि दे सके।

सैद्धांतिक रूप से, जितनी भाषाओं के शब्दों को हम अपनी भाषा में स्थान देंगे उतना ही हम अपनी भाषा को उदार बनाएँगे। लेकिन यहाँ मुद्दा यह है कि हम अपनी लिपि में बहुत कुछ जोड़ते जा रहे हैं। पहले ही अक्षर के बीच में, ऊपर-नीचे, अगल-बगल, मात्राओं की, बिन्दुओं की कमी नहीं है, तिस पर हर जगह नुक्ते ने अपनी जगह बना ली है। यह नुक्ता कब और कैसे अपनी जगह बनाकर नीचे टिकता गया पता ही नहीं चला।

हिंदी की बिन्दी तो ऊपर थी ही, नीचे ड और ढ की बिन्दी थी। नुक्ते ने नीचे खाली जगह में अपनी जगह बना ली। हिंदी के भाषायी सौंदर्य प्रसाधनों की बढ़ोतरी होती ही जा रही है। बेचारे एक छोटे-से बच्चे को हम अंग्रेज़ी स्कूल में भेज रहे हैं। हिंदी के इतने अनुस्वार, मात्रा, नुक्ते, संयुक्त व्यंजन का रट्टा लगाकर वह कैसे सीख पाएगा अपनी भाषा हिंदी! वह भी ऐसे में, जब उसकी पहली भाषा हिंदी को हम उसकी दूसरी भाषा बना चुके हैं क्योंकि पहली भाषा के रूप में तो अब अंग्रेज़ी ही स्वीकार्य है हमें। इसीलिए वह हिंदी को अंग्रेज़ी (रोमन) में लिखकर अपना काम चला लेता है।

मुझे इस बात का गर्व है कि हिंदी ने अपना दिल बहुत बड़ा किया है। वह हर ग्लोबल शब्द को जगह दे रही है। आज की तकनीकी उन्नति के साथ हिंदी कदम से कदम मिला कर चल रही है। लेकिन यह उदारता हमें अपनी लिखित भाषा को बदलने के लिए मजबूर नहीं कर सकती। आए दिन हम अपनी लिपि में बदलाव ला रहे हैं। दूसरी भाषा के बहुप्रचलित शब्दों का दिल खोल कर स्वागत करने के लिए अपनी लिपि को बदलना कहाँ तक उचित है। अन्य भाषाएँ तो ऐसा नहीं करतीं। अंग्रेज़ी के दबदबे से हम क्यों नहीं सीख सकते जो न जाने कितनी भाषाओं के प्रचलित शब्दों को साधिकार लेती है लेकिन अपने छब्बीस अक्षरों में कोई बदलाव नहीं करती। जो भी बदलाव करती है उन्हीं छब्बीस अक्षरों के दायरे में। वे ही छब्बीस अक्षर दुनिया भर के शब्दों को लिखते हैं चाहे फिर टोरंटो शहर का "ट" हो या किसी तान्या नाम की लड़की का "त", रोमन अक्षर "टी" से ही लिखा जाता है। और नि:संदेह इन्हीं छब्बीस अक्षरों ने दुनिया में हल्ला मचा रखा है। यूँ हर भाषा के अस्तित्व को चुनौती देती अंग्रेज़ी भाषा पूरी दुनिया पर राज कर रही है।

भाषाओं का घालमेल बुरा नहीं है मगर वह एक दूसरे के विस्तार के लिए हो, न कि अपनी जड़ों को हिलाने के लिए। अपनी लिपि को खिचड़ी बनाते हुए हम कट्टर होते जा रहे हैं। यह कट्टरता हमारी भाषा के लिखित रूप को किस कदर प्रभावित कर रही है, यह संदेश हमारे अपने बच्चों से हर दिन मिल रहा है। सोशल मीडिया पर हिंदी जानने वाले भी हिंदी संदेश को रोमन लिपि में लिखकर उस संदेश का ऐसा हाल करते हैं कि समझने में दिमाग का अच्छा-खासा व्यायाम हो जाता है। कुल मिलाकर हिंदी के प्रति जो उदासीनता बढ़ती जा रही है उसके ज़िम्मेदार हम ही हैं। भारत में ही कई नगरों-महानगरों में जहाँ काफ़ी मात्रा में हिंदी भाषी लोग रहते हैं, गली-मोहल्लों में साइनबोर्ड पर हिंदी तो है पर रोमन में लिखी हुई। ये हमें ग्लोबल वार्मिंग की तरह चेतावनी तो नहीं देते पर हाँ संभल जाने का आह्वान जरूर करते हैं। जीवन की भागमभाग में हमारा ध्यान इस मूक चेतावनी

पर नहीं जा रहा है। हर किसी के पास समय की कमी होती जा रही है। ऐसे में भाषा का सरलीकरण चाहिए लेकिन हम क्लिष्टीकरण में विश्वास रखते हैं। हम वही कर रहे हैं जो संस्कृत और लेटिन जैसी अपने ज़माने की समृद्ध भाषाओं के साथ हो चुका है। उसी राह पर ले जा रहे हैं हम हिंदी को।

यही नहीं, नार्थ अमेरिकन विश्वविद्यालयों में हिंदी-उर्दू कोर्स चलाए जाने की प्रथा ज़ोर ले रही है। एक ही कक्षा में देवनागरी और नस्तालीक लिपि पढ़ाना कागज़ातों को और कोर्स कैलेंडर को सुशोभित करता है, बेहद सम्मानजनक लगता है, पर कक्षा की असलियत क्या होगी, बगैर कक्षा में जाए बताना बहुत मुश्किल है। सच्चाई तो यह है कि दुविधा में जीते छात्र हिंदी और उर्दू दोनों से कन्नी काट लेते हैं। शिक्षक अच्छी तरह जानते हैं इस सच को। वे इसलिए नहीं बोलते क्योंकि उन्हें नौकरी इसी आधार पर मिली है कि वे इन दोनों भाषाओं को साथ-साथ पढ़ाएँगे। अपने हित में वे हिंदी कक्षाओं की बलि भी देते हैं और उर्दू कक्षाओं की भी।

सालाना कोर्स की शुरूआती आधी कक्षाओं में देवनागरी से परिचित होता छात्र जैसे ही नए अक्षरों में लिखना शुरू कर संतोष की साँस ले पाए उसके पहले उस पर नस्तालीक लिपि को थोप दिया जाता है। अगली कक्षाओं में वह उससे संघर्ष करता है और इस दौरान देवनागरी दिमाग से देवलोक हो जाती है। बेचारा अंत तक, न तो इधर का रहता है, न उधर का। हाँ, ट्रांसस्क्रिप्ट में एक सम्मानजनक कोर्स दर्ज हो जाता है। यूनिवर्सिटी फिर से यही कवायद दोहराती है। एक-एक करके खिसकते हुए छात्रों की संख्या कम होती चली जाती है। परिणामस्वरूप अगले तीन-चार सालों में हिंदी-उर्दू कक्षाओं का नामोनिशान ख़त्म हो जाता है।

इसके विपरीत कई भाषाएँ, उदाहरण के लिए चीनी भाषा के कोर्स, साल दर साल प्रगति करते उन्हीं चार सालों में अपने बड़े-बड़े विभागों के साथ सुस्थापित हो जाते हैं। छात्रों की संख्या बढ़ती जाती है। उनकी भाषा में कुर्सी पर बैठे उनके लोग ऐसा प्रयोग करने की सोचते भी नहीं क्योंकि उन्हें अपनी आने वाली पीढ़ी को अपनी भाषा देनी है। कुर्सी पर बैठे हमारे रहनुमा ऐसा प्रयोग करते हैं क्योंकि उनके पास ऐसे कई कारण हैं। कई क्षेत्रीय भाषाओं के होते हुए उनका हिंदी प्रेम और हिंदी ज्ञान यही कहता है कि हिंदी को सदैव अन्य भाषा की बैसाखी चाहिए। जबकि स्थिति बिल्कुल विपरीत है। वह दिन दूर नहीं जब अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को आगे लाते हमारे ये आका एक दिन हिंदी-उर्दू, हिंदी-गुजराती, हिंदी-बंगाली, हिंदी-पंजाबी कोर्स शुरू कर दें और न चलने पर विश्वविद्यालयों

के इतिहास में सदा-सदा के लिए अंकित हो जाए कि हिंदी के कोई भी कोर्स चलते नहीं हैं, उन्हें बंद कर दिया जाए।

यकीनन, कागज़ पर आँकड़ों का गणित हिंदी के विकास का भव्य खाका खींचता है। आए दिन वेबिनारों, सेमिनारों में हिंदी के विस्तार का महिमामंडन बेहद कर्णप्रिय होता है। अफ़सोस, ज़मीनी हक़ीकत कुछ और ही बयाँ करती है। भाषा के मूल को ज़िन्दा रखने के लिए आवश्यक है कि आने वाली पीढ़ी के भविष्य को हिंदी से जोड़ा जाए एवं मानक सरलीकरण सहर्ष स्वीकार कर, हिंदी के अस्तित्व पर मँडराते खतरे को टालने के प्रयास किए जाएँ।

हंसा दीप *कनाडा के टोरंटो विश्वविद्यालय में हिंदी अध्यापिका हैं तथा प्रख्यात हिंदी साहित्यकार हैं।*
संपर्क: hansadeep8@gmail.com

चीन

विवेक मणि त्रिपाठी

संस्कृति किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है तथा भाषा व् साहित्य उस राष्ट्र की संस्कृति के वाहक होते हैं। भारतीय संस्कृति को भी जानने व समझने का सर्वोत्तम माध्यम भारतीय भाषाएँ ही हैं। वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण के माध्यम से विश्व के विद्वतजन भारतीय संस्कृति को जान-समझ रहे हैI चीन में भी भारतीय संस्कृति की अमिट छाप है। भारत-चीन के मध्य तीन सहस्त्र वर्षों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान का गौरवशाली इतिहास है, जिसमें भाषा का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। प्राचीन काल में चीनी विद्वत समाज संस्कृत व् पाली भाषा के माध्यम से भारतीय संस्कृति को समझने का प्रयास करता था। चीन में भारतीय भाषाओं के अध्ययन का लम्बा इतिहास रहा है। प्राचीन काल में भारत से हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, योग, आयुर्वेद का ज्ञान चीन गया जिसने चीनी संस्कृति को समृद्ध किया। चीनी जन इन भारतीय ज्ञान को विस्तृत रूप से समझने के लिए भारतीय भाषाओं के ज्ञान को आवश्यक समझा, फलतः प्राचीन भारत की तत्कालीन भाषा संस्कृत तथा बाद में पाली भाषाओं का चीनी विद्वतजनों ने सांगोपांग अध्ययन किया। ह्वेनसांग, फाह्यान, यित्सिंग जैसे चीनी विद्वान भारत आये और विश्व प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय में संस्कृत-पाली भाषाओं के ज्ञान सहित भारतीय दर्शन, चिकित्सा विज्ञान आदि का अध्ययन किया और वापस चीन जाकर उनका चीनी भाषा में अनुवाद भी किया जिनमें से अधिकतर आज भी संग्रहित है। धर्मांध मुस्लिम आक्रमणकारी बख़्तियार खिलजी द्वारा नालंदा विश्वविद्यालय को नष्ट कर देने के कारण भारत में उनमें से अधिकांश अप्राप्य है। भारत से भी बोधिधर्मन, कुमारजीव आदि महान विद्वान अपने विपुल ज्ञान भंडार के साथ चीन गए और भारतीय ज्ञान को चीनी विद्वत जनों के समक्ष रखा। भारतीय-चीनी विद्वानों के संयुक्त प्रयास से भारत-चीन के मध्य 3000 वर्ष लम्बे सांस्कृतिक सेतु का निर्माण हुआ जिसका प्रभाव हम आज भी देख सकते हैं।

प्राचीन चीनी विद्वानों ने संस्कृत भाषा के माध्यम से भारत- चीन सम्बन्ध की नींव रखी। वर्तमान समय में भी चीन भारतीय संस्कृति को समझने के लिए भारतीय भाषाओं का अध्ययन कर रहा है जिसमें संस्कृत, पाली, हिंदी, तमिल, पंजाबी, गुजराती, बंगाली, उर्दू आदि भाषाएँ शामिल हैं। इन भारतीय भाषाओं में से संस्कृत –पाली भाषाओं पर अधिकतर शोध ही होता है। पंजाबी, गुजराती भाषाओं में एक-दो वर्षीय पाठ्यक्रम ही उपलब्ध है जो कुछेक वर्ष पहले ही प्रारंभ हुए हैं। अभी चीन में भारतीय भाषाओं में केवल हिंदी भाषा में ही स्नातक, स्नातकोत्तर, पी-एच.डी. पाठ्यक्रम उपलब्ध है। वर्तमान में चीन के सोलह विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा एवं साहित्य में पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

हिंदी भाषा एवं साहित्य पाठ्यक्रम संचालित करने वाले चीनी विश्वविद्यालय निम्नांकित हैं–

क्रम संख्या	*विश्वविद्यालय का नाम*	*हिंदी पाठ्यक्रम स्थापना वर्ष*
1.	बीजिंग विश्वविद्यालय, बीजिंग	1942
2.	बीजिंग जनसंचार विश्वविद्यालय, बीजिंग	2000
3.	बीजिंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, बीजिंग	2006
4.	शीआन अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, शीआन	2006
5.	क्वांग्तोंग विदेशीभाषा विश्वविद्यालय, क्वान्चौ	2011
6.	युन्नान अल्पजाति विश्वविद्यालय, खुनमिंग	2011
7.	शंघाई अंतरराष्ट्रीय भाषा विश्वविद्यालय, शंघाई	2013
8.	पी.एल.ए विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, बीजिंग	अनुपलब्ध
9.	ल्वयांग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, ल्वयांग	अनुपलब्ध
10.	थिएनचिन विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, थिएनचिन	2017
11.	द्वितीय बीजिंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, बीजिंग	2018
12.	युन्नान विश्वविद्यालय, खुनमिन	अनुपलब्ध
13.	सिछवान विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, छोंग्छिंग	2019
14.	वन्चौ विश्वविद्यालय, वन्चौ	2020
15.	छिंग ताओ विश्वविद्यालय, शानतोंग	अनुपलब्ध
16.	हुनान शिक्षण विश्वविद्यालय, छांगशा	अनुपलब्ध

चीन में हिंदी शिक्षण का प्रारम्भ एवं विकास

चीन में हिंदी भाषा को प्रारंभ हुए लगभग आठ दशक हो चुके हैं। चीन में हिंदी शिक्षण को लगभग आठ दशक का लम्बा समय पूरा हो गया है। सर्वप्रथम 1942 में चीन के युन्नान प्रान्त के राष्ट्रीय पूर्वी भाषा महाविद्यालय में हिंदी शिक्षण प्रारंभ हुआ, लेकिन उस समय चीन में जापान विरोधी युद्ध विजय को देखते हुए हिंदी विभाग को सिछवान प्रान्त के छोंग्छिंग शहर में स्थानांतरित कर दिया गया, और 1946 में नानचिंग शहर में स्थानांतरित कर दिया गया। 1949 में चीनी जनवादी गणराज्य की स्थापना हुई और पूर्वी भाषा महाविद्यालय को नानचिंग शहर से राजधानी पेइचिंग के पेइचिंग विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषा महाविद्यालय में मिला दिया गया जो कालांतर में चीन में हिंदी अध्ययन का महत्वपूर्ण केंद्र बना।

चीन में हिंदी शिक्षण को पांच भागों में बांटा जा सकता है, प्रथम चरण 1942 से वर्ष 1948 तक, द्वितीय चरण, वर्ष 1949 से 1968 तक, तृतीय चरण वर्ष 1966 से 1976 चतुर्थ चरण 1976 से 2005 पंचम चरण 2005से वर्तमान समय तक है।

प्रथम चरण–पहला वर्ष 1942 से वर्ष 1948 तक, यह समय हिंदी शिक्षण का प्रारंभिक काल था, उस समय चीन राजनितिक रूप से बहुत ही उथल-पुथल से गुज़र रहा था, परिणामतः इस काल में हिंदी भाषा शिक्षण में ज़्यादा प्रगति नहीं हुई।

द्वितीय चरण–चीन में हिंदी शिक्षण का दूसरा काल वर्ष 1949 से 1968 तक था, यह काल चीन में हिंदी शिक्षण के लिए बहुत ही अच्छा रहा, इसी समय नए भारत और नए चीन की स्थापना हुई, दोनों देशों के मित्रता की नई कहानी शुरू हुई, तत्कालीन चीनी प्रधानमंत्री चऊ एन लाय ने चीनी विद्यार्थियों को हिंदी पढने लिए प्रेरित किया, उस समय के भारतीय राजदूत महोदय की पत्नी को पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने के निमंत्रित किया गया, फलतः हिंदी का भी विकास द्रुतगति से हुआ, इस काल के हिंदी विद्वानों ने चीन के हिंदी शिक्षण की मजबूत नीवं रखी, लेकिन 1962 में हुए भारत-चीन युद्ध ने हिंदी की विकास यात्रा पर विराम लगा दिया।

तृतीय चरण–तीसरा काल वर्ष 1966 से 1976 तक था, यह काल चीन में सांस्कृतिक क्रांति का काल था, सांस्कृतिक क्रांति के समय चीन में बहुत असमान्य काल था, विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षा की प्रणाली को बंद कर दिया गया था, विद्यार्थियों

को अनुशंसा के आधार पर प्रवेश मिलने लगा, जिसके कारण शैक्षिक रूप से असामान्य लोग विश्वविद्यालय में प्रवेश करने लगे जिसका प्रभाव हिंदी शिक्षण पर भी पड़ा, प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी मुख्यतः किसान और सैनिक होते थे, जिनकी अकादमिक क्षेत्र में कोई विशेष रूचि नहीं थी, फलतः उनका चीन के हिंदी अध्ययन-शोध में कोई विशेष योगदान नहीं रहा।

चतुर्थ चरण–चौथा काल 1976 से 2005 और पांचवां काल 2005 से वर्तमान समय तक। यह समय चीन के आर्थिक विकास के प्रारंभ का समय था, अस्सी के अंत का दशक चीन के आधुनिकतावाद और आर्थिक सुधारवाद में प्रवेश का समय था, चीन में चतुर्दिक सकारात्मक परिवर्तन का समय था, आर्थिक प्रगति के साथ चीन के कई नए विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा की पढ़ाई शुरू हुई।

पंचम चरण–पांचवां काल 2005 से वर्तमान समय तक। वर्ष 2005 में चीनी राष्ट्रपति का भारत आगमन हुआ, दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार बढ़ने लगा, व्यापार के साथ-साथ भाषाई सम्बन्ध भी प्रगाढ़ करने की आवश्यकता को दोनों देशों के नेताओं ने समझा और इस काल में चीन में सबसे ज़्यादा विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढाई शुरू हुई, और लगभग 10 नए विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम में स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठयक्रम शुरू की गई।

चीनी विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम

चीन में अभी हिंदी में स्नातक, स्नातकोत्तर और पीएचडी तीन पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं। चीन के सोलह विश्वविद्यालयों में हिंदी में स्नातक पाठ्यक्रम हैं, तीन विश्वविद्यालयों बीजिंग विश्वविद्यालय, क्वांग्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, क्वान्चौ तथा शीआन अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, शीआन में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम है, तथा केवल एक बीजिंग विश्वविद्यालय में हिंदी में पीएचडी पाठ्यक्रम है। कुछ विश्वविद्यालयों प्रत्येक वर्ष हिंदी पाठ्यक्रम में नामांकन होता है तो कुछ में एक और चार वर्ष के अन्तराल पर नामांकन होता है। स्नातक पाठ्यक्रम में हिंदी वार्तालाप, हिंदी लेखन, हिंदी श्रवण, व्यावसायिक हिंदी, समाचार पत्र, हिंदी-चीनी अनुवाद, चीनी-हिंदी अनुवाद, भारत-चीन सांस्कृतिक संबंध का इतिहास, हिंदी साहित्य, हिंदी साहित्य का इतिहास, उच्च हिंदी आदि विषय पढ़ाये जाते हैं। स्नातकोत्तर में उन्हें हिंदी-चीनी अनुवाद, हिन्दू धर्म, हिन्दू

दर्शन, भारतीय समाज, भारत का इतिहास आदि विषय हिंदी व् चीनी भाषा में दो वर्ष पढ़ाया जाता है तथा तृतीय वर्ष में वे हिंदी / चीनी भाषा में शोध पत्र लिखते हैंI

चीन में स्नातक चार वर्षों का होता हैं तथा स्नातकोत्तर तीन वर्षों का होता है। हिंदी में स्नातक करने वाले विद्यार्थी प्रथम व् द्वितीय वर्ष में बुनियादी हिंदी सीखते हैं, जिसमें विद्यार्थी हिंदी व्याकरण, हिंदी श्रवण, मौखिक हिंदी आदि विषय पढ़ते हैं। इन दो वर्षो में वे हिंदी पढ़ना, लिखना व् सीखना तीनों में पारंगत हो जाते हैं। प्रथम वर्ष में ही उन्हें चीनी भाषा में "भारत–एक परिचय" विषय भी पढ़ाया जाता है जिसमें उन्हें भारतीय समाज, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, राजनीति आदि से परिचय कराया जाता है। चूकि प्रथम वर्ष के विद्यार्थी हिंदी पढ़ना शुरू ही करते हैं, इसलिए यह विषय उन्हें चीनी भाषा में पढ़ाया जाता है, उद्देश्य यह रहता है कि जो विद्यार्थी हिंदी पढ़ रहे हैं उन्हें भारत के समाज व् संस्कृति से सामान्य परिचय हो जाए।

तृतीय वर्ष में वे भारत जाते हैं जहाँ एक वर्ष वे हिंदी भाषा के साथ साथ भारतीय संस्कृति के साथ साक्षात्कार करते हैं जो उनके लिए एक बहुत ही अलग प्रकार का अनुभव होता है, क्योंकि भारत जाने से पहले वे मीडिया के माध्यम से ही भारत से परिचित हुए होते हैं, जिससे उनके मन में भारत के प्रति थोड़ी नकारात्मक छवि बैठ जाती है, जैसे कि भारत महिलाओं के लिए असुरक्षित है, लेकिन भारत में एक साल रहने के दौरान उन्हें भारतीय समाज को नजदीक से देखने का अवसर प्राप्त होता है जिससे उनके मन में भारत के बारे में बैठी भ्रान्ति समाप्त हो जाती है, उन्हें भारत से अनकहा लगाव हो जाता है जो उनके चीन वापस जाने के बाद भी अपनी ओर आकर्षित करता है, फलस्वरूप कई चीनी विद्यार्थी स्नातकोत्तर करने तथा नौकरी करने भारत चले जाते हैं। तृतीय वर्ष में भारत जाने के लिए चीनी विद्यार्थियों को चीनी सरकार तथा भारतीय सरकार से छात्रवृति मिलती हैं, यदि किसी कारणवश किसी विद्यार्थी को छात्रवृति नहीं मिलती है तो वे स्वयं के खर्च से हिंदी में उच्च अध्ययन के लिए भारत चले जाते हैं।

चतुर्थ वर्ष में चीनी विद्यार्थी भारत से वापस आने बाद भारत-चीन सांस्कृतिक सम्बन्ध का इतिहास, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, व्यावसायिक हिंदी, हिंदी-चीनी अनुवाद, हिंदी साहित्य, आदि विषय पढ़ते हैं, साथ ही पहले सत्र में हिंदी में एक लघु शोध निबंध लिखते हैं, शोध निबंध का विषय भारतीय साहित्य, समाज, भारत चीन सम्बन्ध आदि से सम्बन्धित होता है। दूसरे सत्र में विद्यार्थी बाहर किसी कंपनी में कार्यानुभव लेते

है। इस प्रकार चतुर्थ वर्ष में विद्यार्थी हिंदी में शोध अनुभव भी ले लेते हैं तथा कार्यानुभव भी, जो उनके स्नातक होने के बाद उनके भविष्य निर्धारण में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है।

चीन में हिंदी अध्ययन-अध्यापन में आने वाली मुख्य चुनौतियाँ

हिंदी पठन सामग्री का अभाव–चीन में हिंदी अध्यापन में प्रमुख समस्या हिंदी पठन सामग्री की है। हिंदी व्याकरण की पुस्तक चीनी विद्वानों द्वारा हिंदी-चीनी भाषा में तैयार की गई है। सबसे बड़ी समस्या हिंदी श्रवण पाठ्य को लेकर होती है, जिसमें भारत सरकार की तरफ़ से कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। शिक्षक इन्टरनेट से स्वयं विडियो खोजते हैं। लेकिन इसमें सबसे बड़ी समस्या भाषा को लेकर होती है, क्योंकि विडियो की भाषा शुद्ध होनी चाहिए, उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए। हमारी सरकार को विदेशी विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर एक हिंदी श्रवण पाठ्य सामग्री तैयार करनी चाहिए। हिंदी समाचार पत्र विषय को पढ़ाने में सबसे बड़ी समस्या समाचार पत्रों में जानबूझकर ठूँसी गयी अंग्रेज़ी शब्दों की है। शिक्षक विद्यार्थियों को मानक व् शुद्ध हिंदी पढ़ाने का प्रयास करते हैं। परन्तु इस विषय को पढ़ाते समय इन्टरनेट से जो भी समाचार शिक्षक द्वारा लिया जाता है उसके प्रत्येक वाक्यों में आधे से अधिक शब्द अंग्रेज़ी के होते हैं, जिसे पढ़ने व् पढ़ाने में विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों को समस्याएं आती हैं। विद्यार्थी भी हतोत्साहित होते हैं कि भारत में सब जगह अंग्रेज़ी में ही कार्य होता है तो हम हिंदी क्यों सीखें? इस वर्ष चीन में विश्व हिंदी दिवस के कार्यक्रम को लेकर हमारे भारतीय वाणिज्य दूतावास द्वारा चीन के हिंदी अध्यापकों के साथ एक ऑनलाइन बैठक रखी गयी जिसमें हमारे भारत के कांसुलेट महोदय द्वारा पूरी बातचीत को अंग्रेज़ी में रखा गया, जिस पर चीन के हिंदी एक विद्वान ने कहा कि विश्व हिंदी दिवस की बैठक अंग्रेज़ी में हो रही है, आप स्वयं अंग्रेज़ी में बात कर रहे हैं, और विदेशी विद्वानों से आशा रख रहे हैं कि हम हिंदी उत्त्थान के लिए कार्य करें, क्या ऐसे हिंदी का विकास होगा? वाणिज्य दूतावास से हिंदी पाठ्यक्रम संचालित चीनी विश्वविद्यालयों में जितने भी पत्राचार किये जाते हैं वे अंग्रेज़ी में किये जाते हैं, जिससे चीन के हिंदी अध्यापकों के मन में एक निराशा की भावना उत्पन्न होती है।

भारतीय मूल के हिंदी शिक्षकों का अभाव–चार चीनी विश्वविद्यालयों में भारत सरकार द्वारा हिंदी पीठ स्थापित है जिसकी देखरेख भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

द्वारा की जाती है, लेकिन वर्ष 2020 से चारों हिंदी पीठ रिक्त हैं जिससे हिंदी पठन-पाठन में व्यवधान दृष्टिगोचर हो रहा है। इस समस्या से निकलने के लिए चीनी विश्वविद्यालयों ने अपने स्तर से भारतीय मूल के शिक्षकों को अपने यहाँ आमंत्रित किया है जिससे चीन में हिंदी की धारा निर्बाध रूप से प्रवाहित होती रहे।

कोरोना उपरांत भारत जाने के लिए मिलने वाली छात्रवृति में व्यवधान–कोरोना पूर्व प्रत्येक वर्ष से चीन से 40 से अधिक विद्यार्थी भारत में हिंदी अध्ययन के लिए छात्रवृति तथा स्वयं के खर्च पर जाते थे। वर्ष 2023 में पूरे चीन से केवल पांच विद्यार्थियों को भारत सरकार द्वारा छात्रवृति प्रदान की गई, लेकिन उसमें भी केवल दो विद्यार्थी ही भारतीय वीजा प्राप्त कर भारत जा सके। कुछ विद्यार्थी स्वयं के खर्च पर भारत में हिंदी में स्नातकोत्तर के लिए आवेदन किया परन्तु वीजा नहीं मिलने के कारण वे नहीं जा सके। भारत- चीन राजनीतिक संबंधों द्वारा दोनों देशों के मध्य भाषाई व सांस्कृतिक आदान-प्रदान को दुष्प्रभावित होने से बचाना चाहिए।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में चीन में हिंदी भाषा शिक्षण की स्थिति बहुत अच्छी है। चीन में हिंदी शोध की भाषा, अनुवाद की भाषा तथा व्यापार की भाषा बनी हुई है। हिंदी साहित्य पर बहुत शोध हो रहे हैं, वाल्मीकि रामायण, पंचतंत्र, महाभारत, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, रामचरितमानस, सूरसागर, फणीश्वर नाथ रेणु की मैला आंचल, प्रेमचंद की प्रतिनिधि कहानियों का चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका है। चीनी विद्यार्थी स्नातक एवं स्नातकोत्तर में भी लघु निबंधों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, दर्शन, वाणिज्य, भारतीय नारी की स्थिति आदि को समझने का प्रयास करते हैं। साथ ही चीनी विद्वतजन भी अपने तथ्यपरक शोधों से हिंदी भाषा को समृद्ध कर रहे हैं। हिंदी में उनके योगदान को देखते हुए प्रसिद्ध चीनी शिक्षक प्रोफ़ेसर यू लोंग यू को वर्ष 2016 में भारत के माननीय राष्ट्रपति द्वारा भारत अध्ययन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए “भारतविद् पुरस्कार” प्रदान किया गया। बीजिंग विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रोफ़ेसर च्यांग चिंग ख्वेई जिनका सूरदास पर विशेष शोध कार्य हैं को हिंदी में विशेष योगदान के लिए वर्ष 2018 में भारत सरकार द्वारा “डॉ जार्ज गियर्सन पुरस्कार” प्रदान किया गया। वाल्मीकि रामायण, पंचतंत्र, अभिज्ञानशाकुन्तलम् का चीनी भाषा में पद्यानुवाद करने वाले प्रो. चि श्येनलिन को वर्ष

2008 भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित किया गया, वे उस समय अस्पताल में थे, भारत आने की स्थिति में नहीं थे, तब भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री श्री प्रणब मुखर्जी ने स्वयं चीन जाकर अस्पताल में प्रो. चि श्येनलिन को पद्मभूषण से सम्मानित किया, पद्मभूषण से सम्मानित होने वाले वे प्रथम चीनी विद्वान हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि चीन में हिंदी का विकास तीव्र गति से हो रहा है तथा हिंदी भाषारूपी सेतु के माध्यम से भारत-चीन सांस्कृतिक संबंध दिन प्रतिदिन प्रगाढ़ हो रहे हैं।

विवेक मणि त्रिपाठी *चीन के पीकिंग विश्विद्यालय में भारत की ओर से प्रतिनियुक्त हिंदी प्राध्यापक हैं। संपर्क: vivekmani.bhu@gmail.com*

जापान

हरजेन्द्र चौधरी

जापान के तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ के मूल पूर्ववर्ती विद्यालय में हिन्दुस्तानी (हिंदी-उर्दू) भाषा की पढ़ाई आज से 116 साल पहले, 1908 में शुरू हुई। इसके 13 वर्ष बाद 1921 में ओसाका के उस संस्थान में हिंदुस्तानी का शिक्षण प्रारंभ हुआ, जो कालांतर में ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ कहलाया। 25 विदेशी भाषाओं के पाठ्यक्रम चलाने वाले इस विश्वविद्यालय का सन 2007 में ओसाका विश्वविद्यालय में विलय कर दिया गया। आज यह दो दर्ज़न भाषाओं तथा उनके माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों और समाजों के अध्ययन की व्यवस्था वाले एक महत्वपूर्ण संकाय के रूप में सक्रिय है।

जापान के उपर्युक्त दोनों विश्वविद्यालय राजकीय विश्वविद्यालय हैं, जहां हिंदी में एम. ए. तथा पीएच.डी. तक की पढ़ाई की जा सकती है। क्योतो विश्वविद्यालय (क्योतो) भी एक स्टेट यूनिवर्सिटी है, जहां माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा व साहित्य का शिक्षण होता है। इनके अलावा जापान में अनेक अन्य विश्वविद्यालयों में द्वितीय विदेशी भाषा के रूप में अलग-अलग अवधि व स्तर वाले हिंदी-कोर्स चलते हैं। उदाहरण के लिए तोकुशोकु विश्वविद्यालय (तोक्यो), दाइतो बुंका विश्वविद्यालय (तोक्यो/साइतामा), वासेदा होशिएन, वासेदा यूनिवर्सिटी (तोक्यो), एशिया विश्वविद्यालय (तोक्यो), क्योतो सांग्यो विश्वविद्यालय (क्योतो), मियागो गाकुइन महिला विश्वविद्यालय (सेंदाई, मियागी) जैसे निजी विश्वविद्यालयों का नाम लिया जा सकता है।[1] जापान रेडियो (यानी एन. एच. के. की हिंदी सेवा) तथा भारतीय दूतावास का विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र भी अपने-अपने ढंग से हिंदी-शिक्षण को गति दे रहे हैं।

जापान के कुछ हिंदी-प्रेमियों व हिंदी-सेवियों के नामों से हम भारतीय सुपरिचित हैं। जापान में अनेक ऐसे हिंदी विद्वान भी हैं, जिनके बारे में हमें कम जानकारी है या हम बिल्कुल अनजान हैं। इसका कारण यह है कि वे प्रचार और प्रसिद्धि की दुनिया से दूर रहते हैं। जापान के अनेक संकोची और मितभाषी हिंदी-विद्वान् उपयोगी संपर्कों के संसार से परे, चुपचाप और गंभीरता से अपने काम में डूबे रहते हैं। हिंदी भाषा से जुड़ा उनका काम पाठ्य-सामग्री, शिक्षण, लेखन, नाट्य-मंचन, भाषायी-व्याकरणिक विश्लेषण, आलोचना, संपादन, देवनागरी-फ़ोंट्स, हिंदी-टंकण की प्रविधि, नवोन्मेषी शोध, अनुवाद तथा शब्दकोश आदि के रूप में सामने आता है तो हम जैसे हिंदी-प्रेमी संस्कृति-कर्मियों को हर्ष और आश्चर्य होता है। हमें हर्षित-चकित करने वाली बात यह भी है कि जापान में अनेक ऐसे हिंदी-प्रेमी मिलेंगे, जिनकी रोज़ी-रोटी का हिंदी से कोई संबंध नहीं है। हिंदी की पढ़ाई करने वाले अनेक जापानियों को नौकरी पाने में इस भाषा से मदद न मिलने के बावजूद हिंदी का शिक्षण-प्रशिक्षण वहां ज़ोर-शोर से चल रहा है। इसके दो कारण हैं। एक यह कि बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति सामान्यतः जापानियों की पारंपरिक रुचि के विषय हैं तथा दूसरी ओर उभरते भारत में उन्हें अब अपने लिए तथा अपने देश के लिए अनेक संभावनाएं दिखाई पड़ने लगी हैं। भूमंडलीकरण, निजीकरण और मुक्त बाज़ार की हवा चलने के बाद से भारत पिछले तीन दशक की अवधि के दौरान दुनिया भर की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए ही नहीं, भारतीय संस्कृति में रुचि रखने वालों के लिए भी अधिक महत्वपूर्ण होता चला गया है।

इन पंक्तियों के लेखक ने 1994 से 1996 की अवधि के दौरान ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ में तथा 2010 से 2012 के बीच ओसाका विश्वविद्यालय में अध्यापन किया। उपर्युक्त दोनों अवधियों की तुलना करने पर निष्कर्ष निकलता है कि विश्व-व्यवस्था में भारत के बढ़ते महत्व के समांतर हिंदी की महत्ता बढ़ी है। हिंदी भाषा के पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए नव-विद्यार्थियों के लिए प्रतियोगिता कठिनतर हुई है। इसका एक कारण यह है कि भारत और भारतीय भाषाओं में रुचि रखने वाले विदेशियों के प्रति भारत सरकार का रवैया बहुत उदार है। भारतीय संस्कृति, दर्शन, भाषा, साहित्य, कला, नृत्य और संगीत आदि के अध्ययन-प्रशिक्षण व शोध में रुचि रखने वाले विदेशी अध्येताओं को भारत में अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती हैं। जहां तक हिंदी का प्रश्न है, पिछले बीस-पच्चीस वर्षों के दौरान विश्व भर के अनेक संस्थानों

व विश्वविद्यालयों में इस भाषा पर केंद्रित क्षेत्रीय संगोष्ठियों और सम्मेलनों का आयोजन किया गया है। ऐसी गतिविधियां हमारे दूतावासों के भरपूर सहयोग के बिना संभव नहीं। मै अपने अनुभवों, बौद्धिक भागीदारी और सक्रिय भूमिका के आधार पर कह सकता हूं कि यूरोप और एशिया में अनेक क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन आयोजित किए गए हैं। उदाहरणार्थ, यहां जापान में आयोजित कुछ सम्मेलनों का ज़िक्र करना चाहूंगा। पहला अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन 2006 में तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ में हुआ। तदंतर जापान में हिंदुस्तानी (हिंदी-उर्दू) की पढ़ाई की एक शताब्दी संपन्न होने के अवसर पर 2008 में भारतीय दूतावास के सहयोग से इसी विश्वविद्यालय में हिंदी-उर्दू सम्मेलन आयोजित किया गया था, जिसमें भारत और पाकिस्तान के दूतावासों का सहयोग मिला था तथा दोनों दक्षिण एशियाई देशों के अलावा अमरीका, जर्मनी व मॉरीशस आदि से भी विद्वानों को आमंत्रित किया गया था। ओसाका विश्वविद्यालय में 2010 में (28-29 नवंबर को) प्रथम अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन आयोजित किया गया।[2] प्रोफ़ेसर ताकाहाशि आकिरा, हरजेन्द्र चौधरी और ओसाका-कोबे में भारत के तत्कालीन महावाणिज्य दूत व 'क्यू एंड ए' उपन्यास (जिस पर 'स्लमडॉग मिलियनेयर' फ़िल्म बनी) के लेखक श्री विकास स्वरूप की रुचि व सक्रियता से संभव हो पाया था। इस आयोजन में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने सक्रिय भूमिका निभाई थी।

उसके पश्चात भारत-जापान के राजनयिक संबंधों के छह दशक होने के अवसर पर जनवरी 2012 में तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ में एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन[3] का आयोजन किया गया, जिसमें भारत, अमरीका, हंगरी, डेनमार्क, मॉरीशस तथा त्रिनीदाद से पधारे विद्वानों ने हिस्सा लिया था। इस विश्वविद्यालय में हुए ये सारे सम्मेलन हिंदी विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष प्रोफ़ेसर ताकेशि फ़ूजी, प्रोफ़ेसर योशिफ़ूमि मिज़ुनो तथा तत्कालीन विज़िटिंग प्रोफ़ेसर डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण के प्रयासों तथा भारतीय दूतावास के सहयोग से संपन्न हुए थे। हाल ही की बात करें तो तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ में 02 से 04 फरवरी, 2024 में एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया है।[4]

जापान के ओसाका विश्वविद्यालय तथा तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ में आयोजित होने वाले वार्षिक आयोजनों में क्रमशः ओसाका-कोबे के इंडियन कोंसुलेट तथा तोक्यो स्थित भारतीय दूतावास का भरपूर सहयोग मिलता है। स्पष्ट है कि अंतरराष्ट्रीय

स्तर के शैक्षिक-सांस्कृतिक आयोजनों के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है। हमारे दूतावासों के माध्यम से भारत सरकार द्वारा उपलब्ध उदार आर्थिक सहयोग से विभिन्न विदेशी विश्वविद्यालयों/संस्थानों में संगोष्ठियों-सम्मेलनों का सिलसिला चलता रहता है। कहना न होगा कि भारत में हो रहे परिवर्तनों तथा विकास के कारण अनेक अन्य देशों की तरह जापान में भी हिंदी की पढ़ाई में गतिशीलता आई है। हाल के कुछ वर्षों में भारत में जापानी कंपनियों की गतिविधियों का प्रसार हुआ है। प्रसंगवश बता दूं कि ओसाका विश्वविद्यालय के मेरे कुछ पुराने विद्यार्थी भारत में कार्यरत हैं।

उपर्युक्त विवरण से जापान में हिंदी की स्थिति और संभावनाओं को लेकर बहुत आश्वस्तकारी छवि सामने आती है। परंतु इसके विपरीत यह भी सच है कि हिंदी के समक्ष अनेक चुनौतियां मौजूद हैं। जापान में हिंदी के भविष्य को लेकर अनेक आशाएं हैं तो कई आशंकाएं भी हैं।

जापान में हिंदी के समक्ष मूलभूत चुनौतियां

यह स्वाभाविक है कि विदेशी भाषा सीखते समय शिक्षार्थी की अपनी भाषा का हस्तक्षेप कभी बाधा तो कभी सुविधा का रूप ले लेता है। मसलन, जापानी वाक्य-विन्यास में कर्ता-कर्म-क्रियापद का क्रम हिंदी की तरह होना जापानियों के लिए सुविधा का कारण बनता है। जापानी भाषा लिखते समय तीन लिपियों (हिरागाना, काताकाना तथा कांजी) के समांतर प्रयोग के मुकाबले सीमित ध्वनि-चिह्नों वाली हमारी देवनागरी का प्रयोग सरल है। परंतु जापानी में 'र', 'ल' तथा 'ड़' ध्वनियां अलग-अलग नहीं हैं, इसलिए इन तीनों ध्वनियों वाले शब्दों के बीच अंतर कर पाना तथा उच्चरित करना उनके लिए कठिन हो जाता है। जापानी विद्यार्थी आलू और आड़ू में लिखकर अंतर बता सकते हैं, बोलकर नहीं। भारत को कभी 'भारत' तो कभी 'भालत' बोलते हैं। दिल्ली या डेल्ही का जापानी उच्चारण 'दे:रि' है।

हिंदी की भाषायी संरचना के कारण जापानियों के लिए इसे सीखना कोई सरल काम नहीं है। इसमें पारंगत होने में बहुत समय लगता है। मसलन, हिंदी वाक्य-विन्यास में संज्ञा-पदों के लिंग-वचन के अनुसार विशेषणों व क्रियापदों में होने वाले परिवर्तन संबंधी नियमों से परिचित होने के बावजूद विदेशी अध्येता हिंदी बोलचाल में अनेक वर्षों बाद तक भी गलतियां करते पाए जाते हैं। विद्यार्थी तो गलती करते ही हैं। हिंदी की व्याकरणिक व्यवस्था से परिचित होने के बावजूद वे बोलते समय विचलित हो जाते हैं। हिंदी में संज्ञा

शब्दों के लिंग-निर्धारण के संबंध में नियम कम और अपवाद ज़्यादा होना भी उनके लिए कठिनाई का सबब बन जाता है। सांस्कृतिक स्रोतों से निःसृत हिंदी अभिव्यक्तियां भी जापानी विद्यार्थियों को प्रायः उलझन में डाल देती हैं। शब्दकोशों से प्राप्त शाब्दिक अर्थों का अतिक्रमण करने वाले मुहावरों ('चूड़ियां फूटना' 'तिलांजलि देना' आदि) को समझने के लिए सांस्कृतिक-सामाजिक स्रोतों तक पहुंच बनानी पड़ती है तो हिंदी में तीन-तीन संबोधनपरक मध्यम पुरुष सर्वनामों के सही प्रयोग के लिए भी अतिरिक्त जानकारी अनिवार्य है। "इन तीनों सर्वनामों (आप, तुम और तू) के प्रयोग के अपने नियम हैं। भारत की समाजार्थिक व्यवस्था में निहित स्तर-भेद तथा उनसे निःसृत भाषायी नियमों को ठीक से समझकर ही हिंदी के विदेशी अध्येता इन तीनों सर्वनामों का वांछित प्रयोग करने में सक्षम हो सकते हैं।"[5]

संक्षेप में एक बात और। हिंदी में मानकीकरण की कमी, उसपर अपनी लगभग डेढ़ दर्ज़न बोलियों का दबाव-प्रभाव तथा क्षेत्रीय वैविध्य विदेशियों के लिए हिंदी को कठिन बनाने वाले कारक हैं। जापान में उत्कृष्ट शिक्षण सुविधाओं की उपलब्धता के बावजूद जापानियों के लिए हिंदी सीखना एक बहुत श्रम-साध्य व समय-साध्य प्रक्रिया है।

जापानी स्वभाव भी हिंदी-शिक्षण के लिए एक चुनौती है। अधिकतर जापानी संकोची व मितभाषी होते हैं। बार-बार उकसाए जाने के बावजूद वे कक्षा में सवाल पूछने से झिझकते हैं। इस प्रकार हिंदी-शिक्षण में जापानी स्वभाव शिक्षक के समक्ष एक चुनौती पेश करता है। विद्यार्थी बहुत मेहनत करते हैं, पर अधिकतर चुप रहते हैं। सवाल नहीं पूछते। बहुत बार तो शिक्षक को यही पता नहीं चल पाता कि पढ़ाया गया विषय उन्हें कितना समझ आया है। जाहिर है कि हिंदी की भाषायी संरचना के साथ-साथ जापानियों का संकोची स्वभाव जापान में हिंदी के लिए इस रूप में चुनौती बन जाता है कि हिंदी के कुछ विद्यार्थी इस भाषा को छोड़कर चुपचाप अपना रास्ता बदल लेते हैं।

आधुनिक जापान की सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के अंतर्गत वयस्क होने के बाद अधिकतर किशोर या नव-युवा अपने माता-पिता से सहायता नहीं लेते। वे स्वतंत्र और आत्म-निर्भर हो जाते हैं। जापानी विद्यार्थी बहुत मेहनती और निष्ठावान हैं, पर उनके पास समय की कमी होना हिंदी-शिक्षण के लिए एक चुनौती है। पढ़ाई के साथ-साथ उन्हें 'पार्ट टाइम' काम करना होता है। उन पर निरंतर समय की कमी का दबाव रहता है। कक्षा के अलावा उन्हें हिंदी का अभ्यास करने का पर्याप्त समय नहीं मिलता। डेढ़ घंटे की क्लास

में बोलचाल का बहुत अभ्यास नहीं हो पाता। लेखन-अभ्यास की कक्षा पर भी यह बात लागू होती है।

जापान में उपलब्ध उत्कृष्ट शिक्षण-सुविधाएं

हिंदी की भाषायी संरचना से जुड़ी कठिनाइयों और चुनौतियों से निपटने के लिए जापान में उपलब्ध शिक्षण-सुविधाएं तथा वहां के परिश्रमी शिक्षक अपने विद्यार्थियों के लिए बहुत मददगार साबित होते हैं। हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के दीर्घकालिक इतिहास के साथ-साथ यहां यह बात भी काबिले-गौर है कि अध्ययन-अध्यापन की विविध विधियों और तकनीकों को अपनाया जाता रहा है। मसलन, कक्षा में हिंदी-उच्चारण सिखाने के लिए विश्वविद्यालयों की भाषा-प्रयोगशालाओं में दृश्य-श्रव्य माध्यमों का भरपूर प्रयोग किया जाता रहा है। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध हिंदी फ़िल्मों के कैसेट और सी.डी. भी हिंदी-शिक्षण को मनोरंजक और रुचिकर बनाते थे। आज तो यू-ट्यूब पर हिंदी फ़िल्मों का जखीरा मौजूद है। कंप्यूटर या मोबाइल पर क्लिक करने भर की देर है कि विपुल और मनोरंजक सूचना-संसार सामने खुल जाता है। जापान के हिंदी-प्राध्यापक तथा विद्यार्थी इंटरनेट पर उपलब्ध उपयोगी सामग्री का चुनाव करके उसका सदुपयोग करते हैं। कुछ सामग्री 'फ्री' मिल जाती है और कुछ की ख़रीददारी करनी पड़ती है। जो भी हो, डिज़िटल रूप में उपलब्ध शब्दकोश व अन्य पाठ्य-सामग्री के कारण उनका रास्ता अपेक्षाकृत आसान हो गया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया जापान में हिंदी की नई संभावनाओं के द्वार खोल रहा है। ओसाका विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त कर चुकी हिंदी की यू-ट्यूबर सुश्री हितोमी मायो के कुछ 'पोस्ट' तो करोड़ों लोगों द्वारा पसंद किए जा चुके हैं। उनके द्वारा जापानी भाषा व संस्कृति संबंधी विषयों पर हिंदी भाषा में यू-ट्यूब पर कार्यक्रम प्रस्तुत करना जापान में हिंदी के बेहतर भविष्य तथा दोनों देशों के बीच के और भी मजबूत संबंधों को सुनिश्चित करने वाला घटनाक्रम कहा जा सकता है।

जापान में भाषा-शिक्षण की बहुविध विधियों की चर्चा के बीच हिंदी-शिक्षण के एक मनोरंजक और व्यावहारिक उपाय के रूप में शुरू की गई हिंदी-नाट्य-मंचन की परंपरा का भी ज़िक्र किया जाना चाहिए। इन पंक्तियों के लेखक ने ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ में अपनी प्रारंभिक शिक्षण-अवधि (1996-1994) के दौरान पाया कि जापानी विद्यार्थियों को लिपि-ज्ञान कराए जाने के बाद वे लिख तो लेते हैं, बोल नहीं

पाते। हां, जो विद्यार्थी एक साल या कुछ महीने भारत में रहकर हिंदी पढ़ते हैं, वे भारतीयों के बीच रहकर हिंदी बोलना शुरू कर देते हैं। कोई विद्यार्थी हो या कोई व्यवसायी-व्यापारी, व्यावहारिक जीवन-स्थितियों में बोलचाल के लिए विदेशी भाषा जल्दी और आसानी से सीख लेता है। पर सभी विद्यार्थियों को भारत जाने का अवसर नहीं मिलता। ऐसे में मुझे लगा कि कक्षा में विद्यार्थियों के बीच परस्पर कुछ संवाद बुलवाकर कुछ हद तक इसकी क्षतिपूर्ति की जा सकती है। विश्वविद्यालय के वार्षिक समारोह में अनेक विदेशी भाषाओं के नाटक मंचित किए जाने का पता चला तो इस सोच के अगले चरण के रूप में मेरे मन में हिंदी-नाट्य-मंचन का विचार आया। तत्कालीन शिक्षक-साथियों ने मेरे इस विचार का अनुमोदन किया तथा अनेक विद्यार्थियों ने इसमें रुचि दिखाई।

ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ में तीन दशक से हिंदी-नाट्य-मंचन की परंपरा चली आ रही है। जापान में सन 1994 में इस ठोस परंपरा का सूत्रपात हुआ। पर सन 1994 में महाकवि कालिदास के विश्वप्रसिद्ध नाटक ‹अभिज्ञान शाकुंतलम› के हिंदी रूपांतर को मंचित करने के साथ हिंदी-नाट्य-मंचन की परंपरा ने ठोस रूप ले लिया।

इस परंपरा के चलते रहने से जापान में हिंदी की पढ़ाई अधिक गतिशील, रुचिकर तथा व्यावहारिक रूप से कारगर हुई है।

जापान में हिंदी-शिक्षण पर भारत की स्थानीय स्थितियों का प्रभाव

बात कुछ अटपटी या अंतर्विरोधपूर्ण लगेगी, पर सच है कि विदेशों में हिंदी की स्थिति भारत की स्थानीय स्थितियों से भी प्रभावित-निर्धारित होती है। जापान में हिंदी की पढ़ाई में आने वाली बाधाओं और चुनौतियों में प्राथमिक चुनौती भारत व जापान की अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों से भी संबंधित है। भारत में बढ़ती महंगाई के अनुसार शिक्षा-बजट में वांछित बढ़ोतरी न होने तथा जापान में बजट में कटौती होने से हिंदी की पढ़ाई पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। दूसरे, भारत की आर्थिक प्रगति के दुधारे प्रभाव से भी इनकार नहीं किया जा सकता। ठोस उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जाएगी। सकारात्मक प्रभाव यह है कि भारत की आर्थिक प्रगति से एक ओर विदेशी अध्येताओं को भारत सरकार की ओर से प्रदत्त छात्रवृत्तियों, प्रकाशन-अनुदान तथा अन्य प्रकार के सहयोग में वृद्धि हुई है। इसके विपरीत यह भी सच है कि सब के सब विदेशी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति नहीं दी जा सकती। मुझे याद है कि दो-ढाई दशक पहले तक जापानी

विद्यार्थी जापान में 'पार्ट टाइम' काम करके इतना कमा लेते थे कि भारत में पढ़ाई और यात्रा करने आ सकते थे। परंतु हमारे देश में इस बीच हुई मुद्रा-स्फीति के कारण पूर्व व पश्चिम के विदेशी अध्येताओं के लिए अब यह उतना संभव नहीं रह गया है। जापान जैसे विकसित अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों में वर्षों पहले महंगाई चरम सीमा पर पहुंच गई थी। तब जापानियों को भारत बहुत सस्ता लगता था। भारत में जापानी विद्यार्थी अच्छे होटलों में रुक सकते थे, टैक्सियों में घूम सकते थे। जापानी छात्राएं महंगी-महंगी सिल्क साड़ियां ख़रीदकर ले जाती थीं। वर्तमान भारत की महंगाई अब विदेशी विद्यार्थियों को चिंतित करने वाली ही नहीं, बल्कि विदेशी पर्यटकों को भी हतोत्साहित करने वाली स्थिति में है। निष्कर्ष यही है कि जापानी शिक्षकों व विद्यार्थियों के लिए अपने ख़र्चे पर भारत में शोध, अध्ययन या यात्रा करना अब उतना सरल-सुकर नहीं रह गया है। इस कारण से जापानियों के लिए हिंदी के व्यावहारिक ज्ञान व उपयोग की संभावनाएं कम हो रही हैं।

भारत और जापान की आर्थिक स्थिति में आए बदलावों से जापान में हिंदी पुस्तकों की उपलब्धता भी प्रभावित हुई है। एक समय था जब तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ तथा ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ के पुस्तकालयों के लिए निर्धारित भाषावार समान बजट में अन्य विदेशी भाषाओं (अंग्रेज़ी, जर्मन, रूसी, फ्रेंच, पुर्तगीज़ आदि) की पुस्तकों की तुलना में हिंदी की अधिक पुस्तकें ख़रीदी जा सकती थीं। कारण था कि हिंदी की पुस्तकों का मूल्य पश्चिमी देशों की भाषाओं की पुस्तकों के मुकाबले बहुत कम होता था। मुझे याद है कि 1995-96 में ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ की लाइब्रेरी के हिंदी अनुभाग में जगह की कमी की समस्या पैदा हो गई थी। हिंदी-पुस्तकों, पत्रिकाओं, शब्दकोशों आदि से भरी कई-कई अलमारियों की उपस्थिति के कारण प्रोफ़ेसरों के कमरे किसी मिनी पुस्तकालय जैसे लगते हैं। विद्यार्थी भी भारत से पुस्तकें मंगवाने या भारत-प्रवास के दौरान बहुत सारी पुस्तकें ख़रीदने में समर्थ थे। अब स्थिति बदल चुकी है। भारत में प्रकाशित होने वाली पुस्तकें अब उतनी सस्ती नहीं रहीं। हालांकि पाठ्य-सामग्री की उपलब्धता के लिए आज इंटरनेट का खूब सदुपयोग हो रहा है, पर अभी तक यह किताबों का विकल्प नहीं बन पाया है।

आगामी समय में अर्थव्यवस्था से संबंधित एक अन्य प्रभाव इस रूप में भी पड़ सकता है कि विदेशी विश्वविद्यालयों को हिंदी के उत्कृष्ट देशज भाषाभाषी (नेटिव स्पीकर) प्राध्यापक मिलने में संभवतः कठिनाई होने लगे। भारत में शिक्षकों के वेतन का बेहतर

स्तर होने पर वे नौकरी, प्रतिनियुक्ति और विदेश-प्रवास के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित नहीं होंगे। पिछले लगभग डेढ़-दो दशक पहले तक हम भारतीय प्रतिनियुक्ति पर विदेश जाने के लिए बहुत लालायित रहते थे, पर अब वह स्थिति बदल चुकी है।

जापान में हिंदी के भविष्य को लेकर एक आशंका और बार-बार सिर उठाती है, जिसका संबंध भारत की भाषायी स्थिति और भाषा-नीति से है। किसी विदेशी द्वारा हिंदी में सवाल किए जाने पर हम लोग सामान्यतः अंग्रेज़ी में जवाब देने की अपनी बुरी आदत से मुक्त नहीं हो पाए हैं। यह बात रेखांकित करने योग्य है कि भारत में नौकरियों में भी अंग्रेज़ी का वर्चस्व होना जापान के अनेक हिंदी अध्येताओं के लिए निराशा का कारण बन जाता है। जापानी विद्यार्थी अंग्रेज़ी की ओर आकर्षित होने लगते हैं। केवल भारत की शिक्षा-व्यवस्था में ही नहीं, अंग्रेज़ी भाषा का वैश्विक वर्चस्व विदेशी विश्वविद्यालयों में भी हिंदी-शिक्षण के लिए एक चुनौती की तरह पेश आता है। जापान में हिंदी और मराठी की प्राध्यापिका सुश्री चिहिरो कोइसो का कहना है, "भारत से संबंधित कंपनियों में काम पाने के लिए हिंदी से ज़्यादा अंग्रेज़ी की आवश्यकता होती है। इसलिए ज़्यादातर विद्यार्थियों को हिंदी सीखने के साथ-साथ अंग्रेज़ी भी ज़ोर देकर पढ़नी पड़ती है और यह अंग्रेज़ी (भाषा) विद्यार्थियों की नज़र को अमरीका और यूरोप की ओर खींच ले जाती है।"[7] बेहतर रोज़गार पाने की दृष्टि से अंग्रेज़ी के अलावा विभिन्न यूरोपीय, चीनी तथा कोरियन आदि भाषाओं की पढ़ाई हिंदी की तुलना में अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। स्पष्ट है कि जो भाषाएं बेहतर करियर का आधार बन सकती हैं, उनकी ज़्यादा पूछ होती है। विश्वविद्यालय में दाखिले के लिए आयोजित उनकी प्रवेश-परीक्षा में सफल होना कठिनतर होता है। इन स्थितियों में कुछ जापानी युवा अपने मनपसंद चुनाव या अपनी इच्छा के कारण नहीं, बल्कि संयोगवश हिंदी के विद्यार्थी बन जाते हैं। ऐसे संयोग से हिंदी कोर्स में प्रविष्ट होने वाले छात्र-छात्राओं की अरुचि या थोपी गई रुचि भी जापान में हिंदी-शिक्षकों तथा हिंदी की पढ़ाई के सामने एक बड़ी चुनौती बन जाती है।

भारत में अंग्रेज़ी का वर्चस्व तो हिंदी के विदेशी अध्येताओं को हतोत्साहित करने वाला है ही, भारत के किसी विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रविष्ट विदेशी विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाने वाले अधिकतर भारतीय शिक्षकों का रवैया भी यथेष्ट रूप से सकारात्मक नहीं है। वे विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाने की योग्यता और प्रशिक्षण से वंचित हैं। "भारतीय विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों के कई शिक्षकों का गैर-पेशेवर तौर-तरीका"[8] जापानी

विद्यार्थियों को उपयुक्त व अनुकूल नहीं लगता। दूसरी समस्या यह है कि "विदेशियों को हिंदी सिखाने के लिए किसी भी उचित पद्धति और पाठ्यक्रम का अभाव है। जापानियों की भारत के हिंदी के अकादमिक संस्थानों से सामान्य शिकायत रहती है कि वे (शिक्षक) कक्षा में देर से आते हैं और अनुपस्थित होने की कोई पूर्व-सूचना नहीं देते हैं, जो कि जापान में एक अकल्पनीय बात है। ...हिंदी सिखाने के लिए किसी भी उचित मॉडल के अभाव में भारतीय शिक्षकों में हिंदी भाषा के बजाय सीधे हिंदी साहित्य पढ़ाने की प्रवृत्ति है जो विदेशियों को बहुत कठिन लगती है और बोलचाल की हिंदी सीखने में बिल्कुल भी मदद नहीं करती।"[9]

जापान में हिंदी भाषा का भविष्य इस पर निर्भर करेगा कि जापान की नई पीढ़ी भी हिंदी की प्रगति के लिए वहां की पुरानी पीढ़ी की तरह ही सक्रिय रहेगी या नहीं। तमाम चुनौतियों के बावजूद मैं इस संदर्भ में आशान्वित हूं। "सबसे अच्छी और आश्वस्तिदायक बात यह है कि जापान की नई पीढ़ी यहां की पुरानी पीढ़ी की तरह ही मेहनती और ईमानदार है। उसमें समयानुकूल काम आने वाला वैसा ही धैर्य और साहस भी है। वह भी दूरदर्शिता और नियोजन-क्षमता से लैस है।"[10] मुझे आशा है कि जापानियों के ये गुण जापान में हिंदी की प्रगति में निरंतरता बनाए रखने में सहायक होंगे।

अंत में निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि भारत और जापान के संबंधों के इतिहास और वर्तमान को देखते हुए जापान में भारतविद्या (इंडोलॉजी) और हिंदी भाषा के शिक्षण का भविष्य उज्ज्वल रहेगा। शर्त केवल इतनी-सी है कि भारतीयों द्वारा अंग्रेज़ीयत का मोह त्यागा जाए तथा भारत में जीवन के समस्त क्षेत्रों में हिंदी का भरपूर उपयोग और यथेष्ट सम्मान हो। तथास्तु!

संदर्भ

1. कतिपय विस्तार के लिए देखें : चिहिरो कोइसो–'जापान में हिंदी पढ़ने वालों की अभिप्रेरणा कैसे बढ़ानी चाहिए'–'जापान में हिंदी के पहरुए', संपादक : श्यामसुंदर पांडेय, हिदेआकी इशिदा प्रकाशक : आर. के. पब्लिकेशंस, मुंबई, 2023, (पृष्ठ 100-101)
2. ओसाका के सम्मेलन संबंधी सूचना के लिए देखें :- https://www.sfs.osaka-u.ac.jp/user/hindi/homepage/images/programme-ver3.pdf
3. कतिपय विस्तार के लिए देखें–पूर्णिमा बर्मन के संपादन में निकलने वाली वेब पत्रिका www.abhivyakti-hindi.org के 27-02-2012 के अंक में सुषम बेदी का आलेख 'जापान का हिंदी संसार'

4. सूचना के लिए देखें :- https://www.tufs.ac.jp/english/NEWS/2023/240213_1.html

5. हरजेन्द्र चौधरी–'हिंदी सीखने की कठिनाइयां : विदेशी संदर्भ'–'हिंदी भाषा स्वरूप, शिक्षण, वैश्विकता', संपादक : कमल किशोर गोयनका, महावीर सरन जैन, अवनिजेश अवस्थी, प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2015, (पृष्ठ 226)

6. तोमिओ मिज़ोकामि–'जापान की हिंदी नाटक-मंचन की परंपरा'–'भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ', संपादक : रवीन्द्र कालिया, प्रकाशक : हिंदी अनुभाग, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, 2012, (पृष्ठ 183)

7. चिहिरो कोइसो–'जापान में हिंदी पढ़ने वालों की अभिप्रेरणा कैसे बढ़ानी चाहिए'–'जापान में हिंदी के पहरुए', संपादक : श्यामसुंदर पांडेय, हिदेआकी इशिदा, प्रकाशक : आर. के. पब्लिकेशंस, मुंबई, 2023 (पृष्ठ 101)

8. सिद्धार्थ सिंह–'जापान में हिंदी की स्थिति, मूल्यांकन और संभावनाएं'–'जापान में हिंदी के पहरुए', संपादक : श्यामसुंदर पांडेय, हिदेआकी इशिदा, प्रकाशक : आर.के. पब्लिकेशंस, मुंबई, 2023 (पृष्ठ 34)

9. वही, (पृष्ठ 35)

10. 'जापान की बदलती छवियां: तब और अब'–हरजेन्द्र चौधरी 'सम्मेलन स्मारिका' संपादक: सुरेश ऋतुपर्ण, (पृष्ठ 141), तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़, तोक्यो, 2012, (पृष्ठ 141)

हरजेन्द्र चौधरी *कालेज ऑफ़ वोकेशनल स्टडीज (दिल्ली विश्वविद्यालय) से सेवा निवृत्त हिंदी प्रोफ़ेसर हैं, प्रख्यात हिंदी साहित्यकार हैं और चीन तथा पोलैंड के विश्वविद्यालय में अतिथि प्रोफ़ेसर रहे हैं। संपर्क: visproharosa@gmail.com*

डेनमार्क व स्कैंडिनेविया

अर्चना पेन्यूली

स्कैंडिनेविया उत्तरी यूरोप में स्थित एक ऐसा भौगोलिक-सांस्कृतिक क्षेत्र है, जिसमें मुख्य रूप से डेनमार्क, स्वीडन, नॉर्वे, और फ़िनलैंड जैसे देश शामिल हैं। स्कैंडिनेविया यूरोप के सबसे विकसित और सशक्त क्षेत्रों में से एक माना जाता है। इस क्षेत्र की भाषाएँ डेनिश, स्वीडिश, और नॉर्वेजियन प्रमुख हैं जो अपने-अपने देशों की आधिकारिक भाषाएँ हैं। अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन, अरबी भाषाओं का भी यहाँ प्रभाव है। हिंदी स्कैंडिनेविया में अन्य भाषाओं की तुलना में उतनी प्रतिष्ठित नहीं है परन्तु कई ऐसे संदर्भ हैं जहाँ स्कैंडिनेवियाई क्षेत्र में हिंदी की उपस्थिति दृष्टिगत होती है:

आप्रवासी समुदाय: स्कैंडिनेविया में हिंदी की स्थिति विशेष रूप से उन भारतीय प्रवासी समुदायों के माध्यम से प्रमुख है, जो यहां निवास कर रहे हैं। इस प्रदेश में भारतवासियों का आना साठ के दशक से शुरू हो गया था। सन दो हज़ार के बाद ग्लोबलाइजेशन की वजह से मल्टीनेशनल कम्पनियों, विशेषकर आईटी फील्ड, में इंडियन एक्सपर्ट की यहाँ बहार सी आई। 2000 से 2024, यानी पिछले दो दशकों में भारतीयों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। आज भारतीय समुदाय अन्य समुदायों की तुलना में सबसे अधिक संख्या में बढ़ रहा है। मगर भारत तो एक बहुभाषी देश है। विदेशों में जीविका की तलाश में जाने वाले सभी हिंदी भाषी नहीं होते। गुजराती, पंजाबी, बंगाली, मराठी, तेलगू, तमिल, मलयालम, आदि भाषी भी होते हैं फिर भी हिंदी भाषी सबसे अधिक हैं। और अन्य भाषाभाषी भी हिंदी से अछूते नहीं हैं।

यदि हम पिछले छह दशकों में स्कैंडेनेविया में हिंदी की स्थिति पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि यह एक सी नहीं है। स्थिति बनती और बिगड़ती रही है। हिंदी का बीता हुआ कल आज के दौर से कई मायनों में बेहतर था। भारत में लोग आमतौर पर हिंदी

माध्यम स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करते थे। हिंदी के पाठक और प्रेमी थे। लोगबाग हिंदी में बातचीत करते थे। हिंदी अख़बार, पत्रिकाएँ और पुस्तकें खरीदते-पढ़ते थे। मुंशी प्रेमचन्द, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, फणीश्वरनाथ रेणू जैसे महान साहित्यकारों के साहित्य को पढ़ने-जीने वाली पीढ़ी जब अपने भारत से दूसरों मुल्कों में आकर बसी तो हिंदी उनके तन-मन में बसी थी। गौरतलब है साठ से अस्सी के दशक में उत्तरी भारत के किसी भी प्रांत से आये सभी भारतीयों की संतानें धाराप्रवाह हिंदी बोलती हैं। उस पीढ़ी के अभिभावकों में यह भावना व चेष्टा थी कि उनके बच्चे अपनी मातृभाषा अवश्य सीखें। जैसे भी अवसर उन्हें उपलब्ध हुए, उन्होंने अपने बच्चों को हिंदी बोलने-सीखने के लिये प्रेरित किया। नतीजतन उनकी संतानें, जो अब प्रौढ़ आयु की हैं, धाराप्रवाह हिंदी बोलने में सक्षम हैं। मगर आज की पीढ़ी जो भारत से विदेशों का रुख कर रही है उनमें हिंदी के प्रति रुझान कम है। वैश्वीकरण से व्यावसायिक सोच अन्य मुद्दों पर हावी हो गई। राष्ट्रवाद, भाषा की अस्मिता, अपनी पहचान जैसे भावनात्मक उद्वेग क्षीण हुए है। भौतिक उद्देश्य, उपयोगिता हमारे हर उद्योग का प्रेरक बन गया। सो उनके बच्चों में हिंदी जानने-बोलने की प्रवृत्ति का ह्रास हुआ। हिंदी के लिए यह शुभ समाचार नहीं है कि डेनमार्क में कम्पयून (म्युनिसिपेलिटी) की तरफ से बच्चों के लिए हिंदी में चलने वाला स्कूल बंद हो गया है। भारतीय स्टोरों में पहले जो हिंदी पत्रिकाएं बिकती थीं, वे धीरे-धीरे बंद हो गई हैं। भारत से पोस्ट द्वारा हिंदी पत्रिकाएं मंगाना भी करीब-करीब बंद हो गया है।

मगर सारी स्थिति निराशाजनक नहीं है। बॉलीवुड हिंदी गीत और फ़िल्मों के प्रति देशी-विदेशियों का चाव सतत बना हुआ है। कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग यदि सुप्त हुए तो कुछ में अधिक सक्रिय भी हुए। कम्यून में हिंदी शिक्षण बंद हुआ तो कुछ सामुदायिक और अकादमिक संस्थानों में हिंदी कक्षाएं शुरू भी हुई। भारतीय आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं का प्रभाव बढ़ने से भी अपरोक्ष रूप से हिंदी का प्रभाव बढ़ा।

स्कैंडेनेविया में हिंदी के परिदृश्य को मोटे-मोटे तौर में चार भागों में बाँट सकते है: सामाजिक परिदृश्य, शैक्षिक परिदृश्य, डिजिटल परिदृश्य, साहित्यिक परिदृश्य।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य पर हिंदी

भारत एक विशाल देश है। विश्व भर में इसकी संस्कृति-सभ्यता की अनुगूँज है। भाषा संस्कृति की अभिव्यक्ति है। हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा ही नहीं, हमारी संस्कृति और

परम्पराओं की संवाहिका भी है। इसलिए हिंदी की अनदेखी नहीं की जा सकती। भाषा किसी मंच की मोहताज भी नहीं। अगर उसमें अपना बल, प्रभाव और सामर्थ्य हो तो हवा के मानिंद कोनो-कोनो में स्वतः घुस जाती है।

भारतीय बड़ी संख्या में दूसरे देशों में प्रवासित होते हैं। आज विश्व के कोने-कोने में भारतीय बसे हैं। भारतीय सांस्कृतिक विरासत इतनी ताकतवर है कि इसको एकाएक झटक देना मुमकिन नहीं। सो, अपनी जमीन से हजारों किलोमीटर दूर बैठकर भी हिन्दुस्तानी अपने भारतीय रीतिरिवाजों और परम्पराओं से जुड़े रहते हैं। अपने परिवार में, निकट संबंधियों में या इष्ट-मित्रों से हिंदी भाषा में ही संवाद करते हैं और उनकी बातचीत में हिंदी भाषा अहम रहती है। उनके सारे धर्मकांड संस्कृत-हिंदी में होते हैं।

भारत अपनी विशालता और विशिष्टताओं से कई कारणों से विश्व में अपनी उपस्थिति बनाए रखता है। हिंदी के प्रति लोगों का अगर सीधा रुझान नहीं भी हो तो भी हिंदी फिल्मों, भारतीय आध्यात्म, योग, दर्शन, धर्म, संगीत, नृत्य-नाट्य, भोजन एंव भारतीय संस्कृति के प्रति लोगों के रुझान ने हिंदी को अपरोक्ष रूप से बढ़ावा दिया है। सो, अगर हिंदी के स्वरूप को एक विस्तृत रूप में परखे तो स्कैंडेनेविया में हिंदी का एक परिवेश अवश्य नजर आता है।

यहाँ कई भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक संस्थाएं हैं। इन संस्थाओं के क्रियाकलाप हिंदी के वैश्विक प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाते हैं। हिंदी सिनेमा एवं संगीत का योगदान भी उल्लेखनीय है। बॉलीवुड फिल्में हिंदी को लोकप्रिय बनाती हैं। स्कैंडेनेविया में बॉलीवुड की फिल्मों को मल्टीप्लेक्स में रिलीज़ नहीं किया जाता है, लेकिन अभी भी छोटे सिनेमाघर हैं जो नई बॉलीवुड रिलीज फिल्में दिखाते हैं जोकि यहाँ रहने वाले भारतीयों के अलावा बहुत से स्थानीय लोगों द्वारा भी देखी जाती हैं। फ़िल्में अंग्रेज़ी उपशीर्षक के साथ दिखायी जाती हैं।

आए दिन आयोजित होते भारतीय धार्मिक, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिंदी का प्रभाव देखने को मिलता है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि विदेशों में रह रहे भारतवंशियों की जीवन संस्कृति में हिंदी रची-बसी है। उनके संवाद, सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्रियाकलाप, तीज-त्योहार, पूजा-पाठ, राष्ट्रीय दिवस आदि हिंदी का एक बिखरा परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं। कई भारतीय कहते हैं कि दिन भर वे चाहे कितनी ही डेनिश-स्वीडिश-अंग्रेज़ी में बतिया लें लेकिन जब तक अपने किसी भारतीय से जी भर हिंदी में बात न कर लें तब तक उनका मन नहीं मानता। अपनी मातृभाषा, जिसमें हम

पलते-बढ़ते हैं, से हमारा भावनात्मक जुड़ाव होता है। अपने विचार और भावनाएं हम सबसे प्रभावी तरीके से अपनी मातृभाषा में ही व्यक्त कर सकते हैं। बच्चे के सामाजिक, नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास में भी मातृभाषा की केंद्रीय भूमिका हो।

हिंदी–शैक्षिक एवं अकादमिक परिप्रेक्ष्य पर

सामाजिक क्रियाकलापों एवं सांस्कृतिक गतिविधियां निस्संदेह हिंदी विकास में सहायक हैं। अगर अनौपचारिक स्तर से हट कर औपचारिक स्तर पर स्कैंडेनेविया में हिंदी का विश्लेषण करें तो हिंदी निम्न स्तरों पर हैं :-

1. स्थानीय लेंगुएज स्कूलों में हिंदी शिक्षण
2. भारतीय सामुदायिक संगठनों एवं सांस्कृतिक केन्द्रों में हिंदी शिक्षण
3. विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी

भाषा सीखना और शिक्षा: स्कैंडिनेविया में कुछ शैक्षणिक संस्थान मुख्य रूप से अपने भाषा कार्यक्रमों के तहत हिंदी में पाठ्यक्रम भी प्रदान करते हैं। ये पाठ्यक्रम भारतीय संस्कृति, दर्शन, भोजन, आध्यात्म में रुचि रखने वाले या भारत में आने या काम करने की योजना बनाने वाले छात्रों को आकर्षित करते हैं।

डेनमार्क के प्रतिष्ठित लेंगुएज स्कूल, स्टूडियो स्कोलन में विश्व की तमाम भाषाओं–चीनी, जापानी, अरबी, स्पेनिश, फ्रेंच आदि भाषाओं के कोर्स नियमित चलाए जाते हैं। , हिंदी के कोर्स की भी वहाँ व्यवस्था है। शिक्षार्थियों की आवश्यकतानुसार हिंदी के पाठ्यक्रम तैयार किये जाते हैं बिगनर्स, एडवांस, विभिन्न स्तरों पर हिंदी सिखाई जाती है।

अन्य स्थानों पर भी हिंदी सीखने की व्यवस्था है। एफ़ओएफ़ डेनमार्क में सार्वजनिक सूचना का सबसे बड़ा प्रदाता है। उनकी वेबसाईट (https://www.fof.dk/da/kbh/kurser/sprog/hindi) पर लिखा है:

''नमस्ते! क्या आप हिंदी सीखना चाहते हैं? कोपेनहेगन-के में शाम के स्कूल में हिंदी में कोर्स करें।

हिंदी भारत की आधिकारिक भाषा है और दुनिया में चौथी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। हिंदी में केवल कुछ वाक्यांशों को जानने से सांस्कृतिक द्वार खुल सकते हैं और आपको सबसे अप्रत्याशित और दिल को छू लेने वाले अनुभव मिल सकते

हैं। हम रोजमर्रा की बोली जाने वाली भाषा और बुनियादी उपकरणों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, ताकि पाठ्यक्रम के बाद आपको बुनियादी शब्दों और वाक्य निर्माण का ज्ञान हो। इस प्रकार आप हिंदी में अपना परिचय देने और एक बुनियादी बातचीत करने में सक्षम होंगे।"

स्कैन्डिनेविया के इंटरनेशनल बोर्ड–आई.जी.सी.एस.ई. एवं आई.बी. में भाषाओं के अंतर्गत हिंदी भी एक वैकल्पिक भाषा विषय है। कितने छात्र हिंदी चुनते हैं, यह एक अलग मुद्दा है। डेनिश हाईस्कूलों में स्पेनिश, जर्मन, अरबी, चीनी की तरह हिंदी एक वैकल्पिक भाषा नहीं बन पाई है।

डेनमार्क में दो विश्वविद्यालयों–आरहुस यूनीवर्सिटी एवं कोपनहेगन यूनिवर्सिटी में हिंदी शिक्षण हो रहा है। स्वीडन की **उप्साला** यूनीवर्सिटी में और नार्वे की ओस्लो यूनिवर्सिटी में हिंदी शिक्षण जारी है, हालांकि गत दो वर्षों में छात्रों की संख्या घटी है।

इन विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण भाषा विज्ञान, साहित्य, संस्कृति, इंडोलॉजी, और दक्षिण एशियाई स्टडीज़ के माध्यम से होता है। एसोसिएट प्रोफ़ेसर विवेक शुक्ला आरहुस यूनिवर्सिटी के 'स्कूल ऑफ़ कल्चर एंड सोसाइटी–इंडिया एंड साउथ एशिया स्टडीज' विभाग में विगत नौ वर्षों से हिंदी अध्यापन में सलंग्न हैं। उनसे प्राप्त जानकारी के अनुसार आरहुस यूनिवर्सिटी में इंडोलॉजी विभाग 1980 से सक्रिय है, कालान्तर में वह मॉडर्न साउथ एशिया स्टडीज में तब्दील हुआ, और 2016 से उसे 'इंडिया एंड साउथ एशिया स्टडीज' कहा जाने लगा है। 'इंडिया एंड साउथ एशिया स्टडीज़' में बी.ए. प्रोग्राम चार वर्ष का है, जिसमें मुख्य रूप से इंडिया के बारे में पढ़ाया जाता है। अन्य साउथ एशियन देशों की भी जानकारी दी जाती है। पहले पाठ्यक्रम में सिर्फ़ संस्कृत, हिंदी और दर्शन सम्बन्धित विषय ही पढ़ाये जाते हैं। अब मिक्स्ड पैकेज हैं जिसमें हिंदी के अलावा, एंथ्रोपोलॉजी, धर्म एवं इतिहास–सोसाइटी एंड कल्चर पढ़ायें जाते हैं। भारत में जाति प्रथा, दलित विमर्श एंव स्त्री अधिकार आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला जाता है। भारतीय भाषाओं में विभाग केवल हिंदी का ही है। अगर किसी छात्र को भारत की अन्य भाषाएँ–तमिल, मलयालम वगैरह पढ़ने में रुचि है तो विभाग उसकी व्यवस्था करता है। भारत जाकर भाषा विशेष को सीखने का भी प्रवाधान है। वर्तमान में तीन अध्यापक वहाँ कार्यरत हैं। डॉ विवेक शुक्ला के अलावा एसोसिएट प्रोफ़ेसर उवे स्कोडा वहाँ 10-12 सालों से एंथ्रोपोलॉजी, धर्म और धर्मशास्त्र विषय पढ़ाते हैं। छह वर्ष पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर गौरी पाठक समाज से सम्बन्धित कोर्स पढ़ाने के लिए नियुक्त हुई हैं। एक हिंदी इन्टर्न की

भी व्यवस्था है। डॉ शुक्ला कहते हैं, 'अफ़सोस है इंडोलोजी से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों में पिछले तीन-चार सालों में पूरे यूरोप में गिरावट आई है। इसकी बहुत सारी वजहें हो सकती हैं। शुरू में हमें लगा था कि शायद यह कोविड की वजह से है। मगर हालात यह है कि छात्रों की संख्या हर जगह लगातार कम हो रही है। जहाँ पचास छात्र थे, वहाँ बीस रह गये हैं, जहाँ बीस थे वहाँ दस रह गए हैं, जहाँ दस थे, वहाँ दो हो गये हैं। '

कोपनहेगन यूनिवर्सिटी में हिंदी शिक्षण कर रहें एल्मार रेनर से भी मेरी बातचीत होती रहती है। चार वर्ष पूर्व 2019 में उन्होंने बताया था कि कोपनहेगन विश्वविद्यालय के न्यू इंडोलॉजी अथवा माडर्न इंडिया स्टडीज डिपार्टमेंट में कुल पन्द्रह विद्यार्थी हैं। अभी हाल में जब मेरी उनसे बात हुई तो वे पहले वाक्य में ही मुझसे गुजारिश करने लगे कि मैं हिंदी का विज्ञापन करूं और छात्रों को हिंदी भाषा की तरफ आकर्षित करूं। अगस्त 2024 के सत्र के लिए मात्र एक छात्र बी ए के प्रथम वर्ष में हिंदी के लिए एनरोल हुआ है। पहले वे सोचते थे कोरोना की वजह से शैक्षणिक सत्र में कोपनहेगन विश्विद्यालय के 'न्यू इंडोलॉजी' डिपार्टमेंट में विद्यार्थियों की संख्या घटी है। कारण, अध्ययन के दौरान भारत यात्रा छात्रों के लिए एक आकर्षक केंद्रबिंदु रहती है। भारत यात्रा के दौरान वे भारत की भौगोलिक और सामाजिक स्थिति, संस्कृति आदि से परिचित होते हैं। इस कोरोना काल में, भारत यात्रा की बंदिश के कारण छात्रों में हिंदी के प्रति रुचि कम हो गई थी, मगर अब कोरोना संकट भी हट गया है। फिर भी हिंदी के लिए छात्र नहीं मिल रहे हैं।

डिजिटल परिदृश्य

हिंदी सीखने के लिए आज कई डिजिटल वेबसाइट्स और ऑनलाइन ट्यूटर्स (Tutors) हैं। कई विदेशी भी इंटरनेट के माध्यम से हिंदी सीख रहे हैं। सोशल मीडिया: फ़ेसबुक, व्हात्सप्प, ट्वीटर पर हिंदी छाई है। इंटरनेट, ब्लॉग्स, वेबसाईट, ईबुक्स। वैश्विक गोष्ठी: वेबीनार, जूमवार्ता, जूमगोष्ठी, टीम-मीट भी हिंदी का प्रभाव ग्लोबल स्तर पर बढ़ा रहे हैं।

साहित्यिक परिदृश्य

देश-विदेश में बिखरे हिंदी के प्रवासी साहित्यकार विदेशों में हिंदी का बिगुल बजा रहे हैं। प्रवासी साहित्य, हिंदी साहित्य के उत्तर आधुनिक काल का एक बदलाव बिंदु (Turning Point) है। स्कैंडेनेविया भी साहित्य के इस वैश्वीकरण से अछूता नहीं है। यहाँ

से भी हिंदी में साहित्य सर्जन हो रहा है। डेनिश, नार्वेजियन कृतियों का हिंदी में अनुवाद हुआ है।

मगर स्कैन्डिनेविया में हिंदी साहित्य पढ़ने वालों की संख्या बहुत कम हैं, और जो पढ़ते हैं, सीधे अमेज़न से पुस्तकें खरीद लेते हैं। डेनमार्क पुस्तकालयों का देश माना जाता है। अफ़सोसजनक, यहाँ के पुस्तकालयों में हिंदी पुस्तकें नहीं हैं, जबकि उर्दू, पंजाबी, और बांग्ला पुस्तकें हैं। बॉलीवुड फिल्मों के सीडी और कैसेट्स भी हैं। वहाँ के स्टाफ़ का कहना है कि हिंदी पुस्तकों की मांग नहीं आती, लिहाजा वे रखते नहीं हैं।

चुनौतियाँ एवं संभावनाएं:

स्कैंडिनेविया में हिंदी के प्रयोग और प्रचार की कई चुनौतियाँ हैं। स्थानीय भाषाओं की प्रमुखता और अंग्रेज़ी के प्रभाव के कारण हिंदी को स्कैंडिनेवियाई समाज में लोकप्रिय बनाना चुनौतीपूर्ण है। हिंदी के उपयोग को बढ़ाने के लिए संसाधनों और पाठ्यक्रमों की कमी भी है। हिंदी के प्रति रुचि और उपयोग स्कैंडिनेवियाई समाज में अधिकांश लोगों तक पहुंच नहीं पहुंचती है। स्कैंडिनेविया में हिंदी की स्थिति और संरक्षण के लिए प्रतिष्ठित संस्थान या योजना नहीं है, जिससे इसे बढ़ावा मिल सके। हालांकि भारतीय संस्कृति के अध्ययन का महत्व है, मगर हिंदी का ज्ञान केवल सांस्कृतिक और व्यक्तिगत हित तक ही सीमित है। किसी भाषा की व्यापकता के लिए उसका संरचनात्मक उपयोग और महत्व सिद्ध होना बहुत ज़रूरी है। अर्थात् उसके पास शिक्षा, शासन, रोजगार, लोकरुचि–किसी न किसी का संबल होना चाहिए। स्केंडेनेवियाई क्षेत्र में हिंदी विश्व के बहुत बड़े जनसमूह की भाषा होने की पहचान तो रखती है मगर रोज़ाना की ज़रूरत नहीं बन पाई।

उप्साला विश्वविद्यालय, स्वीडन के भाषाविज्ञान और दर्शनशास्त्र विभाग के प्रोफ़ेसर हाइन्स वार्नर वेसलर के नेतृत्व में छात्र हिंदी भाषा के साथ भारत के सांस्कृतिक इतिहास, धर्म और समाज का भी अध्ययन करते हैं। उनका कहना है: ‹पहला संस्कृत शिक्षण इस विश्वविद्यालय में 1838 में शुरू हुआ था। मेरी पृष्ठभूमि क्लासिकल इंडोलोजी है, लेकिन कई वर्षों से मेरा व्यक्तिगत ध्यान हिंदी और उर्दू भाषा पर है। सबसे बड़ी चुनौती हिंदी शिक्षण में यह है कि इसमें रोजगार की सम्भावनाएं बहुत कम हैं। चीनी में छात्रों की संख्या बहुत ज़्यादा है... चीनी ज़ुबान के साथ नौकरी का एक बाज़ार है। हिंदी के साथ ऐसा कुछ नहीं है। विदेशी छात्र प्रेरित नहीं होते हिंदी अध्ययन के लिए। डॉ विवेक शुक्ला का कहना है: “जितने प्रयास विदेशी भाषाओं, जैसे जापानी, चीनी, आदि में हो रहे हैं, उतने हिंदी को लेकर नहीं हो रहे हैं। भारत सरकार की हिंदी को लेकर ढंग की पॉलिसी

नहीं है। एम्बेसी छोटे-मोटे कार्यक्रम आयोजित करती हैं। हिंदी स्कूल कॉलेज तक पहुंचे, उसके लिए समुचित प्रयास नहीं हो रहे हैं। जैसे यहाँ स्कूलों में जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, अरबी और चाईनीज भाषाएँ एक वैकल्पिक भाषा के रूप में पेश होती है, ऐसे ही हिंदी भी होनी चाहिए। संस्थाए और सरकार भारतीय भाषाओं पर कार्यक्रम, जैसे भारतीय भाषाएँ दिवस आयोजित करें। एक मुहिम चलाए, जिससे व्यापारिक और सामाजिक माध्यमों में इसकी मांग बढ़े।"

निस्संदेह, अंग्रेज़ी, जापानी, चीनी, अरबी, जर्मन, फ्रांसीसी भाषाओं का प्रचार-तंत्र एक बड़ी लॉबी, एक इंडस्ट्री की तरह काम करता है। हिंदी की अभी उतनी बड़ी व संगठित लॉबी नहीं है जितनी इन भाषाओं की हैं। हिंदी भाषा सेवा विशेषज्ञों के द्वारा दुनिया भर में हिंदी के वैश्वीकरण और अंतर-सांस्कृतिक आदान-प्रदान को और अधिक प्रचारित करने के लिए सरकार और संस्थाओं को ठोस कदम उठाने चाहिए। देश में भारतीयों का भी कुछ दायित्व है। हिंदी भाषियों को हिंदी को उपयुक्त स्थान देने की आवश्यकता है। गैर हिंदी भाषी लोगों को भी हिंदी की व्यापकता को देखते हुए हिंदी को देश की संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने में आगे बढ़ना चाहिए। हिंदी को लेकर की जाने वाली राजनीति का भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे भी देश को निकलना होगा।

हिंदी की साहित्यिक रचनाओं का विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो। पिछले वर्ष, डेजी रॉकवेल द्वारा गीतांजलिश्री की अनूदित कहानी 'रेत समाधि' को बुकर्स प्राइज मिला है। इससे पहले भी बहुत बेहतरीन हिंदी उपन्यास लिखे गए, मगर उनका विदेशी भाषाओं में अनुवाद नहीं हो पाया है।

चुनौतियों के बावजूद, स्कैंडिनेविया में हिंदी के विकास की कई संभावनाएं हैं। विशेष रूप से, हिंदी का भारतीय संस्कृति, अध्यात्म के प्रसार, व्यापारिक संबंधों और पर्यटन के क्षेत्रों में उपयोग बढ़ सकता है। इसके अतिरिक्त, शैक्षिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी को बढ़ावा दिया जा सकता है।

अपनी विशिष्ट लिपि, समृद्ध शब्दकोश, विभिन्न प्रयुक्तियों और व्याकरण के बल पर हिंदी भाषा के रूप में एक सम्पन्न भाषा है। फैलाव की दृष्टि से हिंदी विश्व के दूसरे सर्वाधिक आबादी वाले देश की प्रमुख भाषा है। विदेशों में इसकी उपस्थिति है। अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत का प्रतिनिधित्व करने की अगर किसी भाषा में क्षमता है तो वह हिंदी ही है।

हिंदी की जीवंतता का रहस्य उसकी व्यापकता में है। हिंदी के अस्तित्व और महत्व को नकारा नहीं जा सकता, विशेषकर आने वाले दिनों में। हिन्दुस्तान एक विशाल देश है जिसमें गूढ़ संस्कृति-परंपराएं हैं। इसको समझने के लिए भाषा एक प्रमुख माध्यम है।

अगर हम हिंदी विकास परियोजनाओं पर समुचित ध्यान दें तो आने वाले वर्षों में हिंदी की एक लहर दुनिया में देखने को मिल सकती है। प्रधानमंत्री मोदी ने जिस तरह से विश्व में योग का बोलबाला किया है, आशा है उनके नेतृत्व में हिंदी के भी यथोचित प्रसार का वातावरण बनेगा। मोदी सरकार अपने देश में राजभाषा हिंदी को समुचित महत्व देगी। दुनिया में हिंदी का परचम लहराए, इससे पहले हिंदी को अपने देश, भारतवर्ष में बुलंद करना ज़रूरी है।

आभार

1. डॉ. हाइंस रेनर (उप्साला यूनीवर्सिटी, स्वीडन), डॉ विवेक शुक्ला (आरहुस यूनिवर्सिटी, डेनमार्क)
2. डॉ. एल्मार रेनर (कोपनहेगन यूनीवर्सिटी, डेनमार्क), सरोजिनी नौटियाल साहित्यकार एवं प्रिंसिपल (अवकाश प्राप्त), राजकीय बालिका इंटर कॉलेज, चम्बा, भारत

अर्चना पेन्यूली *डेनमार्क निवासी प्रख्यात प्रवासी हिंदी साहित्यकार हैं और डेनमार्क में विविध स्तरों पर हिंदी अध्यापन और हिंदी प्रचार–प्रसार से जुड़ी हुई सक्रिय हिंदी सेवी हैं। संपर्क: apainuly@gmail.com*

दक्षिण अफ़्रीका

सुनंदा वर्मा

उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार दक्षिण अफ़्रीका में बसे हुए भारतीयों की संख्या आज सभी अफ़्रीकी देशों की तुलना में सबसे अधिक है। डरबन दक्षिण अफ़्रीका के क्वज़ूलू नेटान प्रॉविंस का सबसे बड़ा शहर है और बताया जाता है कि भारतीयों की आबादी की संख्या देखते हुए यह विश्व का भारतीयों का सबसे बड़ा नगर है। वर्ष 2014 में पति के साथ दक्षिण अफ़्रीका में मुझे दो साल रहने का अवसर मिला। हम लोग जोहैनेसबर्ग पहुंचे ही थे जब पिता डॉ विमलेश कान्ति वर्मा ने एक ई-न्योता फॉर्वर्ड किया। न्योता हिंदी दिवस के आयोजन का था। हिंदी दिवस के साथ हिंदी शिक्षा संध की मासिक ई पत्रिका 'हिंदी खबर' की पहली सालगिरह भी मनाई जा रही थी। हम सपरिवार आयोजन में शामिल हुए। आयोजन में हर उम्र के लोग थे। रंगारंग कार्यक्रम हो रहा था। हिंदी की कविताएं, गाने सुनाए जा रहे थे। हिंदी गानों पर लड़कियां नाच रही थीं। इस आयोजन से लगा जैसे भारत से दक्षिण अफ़्रीका की लगभग 8,250 किलोमीटर दूरी को हिंदी ने पाट दिया है। यहीं पहली बार दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी से जुड़े और हिंदी के लिए काम कर रहे लोगों से परिचय हुआ। हाउटेंग प्रॉविंस में हिंदी शिक्षा संघ के क्षेत्रीय निदेशक हीरालाल शिवनाथ और विरजानन्द बुदलू गरीब भाई से मिलकर लगा ही नहीं जैसे पहली बार मिल रहे हों। दक्षिण अफ़्रीका के आवास में यह देखने का मौका मिला कि वहां बसे भारतीयों की पहली, दूसरी और अब तीसरी पीढ़ी के लोग हिंदी को डेढ़ सौ साल से अधिक समय से कैसे बचाए और संभाले हुए हैं। इन बीते सालों में दक्षिण अफ़्रीका के भारतीयों ने गिरमिट जीवन के कष्ट झेले, संघर्ष किया, विपरीत परिस्थितियों का सामना किया लेकिन अपनी भाषा और संस्कृति को संजोए रखा। हिंदी की स्थिति समझने के लिए मैंने हिंदी से जुड़े लोगों का साक्षात्कार लेना चाहा। एक को छोड़ सभी ने मेरा आग्रह स्वीकार किया। कुछ मेरे घर आए और कुछ ने अपने घर बुलाकर साक्षात्कार

तो दिया ही, स्वादिष्ट भोजन भी खिलाया। दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के कल, आज और कल की स्थिति पर विस्तृत चर्चा हुई।

कल

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के बीज उन भारतीयों ने बोये जो नेटाल क्षेत्र के गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाए गए थे। 1860 में नेटाल में गन्ने के खेतों में काम करने वालों की कमी हो गई थी। स्थानीय ज़ूलू लोगों को काम पर रखा तो गया लेकिन बात बनी नहीं। ज़ूलू अपने आदिवासी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर से थे और इस तरह की कड़ी मेहनत वाले काम करने की उन्हें न इच्छा थी न आवश्यकता। केप कॉलोनी के गवर्नर, सर जॉर्ज ग्रे ने देखा था कि मॉरीशस के गन्ने के खेतों में भारतीय अनुबंधित श्रमिकों का काम अच्छा रहा था। उन्होंने नेटाल के खेतों में भी भारतीय अनुबंधित श्रमिकों को लाने का सुझाव दिया। नेटाल खेतों के मालिक तैयार हो गए। 'टूटो' नाम का जहाज़ 12 अक्तूबर 1860 को मद्रास के बंदरगाह से चल कर 16 नवम्बर 1860 को दक्षिण अफ़्रीका के उस समय पोर्ट-नेटाल कहलाने वाले, और आज के डरबन शहर पहुंचा। जहाज़ में 342 भारतीय थे। दस दिन बाद भारतीयों का दूसरा जहाज़ दक्षिण अफ़्रीका पहुंचा। 'एसएस बेलवडेयर' कलकत्ता से 4 अक्टूबर 1860 को चलकर 26 नवंबर को डरबन पहुंचा। उसमें 310 यात्री थे। 1911 तक भारतीय गिरमिटिया मजदूर मद्रास, बॉम्बे और कलकत्ता से एक सुनहरे भविष्य के सपने के साथ दक्षिण अफ़्रीका इसी तरह आते रहे। दक्षिण भारत के गिरमिटिया मजदूर तमिल, तेलुगु बोलते थे और उत्तर भारत से गये अवधी और भोजपुरी बोलते थे। आने वालों में अधिकांश ऐजेंटों के बहलाने-फुसलाने और उनकी मनगढ़ंत बातों को सच मानकर धोखे में आने वाले थे। पचास वर्षों में इन भारतीयों की संख्या लगभग दो लाख हो गई (बाद में कोयले की खदानों में और रेल की पटरियां बिछाने का काम भी इन्होंने ही किया)। अब तमिल, तेलुगु अवधी और भोजपुरी के साथ इनमें अन्य भारतीय भाषाएं जैसे गुजराती, कन्नड़, मलयालम बोलने वाले भी दक्षिण अफ़्रीका में जुड़ गए। सभी नए देश, परिवेश में, अपनों से बहुत दूर, गिरमिट जीवन के संघर्षों का सामना कर रहे थे। भारत में भले ही वह ख़ुद को किसी एक प्रांत या भारतीय भाषा से जोड़ते हों, दक्षिण अफ़्रीका में सब भारतीय थे, एक थे। वैसे तो संकेत और संदर्भ से तमिल, तेलुगू भाषी भोजपुरी और अवधि भाषियों से बात कर ही लेते थे लेकिन एक भाषा बोलने की बात अलग होती है। भाषा लोगों को निकट लाती है, विश्वास जगाती है, दूर देश में अपनों का एहसास दिलाती है, शक्ति देती है, इसीलिए नए देश में लोग सबसे पहले अपनी भाषा बोलने वालों को

ढूंढ़ते हैं। दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों ने आपस में बात करने के लिए हिंदी को चुना। भवानीदयाल सन्यासी ने अपने ग्रन्थ 'प्रवासी की आत्मकथा' में बहुत रोचक तरीके से बताया है कि क्यों और कैसे गिरमिटियों ने हिंदी भाषा को अपनी भाषा चुना जबकि तमिल और तेलुगु भाषी संख्या में कहीं अधिक थे।

> *"गिरमिटियों की गांठ में तो बँधे थे केवल हिंदी-भाषी और मद्रासी। उनके पीछे-पीछे गुजराती, तथा कुछ अन्य प्रान्त-वासी भी व्यवसाय के विचार से स्वतंत्ररुपेण वहाँ जा पहुँचे। इस प्रकार हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रान्तों के मनुष्यों का वहाँ जमाव हो गया। उनमें कोई हिंदी बोलता था तो कोई गुजराती, किसी की बोली तमिल थी तो किसी की तेलगु, कुछ मलयालम-भाषी थे तो कुछ कन्नड़-भाषी। एक दूसरे की बोली समझ नहीं पाते थे। इससे काम-काज में बड़ी अड़चन होने लगी, कब तक पड़ोसी के सामने मौन साधे रहते, कहाँ तक इशारे से काम किया करते? यह स्थिति तो बड़ी अवांछनीय थी। आपस में बातचीन करने के लिए एक सार्वजनिक भाषा का सवाल सामने आया, जिसे उन्होंने बड़ी सुगमता से हल कर लिया। इस बात पर विचार करने के लिए न कहीं सभा-सम्मेलन की बैठक हुई थी, न विद्वानों की वक्तृताएँ और न किसी प्रकार प्रकार की सार्वजनिक चर्चा ही। प्रत्येक भारतीय ने व्यक्तिगत रूप से अपने मन में प्रस्ताव पास कर लिया कि विभिन्न भाषा-भाषियों से बातचीत करने के लिए हिंदी से काम लेना चाहिए। हिंदी अपनी सरलता के प्रताप से प्रवासी भाइयों की राष्ट्रभाषा बन गई। नेटाल में मद्रासियों की संख्या सबसे अधिक है और हिंदी-भाषियों की तादाद है उनसे बहुत कम। पर मद्रासियों के लिए हिंदी सीखना अनिवार्य हो गया। तमिल और तेलगु द्रविड़ भाषाएँ होने तो बहुत अच्छी बोल लेता है और कोई टूटी-फूटी हिंदी, पर बोल लेते हैं सभी। यहाँ यह भी कह देना अप्रासंगिक न होगा कि केवल दक्षिण अफ़्रीका का ही नहीं, प्रत्युत जिन-जिन उपनिवेशों में हमारे देश-वासी गिरमिट की प्रथा में गये हैं, यद्यपि वे एक-दूसरे से हजारों कोस दूर हैं, कोई प्रशांत महासागर के तट पर है तो कोई हिन्द महासागर के किनारे, कोई अमरीका के दक्षिण भाग में है तो कोई अफ़्रीका के दक्षिणीय भाग में, तो भी यह देखकर विस्मय होता है कि उन सभी देशों के प्रवासी भारतीयों ने पारस्परिक व्यवहार के*

लिए एकमत से हिंदी को ही राष्ट्रभाषा स्वीकार किया–उसी से अपनी तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति की।" (सन्यासी, 1947:168)

हिंदी के शब्द भंडार और वाक्य संरचना की सरलता के कारण *गिरमिटियों ने उसे चुना और* दक्षिण अफ्रीका में हिंदी एक ऐसी संपर्क भाषा के रूप में विकसित हुई जिसमें अवधि, भोजपुरी, खड़ीबोली के साथ तमिल, तेलुगु, अग्रेज़ी और अफ्रीकांस के शब्द भी अपना लिए गए। यह होना स्वाभाविक था क्योंकि दक्षिण अफ्रीका की यह हिंदी इन सभी को जोड़ रही थी। क्योंकि भारत से आए लोग डरबन के आसपास ही अधिकतर रहते और काम करते थे इसलिए उनकी हिंदी 'नेटाली हिंदी' भी कहलाने लगी (वर्मा, 2020*:25-46*)। भाषा के इस रूप को प्रोफ़ेसर राजेन्द्र मिस्त्री ने अपनी डॉक्टरेट की उपाधि के शोध का विषय चुना। इस शोध ने 'लैंग्वेज इन इंडेन्चर' नाम की किताब का रूप लिया। केपटाउन विश्वविद्यालय के भाषा शास्त्री प्रोफ़ेसर राजेन्द्र मिस्त्री का लंबा साक्षात्कार लेने का मुझे अवसर मिला। उन्होंने मुझे बताया कि जब वह टेक्सस में एम.ए. कर रहे थे तब उनकी रुचि भाषा संपर्क और क्रीयोल स्टडीज़ में हुई। उस समय वह इस बात से भी अचंभित थे कि कक्षा में बोली जाने वाली हिंदी, दक्षिण अफ्रीका में उनकी बोली जाने वाली हिंदी से कितनी अलग थी। दक्षिण अफ्रीका की हिंदी के लिए वह कहते हैं कि- "नाम कई हैं, लेकिन संपूर्ण सहमति से अलग लोगों से अलग समयों में। यहां की बोलचाल के लिए सबसे ज़्यादा सुना जाने वाला नाम 'हिंदी' है, और यही नाम औपचारिक जनगणना इत्यादि में इस्तेमाल किया जाता है। इस भाषा को बोलने वालों को बाकी लोग 'हिन्दुस्तानी' कहते थे, ...एक पीढ़ी पहले तक *कलकतिया बात* का पर्याय के रूप में अपने लोगों के बीच प्रयोग होता था। तमिल बोलने वाले उन लोगों के लिए *कलताकार* (वस्तुतः कलकत्ता का व्यक्ति) शब्द का प्रयोग करते थे। भोजपुरी शब्द चलती भाषा में नहीं प्रचलित हैं। इस शब्द का इस्तेमाल मैंने भाषा विज्ञान के सन्दर्भ में शुरू किया क्योंकि मैं ये स्पष्ट करना चाहता था कि मैं इस बोलचाल की भाषा और उसके इतिहास पर शोध कर रहा था, पढ़ाई जाने वाली औपचारिक मानक हिंदी पर नहीं। इसी तरह *नेटाली* शब्द का इस्तेमाल बुद्धिजीवी एक पीढ़ी से पहले करते थे जब वह दक्षिण अफ्रीका में बोली जाने वाली हिंदी और भारत की हिंदी में अंतर करना चाहते थे। " दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों द्वारा बोली जाने वाली हिंदी पर प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम, प्रोफ़ेसर बिसराम राम बिलास तथा बाल गणेश ने भी कई महत्वपूर्ण शोध निबंध लिखे हैं।

प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम ने दक्षिण अफ़्रीका के डरबन विश्वविदयालय में वर्ष 1971 से 2000 तक हिंदी का अध्यापन किया, लम्बे समय तक हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे और हिंदी भाषा से जुड़े अधिकांश कार्यों के निर्देशक के रूप में काम किया। दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी भाषा पर हुए अधिकांश शोध के वह गाइड रहे, बल्कि राजन्द्र मिस्त्री के शोध के भी वह को-सुपरवाइज़र थे। उन्होंने बताया कि भाषा को लेकर दक्षिण अफ़्रीका में एक प्रकार का संघर्ष चलता रहा था। "नेशनल पार्टी का अपार्थीड 1948 से शुरू हुआ। लेकिन उसके पहले भी, अंग्रेज़ों के समय में भी, भेदभाव होता था। अंग्रेज़ों के ज़माने में अंग्रेज़ी का वर्चस्व था। उसके बाद 1948 से डच लोगों की भाषा का रहा। उसका नाम अफ़्रीकांस दे दिया गया। जैसे संस्कृत का प्राकृत रूप होता है वैसे ही डच का प्राकृत रूप बन गया अफ़्रीकांस। इन लोगों ने फिर अफ़्रीकांस को सब पर थोपना शुरू किया। 1976 में इसी कारण सोवेटो में विद्यार्थियों ने रिवोल्ट किया। अफ़्रीकी बच्चे पहले अपनी भाषा में पढ़ते थे, फिर अंग्रेज़ी में। साइंस, मैथ्स अंग्रेज़ी में पढ़ाया जाता था क्योंकि अफ़्रीकी भाषाएं उतनी विकसित नहीं थीं कि उनमें पढ़ाया जाए। ये वैसा ही है जैसे मानिए भारत में कहा जाए कि अब सारी पढ़ाई संस्कृत में ही होगी। भाषा को लेकर राजनीति विचारधारा होने लगी थी। हिंदी शिक्षा संघ हिंदी को पढ़ाने का काम तब भी कर रहा था, हालाकि उसका रूप तब अलग था। पंडित नरदेव जी ने इसकी स्थापना 1948 में की। देश में हिंदी पढ़ाने में उनकी और हिंदी शिक्षा संघ की मुख्य भूमिका है। "

पंडित नरदेव वेदालंकार का जन्म 1913 में हुआ था और वे दक्षिण अफ़्रीका एक गुजराती पुजारी के तौर पर आए थे। दक्षिण अफ़्रीका आकर उन्होंने देखा कि हिंदी भाषी समुदाय पौराणिक और वैदिक दो तरह की विचारधाराओं में बंटा हुआ था। तब उन्होंने हिंदी को विकसित और प्रचारित करने पर ज़ोर दिया, जिससे वह दोनों समूहों को एक साथ जोड़ने में सफल हुए। उनका दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी और अन्य मातृभाषाओं के लिए किया गया योगदान अतुलनीय है। अफ़्रीका पहुँचने के एक साल बाद उन्होंने 1948 में 'हिंदी शिक्षा संघ' दक्षिण अफ़्रीका की स्थापना की। पंडित नरदेव उसकी प्रेरक शक्ति भी थे और उसके पहले अध्यक्ष भी। उन्होंने हिंदी को एक स्थान दिया और कक्षाओं और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशाला जो वह चलाते थे उसके माध्यम से हिंदी व्याकरण से सबका परिचय करवाया। उसके बाद उन्होंने परीक्षाओं के द्वारा धर्म शिक्षा अध्ययन आरंभ किया और जब कोई विद्यार्थी इन परीक्षाओं के क्रम में सफल हो जाता था, वे उसके बाद विद्यार्थियों को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा भारत के प्रथम से रत्न स्तर की हिंदी परीक्षाओं के लिए तैयार करते थे।

आज

दक्षिण अफ़्रीका का हिंदी शिक्षा संघ हिंदी को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय संघ है। वर्तमान में हिंदी शिक्षा संघ अपनी वार्षिक परीक्षा स्वयं तैयार करता है और औसतन 700 विद्यार्थी ये परीक्षा देते हैं। उनको प्रथम से कोविद और शिक्षण पद्धति शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम ग्रेड दिये जाते हैं। बताया जाता है कि 1985 से 2020 तक, कम से कम 35,000 छात्रों ने हिंदी शिक्षा संघ की परीक्षा दी है। लगभग सभी लोग जो विभिन्न पाठशालाओं में हिंदी सिखा रहे हैं हिंदी शिक्षा संघ के पढ़े हुए हैं। हर साल हिंदी छात्रों को प्रोत्साहित करने के लिए और उनका उत्साह बढ़ाने के लिए हिंदी शिक्षा संघ इस्टेडफ़ड आयोजित करता है। इस्टेडफ़ड का माहौल बिलकुल घर की शादी जैसा होता है। प्रतियोगिता की तैयारी होती है और हिंदी समाज के लोग कुछ दिन पहले से भोज की तैयारी में साथ जुटते हैं- सब्ज़ियां काट कर तैयार की जाती है, पूड़ियां बेल कर रखी जाती है। पूरे वातावरण में उत्साह और सहयोग दिखता है। हिंदी शिक्षा संघ का 'हिन्द वाणी' नाम का हिंदी रेडियो स्टेशन भी है जो 1998 में स्थापित किया गया था। 'हिन्द वाणी' को संघ के सबसे सफल प्रॉजेक्टों में गिना जाता है।

हीरालाल शिवनाथ जी 12-13 साल के थे जब उन्होंने पंडित नरदेव वेदालंकार को एक कार्यक्रम में सुना। उनके भाषण से वह इतने प्रभावित हुए जब पुस्तकालय में काम करने के लिए पंडित जी को कुछ युवा स्वयंसेवकों की ज़रूरत थी तो उन्होंने अपना नाम भी दे दिया और हर हफ़्ते डरबन स्थित हिंदी शिक्षा संघ जाने लगे। जो संबंध तब स्थापित हुआ वह आज भी चल रहा है। हिंदी शिक्षा संध की मासिक ई पत्रिका 'हिंदी खबर' हीरालाल शिवनाथ निकालते हैं। यह ई-पत्रिका अपने पाठकों को हिंदी संघ में हो रही गतिविधियों से परिचित कराती है और हिंदी जगत में हो रहे कार्यक्रमों के बारे में बताती है। यह पत्रिका दुनिया के सभी प्रमुख केंद्रों में जाती है जहां हिंदी को सांस्कृतिक या शैक्षणिक भाषा के रूप में पढ़ाया जा रहा है। वह कहते हैं, "हिंदी खबर पर लोगों की प्रतिक्रिया बहुत ज्ञानवर्धक और उत्साहवर्धक है। बहुत लोग यह नहीं जानते थे कि दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी जीवित और सम्मानित है, जिसे अल्पसंख्यक समूह की भाषा के रूप में माना जाना चाहिए। हम देख रहे हैं कि अब कई लोग और संगठन पत्रिका के लिए लेख भेजने लगे हैं। यह हिंदी शिक्षा संघ के लिए उत्साहजनक संकेत है।"

प्रोफ़ेसर बिसराम राम विलास डरबन विश्वविद्यालय के वेस्ट विल परिसर में संस्कृत विभाग में प्रोफ़ेसर और अध्यक्ष रहे हैं। हिंदी और संस्कृत भाषाओं तथा भारतीय संस्कृति

के प्रचार-प्रसार में उनका महत्वपूर्ण सहयोग है। उनके स्कूल में भाषा और संस्कृति से जुड़ी चीज़ें सिखाई जाती हैं। हिंदी सीखने के लिए उन्होंने एक वेबसाइट भी बनाई है जिसमें हिंदी सीखने के लिए बीस पाठ हैं। 'लेट्स स्पीक हिंदी' नाम की उनकी किताब में पहले छात्र अंग्रेज़ी के अक्षरों से हिंदी सीखते हैं (ट्रांसलिटरेशन) और फिर कुछ समय के बाद देवनागरी सीखते हैं। दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की स्थिति पर वह बताते हैं कि हिंदी दक्षिण अफ़्रीका में राजभाषा नहीं है लेकिन दक्षिण अफ़्रीका संविधान के प्रीएम्बल में हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं की लिस्ट में हैं जिनका आदर किया जाएगा। जब दक्षिण अफ़्रीका में अपार्थाइड खत्म हुआ तो जातियों के लिए अलग विश्वविद्यालय नहीं रहे। इससे भारतीय भाषाओं, हिन्दु स्टडीज़ और भारतीय दर्शन पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या कम हो गई और भारतीय भाषाओं और हिन्दु स्टडीज़ का विभाग बंद करना पड़ा। जब नौकरी के अवसर कम हो गए तो पढ़ने वाले कम हो गए। यहां हिंदी बोलने वाले लगातार कम होते जा रहे हैं। हालाँकि आर्य समाज और सनातन धर्म सभा सीधे और सक्रिय रूप से हिंदी शिक्षा संघ के माध्यम से हिंदी का प्रचार करते हैं, हिंदी फ़िल्में, टीवी सीरियल, संगीत यहां बहुत लोकप्रिय हैं, बॉलिवुड के कलाकार आकर यहां बड़े कार्यक्रम करते हैं, उनमें बहुत भीड़ होती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं हैं कि देखने और सुनने वाले हिंदी भाषा बोलते और समझते हों, या वह हिंदी सीखना चाहते हों।

कल

जब हिंदी बोलने वाले लगातार कम होते दिख रहे हों तो देश में हिंदी का भविष्य क्या है? डॉ रामबिलास कहते हैं "हिंदी कम बोलने वाले होने का मतलब यह नहीं है कि हिंदी के प्रति लोगों का प्रेम नहीं है। आज जो भारतीय दक्षिण अफ़्रीका में हैं उनमें से अधिकांशतः उन भारतीयों की संतान हैं जो गिरमिटिया मजदूर के रूप में दक्षिण अफ़्रीका पहुंचे थे। हिंदी एक ब्रैंड, एक विरासत की तरह देखी जाती है जो गिरमिटियों को परिभाषित करती है, ये समझिए कि उनके मन में हिंदी के प्रति एक तरह की देशभक्ति है।" वह कहते हैं भाषा के प्रति उत्साह जगाने के लिए भारतीय कांसुलेट के ज़रिए बिहार की नाटक मंडलियों को बुलाना चाहिए। वहां की बोली दक्षिण अफ़्रीका की बोली के सबसे निकट है। बिरहा, पछरा, कजरी, सोहर और ऐसी ही सभी शैलियों को (जिनसे यहां के लोग परिचित हैं) पुनर्जीवित करनी चाहिए। ऐसा करने से लोगों के मन में अपनी

सांस्कृतिक जड़ों को करीब से जानने की उत्सुकता होगी, गर्व होगा, आत्मसम्मान बढ़ेगा और अस्तित्व मज़बूत होगा। ऐसा होने से अपने आप हिंदी के प्रति रुझान बढ़ने लगेगा। हीरालाल शिवनाथ का मानना है कि दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में शुद्ध अकादमिक दृष्टि की ज़रूरत नहीं है, ज़रूरत है ऐसे पाठ्यक्रम की जो दक्षिण अफ़्रीका के सन्दर्भ के अनुकूल हो और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। वह कहते हैं कि दक्षिण अफ़्रीका के लोग हिंदी इसलिए सीखना चाहते हैं क्योंकि वह उनकी अस्मिता को बताने वाला एक माध्यम है। हमें ऐसे कार्यक्रमों की आवश्यकता है जो हमारे शिक्षकों को लगातार सशक्त और समर्थ बनाएं। दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के कल पर प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम कहते हैं "एक बार 2001 में यहां लोगों ने एक मीटिंग रखी, औपचारिक ढंग से मुझे बुलाया और कहा, "भाई जी, दे वांट यू टो एक्सप्लेन द सुन्दरकाण्ड टू अस" तो मैंने कहा आप रोज़ गाते हैं, तो समझाने की क्या ज़रूरत है। तो बोले, हम पढ़ते हैं तो बल मिलता है लेकिन किस चीज़ से बल मिलता है ये हम नहीं जानते। ... तो बहुत काम है करने को। हिंदी में लोगों की रुचि बनाए रखनी है। रेडियो, मनोरंजन, संगीत के माध्यम से शास्त्रीय संगीत, फिल्मी संगीत के माध्यम से भी रुचि बनती है। सुनते रहने से भाषा आती है। जैसा डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा ने हिंदी शिक्षा संघ, डरबन में उपस्थित अध्यापकों से चर्चा करते हुए कहा कि यदि हिंदी को सुरक्षित रखना है और सबल बनाना है तो ज़रूरी है कि हिंदी बोली जाए, सुनी जाए, लिखी और पढ़ी जाए। और फिर देखिए, बच्चे मां को मम्मी कहेंगी, डैडी कहेंगे लेकिन दादी को आजी ही कहते हैं।"

यह हमारा सौभाग्य है कि भारतीयों के साथ जहां भी हिंदी भाषा गई कुछ ऐसे लोग हमेशा रहे जिन्होंने हिंदी को बचाना और बढ़ाना अपना कर्तव्य और दायित्व समझा। सुदूर उन देशों में हिंदी भाषा कितनी विकसित होती है यह भारत के सहयोग पर निर्भर करता है। सरकार ऐसे लोगों को वहां भेजे जो भाषा वैज्ञानिक हों तो निश्चित हिंदी पढ़ने-पढ़ाने का काम वैज्ञानिक तरीके से होगा, नतीजे आंके जा सकेंगे, लेकिन हिंदी बढ़ाने के नाम पर अगर हम केवल भारतीय कविता पाठ और भारतीय साहित्य पर चर्चा करेंगें तो उन देशों में हिंदी का विकास कैसे होगा। दक्षिण अफ़्रीका के लिए आवश्यक है कि वहां के स्थानीय भारतीयों की हिंदी संबंधित ज़रूरतों को केन्द्र में रख कर करा जाए जो वहां को शिक्षकों को सशक्त करें। छात्रों का आत्मविश्वास बढ़ेगा तो भाषा बोली जाएगी, हिंदी भाषा का प्रयोग होगा तो हिंदी भाषा का विकास होगा। प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम के शब्दों में, "हिंदी सबके निकट ही है, बस रास्ता दिखाना है और पहचनवाना है।"

सन्दर्भ सामग्री

जयराज, आनंद. "द डे द फ़र्स्ट इंडियन इंडेंचर्ड लेबरर्स लैंडिड इन एसए." IOL, 12 अक्टूबर. 2020, www.iol.co.za/sunday-tribune/opinion/the-day-the-first-indian-indentured-labourers-landed-in-sa-592e1ec6-f6e3-4983-b564-1b65c51f5c96. 30 नवंबर 2022 को एक्सेस किया गया

सन्यासी, भवानीदयाल. *प्रवासी की आत्म-कथा*. राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, 1947.

वर्मा, विमलेश कान्ति. "नेटाली हिंदी–हिंदी विदेशी भाषिक शैली." *प्रवासी जगत,* केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, खंड. 3, अंक. 4, जुलाई-सितंबर. 2020, pp. 46-25.

वर्मा, विमलेश कान्ति. *प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य,* भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2016.

मिस्त्री, राजेन्द्र. *अ हिस्टरी ऑफ़ द भोजपुरी (ऑर हिंदी) लैंगवेज इन साउथ एफ़्रिका*. 1985. यूनिवर्सिटी ऑफ़ केपटाउन, पीएचडी डिसर्टेशन.

वर्मा, सुनन्दा. "साक्षात्कार प्रोफ़. राम भजन सीताराम से सुनन्दा वर्मा की बातचीत." *आजकल,* प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, जनवरी 2016.

वर्मा, सुनन्दा. "दक्षिण अफ़्रीका में भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति", *प्रवासी जगत,* केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, खंड. 5, अंक. 4, जुलाई-सितंबर. 2022, pp. 32-16.

वर्मा, सुनन्दा. "घर पर इंगलिस मत बन". डायसपोरा साहित्य संगम, मॉरीशस . 2018, pp. 210.

वर्मा, सुनन्दा. "मैं चाहता हूं हिंदी मेरी प्रथम भाषा हो". *भाषा,* नई दिल्ली, अंक. 279, जुलाई- अगस्त. 2018, pp. 134

(साभार : स्मारिका, 12 वां विश्व हिंदी सम्मेलन, फ़ीजी 2023 विदेश मंत्रालय, भारत सरकार)

सुनंदा वर्मा *सिंगापुर निवासी वरिष्ठ पत्रकार हैं और प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान पर पिछले दो दशकों से कार्यरत हैं। संपर्क: www.sunanda.net; sunandaverma@yahoo.com*

नेपाल

संजीता वर्मा

नेपाल संस्कृति और परम्परा की दृष्टि से काफी समृद्ध है। धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से नेपाल और भारत का परम्परागत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इन दोनो देशों के आपसी सम्बन्धों को आत्मीय और प्रगाढ़ बनाने में हिंदी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सर्वोच्च शिखरों से सुशोभित विशालतम पर्वतमाला हिमालय केवल हिमकणों का घर ही नहीं है बल्कि पृथ्वी पर निवास करने वाले एक चौथाई लोगों की सांस्कृतिक धरोहर, सांस्कृतिक घर भी है। नेपाल भूमि हिमालय की इसी महिमामयी भूमि की हृदयस्थली है। नेपाल के सांस्कृतिक भूगोल के त्रिकोण के ऊर्ध्वकेन्द्र में समन्वित अध्यात्म चेतना का पुंज पशुपति धाम है। पश्चिम में बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिनी मानव जीवन को आज भी सत्धर्म और करुणा के मार्ग को दर्शाती हुई त्रिकोण का दूसरा विन्दु बनता है। इसी तरह एक अन्य कोण त्याग और कर्म निष्ठा के एकान्त प्रतीक विश्व की अप्रतिम नारी प्रतिमा सीता की जन्मस्थली जनकपुर के रूप में श्रद्धालुओं की प्रेरणा भूमि के रूप में अवस्थित है। इस भूभाग में सनातन काल से ही अध्यात्म काव्य और कला की सांस्कृतिक त्रिवेणी बहती रही है जो समस्त आर्यावर्त को जीवन्त बनाती है। काल के अनन्त प्रवाह में यहाँ भी अनेक भूतात्विक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक उथल-पुथल होते रहे। नेपाल एक बहुभाषी देश है। नेपाल में प्राचीन काल में भाषा समस्या नहीं थी। शिक्षा और संस्कृति की एकमात्र भाषा संस्कृत थी। बाद में सामयिक भाषाओं में भी यदा–कदा सांस्कृतिक और प्रशासनिक काम किए गए। यहाँ के बज्रयानी सिद्धों और नाथ योगियों ने अपभ्रंश भाषा में रचनाएँ कीं जो हिंदी भाषा की पूर्वज बनीं।

विगत एक हज़ार वर्षों से नेपाल के ऐतिहासिक तथ्यों, शिलालेखों, अभिलेखों और साहित्यिक रचनाओं में हिंदी का प्रयोग अनवरत रूप से देखा जा रहा है। इससे स्पष्ट

तौर पर यह कहा जा सकता है कि नेपाल में हिंदी की एक सुदीर्घ परम्परा रही है या नेपाल की अपनी हिंदी है। पृथ्वीनारायण शाह के शासन काल में प्रशासनिक कार्य हिंदी के साथ ही स्थानीय भाषाओं में भी होता रहा। शाह वंश के प्रारम्भिक शासकों ने राजभाषा के रूप में नेपाली और हिंदी दोनों को अपनाया। लेकिन संस्कृत और अंग्रेज़ी का महत्व था। राणाओं के 104 वर्ष के शासन काल में भाषा को लेकर कोई समस्या नहीं थी, क्योंकि हिंदी और नेपाली का महत्व समान था। 1951 ई. तक शिक्षा का माध्यम हिंदी थी और प्रशासन की भाषा नेपाली थी।

विक्रम संवत् 1831 से पूर्व वर्तमान नेपाल के तराई(मधेश) क्षेत्र स्वायत्त राज्य के रूप में था। नेपाल के इसी प्रदेश में रहने वाले लोगों की मूल भाषा हिंदी है। नेपाली भाषा भाषी अर्थात् नेपाल के पहाड़ी मूल भाषी तराई मधेश के लोगो को ‘मधेशी’ या ‘मदिसे’ नाम से सम्बोधित करते हैं। यह प्रदेश आबादी की दृष्टि से नेपाल का आधा हिस्सा है। आर्थिक दृष्टि से भी यह पूरे देश का 76 प्रतिशत उत्पादन करता है। सरकार को राजस्व तथा अन्य ‘कर’ भी करीब 85 प्रतिशत यह प्रदेश देता है। इतना सब होने के बावजूद वर्तमान नेपाल में राष्ट्रीय पैमाने पर प्रशासनिक कार्यों में इस प्रदेश के लोगों को प्रायः दूर ही रखा गया और शायद यही वजह थी कि उस काल की उनकी भाषा हिंदी भी राजकीय सम्मान से वंचित होती गई। यह सच है कि किसी भी देश में किसी खास भाषा-भाषियों की स्थिति के अनुरूप ही उसकी भाषा की स्थिति बनती- बिगड़ती है। भले ही वह भाषा समृद्ध, सशक्त और लोकप्रिय क्यों न हो नेपाल के इतिहासकारों ने नेपाल के प्राचीनतम इतिहास में काठमाण्डू के इतिहास को बताया है जबकि सच्चाई तो यह है कि नेपाल के इतिहास की शुरूआत मधेश के इतिहास से होती है, क्योंकि ग्यारहवीं के उत्तरार्ध से चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक मधेश में कर्णाट वंशी राजा सिमरौनगढ़ से शासन करते थे। इस वंश के अंतिम महाराजा हरिसिंह देव थे। महाराजा हरिसिंह देव मुस्लिम आक्रमणकारी ग्यासुद्दीन तुगलक के आक्रमण से तंग होकर काठमाण्डू घाटी गए और वहाँ शासन करने लगे। उन्हीं के उत्तराधिकारी और वंशज मल्ल राजाओं ने लगभग सात सौ वर्षों तक वहाँ शासन किया। मल्ल राजाओं की हिंदी साहित्य रचना और हिंदी भाषा के प्रति अनुराग के पीछे यही वंशानुगत कारण हो सकता है। वैसे तो मल्लों की राजभाषा नेवार थी। इससे यह कहा जा सकता है कि काठमाण्डू घाटी में नेवार बहुसंख्यक थे इसलिए राजकाज के लिए उसी प्रचिलत भाषा को उपयुक्त समझकर उसे ही राजभाषा के रूप में विकसित करते गए। परन्तु उनका हिंदी के प्रति प्रेम यथावत ही रहा। मल्लकाल में साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधि की भाषा हिंदी थी।

नेपाल के शाहवंशीय राजाओं ने अपनी खस-नेपाली भाषा के साथ हिंदी को भी महत्व दिया था।

कुछ राजाओं ने हिंदी में भी रचनाएँ की हैं। नेपाल में एक शताब्दी पूर्व तक हिंदी को भाषा कहा जाता था। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व नेपाल घाटी में रचित ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ 'त्रिरत्न सौन्दर्य गाथा' में संस्कृत, हिंदी, नेपाली आदि अनेक भाषाओं का प्रयोग हुआ है। इसमें हिंदी के लिए 'भाषा' और नेपाली(नेवार) को पर्वत भाषा की संज्ञा दी गई है। नेपाल के कई शिलालेखों और नाटकों में भी हिंदी को भाषा कहा गया है। इसके अलावा यहाँ के कुछ हस्तलिखित ग्रन्थों में नेपाली के लिए भाषा और हिंदी के लिए पक्की भाषा का भी प्रयोग किया गया है।

नेपाली भाषा के विकास और श्रीवृद्धि में तथा नेपाल में शिक्षा-प्रसार और राजनीति के पुनर्जागरण में हिंदी के योगदान को नकारना गलत होगा। नेपाली साहित्य में नवयुग का आरम्भ करने वाले कवि मोतीराम भट्ट काशी में हिंदी के भारतेन्दु मण्डल के कवि थे। नेपाली साहित्य की जितनी भी महान् हस्तियाँ, पुराने 'जोशमणि' सन्तों के जमाने से लेकर आधुनिक युग की प्रतिभाओं ने हिंदी से प्रेरणा लेकर उत्कृष्ट साहित्य की रचनाएँ की हैं। मोतीराम भट्ट से लेकर लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा,

केदारमान व्यथित, बी.पी कोइराला, घुस्वां सायमि, भवानी भिक्षु, बुन्नी लाल सिंह, डॉ. शिवशंकर यादव के साथ हाल की नयी प्रतिभाओं की हिंदी रचनाएँ गुण और परिमाण में भी नेपाल को हिंदी साहित्य की उर्वर भूमि सिद्ध करता है।

विश्व में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार जिस तरह से हुआ है वह उसकी सक्षमता, उपयोगिता और लोकप्रियता का परिचय देता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह संस्कृत भाषा की मुख्य उत्तराधिकारी और आधुनिक आर्य भाषाओं में सबसे अधिक उदार और समन्वय शालिनी है। शायद अपने इसी कारण से वह भारत में राजभाषा पद पर आसीन है, हाँ, यह अलग बात है कि कुछ बौद्धिक गुलाम मानसिक स्तर पर हिंदी से अधिक अंग्रेज़ी को महत्व देते हैं। अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में हिंदी भाषियों के तीन वर्ग दिखाई देते हैं। पहला वर्ग वह जो भारत से दूर देशों मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम आदि जगहों पर बहुत पहले मजदूर के रूप में ले जाए गए या जाकर बसे हिंदी भाषी हैं जो अपनी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में इसे मानते हैं और इसका प्रचार भी करते हैं। दूसरा वर्ग वह जो अमरीका, यूरोप के साथ-साथ जापान आदि विकसित देशों में व्यवसाय के लिए गए हिंदी भाषी और शिक्षा के लिए हिंदी पढ़ने वाले विदेशी और तीसरा वर्ग है भारत के हिंदी क्षेत्र से भौगोलिक रूप

से जुड़े नेपाल, पाकिस्तान आदि देशों के हिंदी भाषी। नेपाल का पूरा मधेश और पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश भारत के हिंदी प्रदेश की खुली सीमा से जुड़ा हुआ है। यहाँ के लोगों की भाषा, बोलियाँ और संस्कृति सीमा पार के हिंदी भाषी तथा उनकी उपभाषाएँ कुमाउंनी, गढ़वाली, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि बोलने वालों से अभिन्न हैं। इनकी पूरी संख्या नेपाल की आधी जनसंख्या से भी अधिक है।

अतः यह कहना उचित होगा नेपाल में हिंदी के अस्तित्व और उनकी समस्याओं का परिशीलन उपर लिखे सभी प्रकार की अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों से विशिष्ट और महत्वपूर्ण है। भूगोल के अलावा ऐतिहासिक दृष्टि से भी नेपाल में हिंदी भाषा और साहित्य का अस्तित्व आदिकाल से अब तक सहज और स्वाभाविक ढंग से कायम है। हिंदी साहित्य के आदिकाल के सिद्धों के चर्यापदों का पता नेपाल में ही लगा। इसे चर्या के नाम से नेपाल घाटी में अभी भी गाया जाता है। गोरखनाथ और उनकी शिष्य परम्परा में रतननाथ जैसे योगियों का हिंदी साहित्य पश्चिमी नेपाल(दांग) में पाया गया। मध्यकालीन नेपाल के नाटक साहित्य में समकालीन हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है। उत्तर मध्यकाल में नेपाल के पहाड़ी क्षेत्रों में 'जोशमणि' निर्गुण सन्त सम्प्रदाय तथा कृष्ण प्रणामी सम्प्रदाय का हिंदी साहित्य रचित और प्रचारित हुआ। इसी समय नेपाल के जनकपुर में रामभक्ति की शृंगार और वात्सल्य भावना वाला साहित्य विपुल मात्रा में रचा गया। नेपाली साहित्य के आदिकाल सन् 1776 से 1841 से ही नेपाल में हिंदी भाषा में साहित्य रचनाओं के उदाहरण मिलते हैं।

आज से करीब 40-42 साल पहले तक पूरे नेपाल में प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक हिंदी भाषा माध्यम के रूप में थी। पुरानी पीढ़ी के नेपाली नेताओं और विद्वानों के लिए शिक्षा का माध्यम हिंदी और प्रमुख स्रोत हिंदी क्षेत्र वाराणसी, पटना और कलकत्ता के विश्वविद्यालय थे। वाराणसी तो एक प्रकार से नेपाल का शैक्षिक, सांस्कृतिक मातृविद्यापीठ ही रहा है। नेपाली कांग्रेस, प्रजा परिषद् तथा साम्यवादी दल के भी अग्रणी नेतागण यहीं शिक्षित-दीक्षित हुए थे। हिंदी भाषा और साहित्य का प्रभाव उनके संस्कार में गहराई तक है। इतने बड़े पैमाने पर अपने अस्तित्व और प्रचार के बाद भी अत्याधुनिक काल में नेपाल में हिंदी की उपेक्षा और विरोध विश्व समुदाय को अचम्भे में डाल देने वाला तथ्य है। हिंदी भाषा और हिंदी भाषियों के सहयोग से निर्मित नेपाली भाषा, साहित्य और नेपालियों के विकास की कथा सभी जानते हैं। नेपाल में प्रजातान्त्रिक जागरण लाने में हिंदी भाषा और साहित्य ने असाधारण योगदान दिया। तत्कालीन महान नेतागण ने खुले

दिल से हिंदी भाषा का व्यवहार किया। प्रजातन्त्र के संघर्ष काल में नेपाली कांग्रेस ने हिंदी और नेपाली दोनों भाषाओं में अपना संचार-प्रचार किया। इतना ही नहीं, हमारे मित्र डॉ. गोपाल ठाकुर का कहना है कि जब वे संविधान सभा में थे, तत्कालीन नेकपा (संयुक्त) के सभासद चन्द्रदेव जोशी ने उन्हें बताया था कि वि.सं. 2017 से पहले नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी की निर्णय पुस्तिका में हिंदी का ही आधिकारिक रूप से प्रयोग होता था। वि. सं. 2007 साल में राणाशाही का अन्त और प्रजातन्त्र के उदय के पश्चात भी हिंदी का समुचित प्रयोग नेपाल में होता रहा। नेपाल में पहले पहले रेडियो केन्द्र की स्थापना के साथ ही हिंदी में भी प्रसारण शुरू हुआ था। राजा त्रिभुवन मधेश की यात्राओं में अपने नेपाली भाषण का हिंदी अनुवाद सुनाना नहीं भूलते थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री तक हिंदी में भाषण तथा आदेश लेखन तक करते थे। संसद में भी हिंदी का व्यवहार होता था।

प्रजातन्त्र के बाद देश के विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों के बीच स्वार्थों की टकराहट शुरू हो गयी। नेपाल की धरती पर हिंदी विरोध का बीज यहाँ के कुछ ढोंगी और स्वार्थी राष्ट्रवादियों द्वारा विदेशी कूटनीतिक षडयन्त्र के कारण पड़ा। शासन और सत्ता में अपना वर्चस्व स्थापित करने वाले लोगों ने संस्कृत भाषा और धर्म को हथियार बनाना शुरू किया। नेपाल में आधुनिक शिक्षा योजना के निर्माता के रूप में प्रसिद्ध एक अमेरिकी विशेषज्ञ (मि.उड) ने यहाँ मैकाले की भूमिका निभाई और प्रचारित किया कि नेपाल में संस्कृत मृत भाषा' तथा हिंदी 'विदेशी भाषा' है। शुरू में मि. उड की अभिव्यक्ति का घोर विरोध हुआ। हिंदी रक्षा समिति बनी, आन्दोलन हुए, लोग जेल भी गए और तत्कालीन प्रधानमंत्री मातृका प्रसाद कोइराला ने तो उनकी बातों को अल्पज्ञता का परिणाम बताया। परन्तु वि.सं. 2017 साल में नेपाल में लागू उग्र राष्ट्रवादी एकतन्त्री पंचायती शासन प्रणाली ने हिंदी उन्मूलन की सुपारी ले ली। शिक्षा, संचार, प्रशासन आदि सभी क्षेत्रों में हिंदी पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। पंचायत काल में हिंदी के बारे में या हिंदी में बातें करना भी यहाँ के प्रशासकों के बीच जुर्म माना जाता था और बोलने वालों को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। पंचायत काल में एक भाषा की नीति से फायदा उठाने वाले नेपाली भाषी आभिजात्य वर्ग के लोग अपने स्वार्थ के कारण हिंदी को विदेशी भाषा बताने लगे। सत्ताधारी बने सुख-सुविधाभोगी कुछ नेतागण जो स्वयं मधेश (हिंदी क्षेत्र) के हैं, इस विषय पर या तो मौन रहे या ज़रूरत पड़ने पर कभी-कभी हिंदी के विरोध में भी आवाज़ उठा देते थे। नेपाल सद्भावना पार्टी इसमें अपवाद रही। दलीय राजनीति की इस अवसरवादी स्वार्थपरस्ती के कारण हिंदी भाषा में आया यह ह्रास दक्षिण एशिया के देशों में बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की भयंकर त्रासदी है। फिर सन् 1990 (वि.सं. 2046)

में निर्दलीय पंचायती शासन का अन्त हुआ और दलीय प्रजातन्त्र की पुनःस्थापना। इस आन्दोलन में भी हिंदी में राज विरोधी ग़ज़ल, कव्वालियों का भरपूर उपयोग हुआ।

स्व. गणेशमान सिंह के निजी निवास चाक्सीबारी में नेपाली कांग्रेस का एक बड़ा जमघट हुआ था जिसमें भारत के राष्ट्रीय स्तर के नेताओं ने संबोधन तो किया ही था, उस पूरे कार्यक्रम की शुरूआत हिंदी कव्वाली से की गई थी। प्रजातंत्र पुनः स्थापना के बाद नेपाल के दमित-उपेक्षित हिंदी भाषियों में आशा की नयी किरण जगी। उस समय अन्तरिम सरकार के प्रधानमंत्री कृष्ण प्रसाद भट्टराई ने अपनी दीर्घकालीन प्रजातान्त्रिक निष्ठा को दुहराते हुए नेपाल में हिंदी भाषा के महत्व और उसकी पुनः प्रतिष्ठा का आश्वासन दिया। इसके तहत हिंदी के प्रति उदारता का रुख संचार क्षेत्र में दिखाई पड़ा। पंचायत काल में रेडियो नेपाल से जो हिंदी समाचार बन्द कर दिया गया था उसे पुनः जारी किया गया। हिंदी में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन पर लगा प्रतिबन्ध हटा दिया गया। 'हिंदी साहित्य संगम' नामक एक संस्था भी खुली जिसमें कई मंत्रियो की कोशिशें शामिल थीं। लेकिन हिंदी विरोधी कट्टरपंथी संस्कार पूर्व पंचों के प्रजातान्त्रिक पार्टी कांग्रेस में घुसने और छाने लगे। नौकरशाही का रुख तो बाधक था ही। नेपाल राजकीय प्रज्ञा (प्रतिष्ठान) साहित्य (कला एकेडमी) का जब पुनर्गठन हुआ तो उसमें न तो किसी हिंदी विद्वान को ही शरीक किया गया और न ही हिंदी में कोई साहित्य नाटक आदि को स्वीकार किया गया। उसमें प्रजातन्त्र के नाम पर जो प्राज्ञ बने वे भी हिंदी को विदेशी कहकर उपेक्षित करने लगे (बाद के प्राज्ञ धूस्वाँ सायिम ने तो हिंदी को पितृभाषा ही माना है) हिंदी भाषियों को सबसे अधिक नि राशा तब हुई जब नए प्रजातान्त्रिक संविधान में भाषा सम्बन्धी व्यवस्था में 'नेपाली' राष्ट्रभाषा के अलावा और किसी भी राष्ट्रीय भाषा का उल्लेख नहीं किया गया। संवि धान में राष्ट्रीय भाषा की अवधारणा के बारे में यहाँ बोली जाने वाली भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिया जाएगा (नेपाल का संविधान 2047 धारा 6.20 कह कर इस सूत्र का सहारा लेकर हिंदी विरोधियों ने यह प्रचार करना शुरू कर दिया कि 'हिंदी' नेपाल में किसी विशेष क्षेत्र की मातृभाषा नहीं है और हिंदी विरोधियों ने हिंदी क्षेत्र मधेश की सारी उपभाषाओं या बोलियों मैथिली, भोजपुरी, अवधी, थारू आदि को स्वतन्त्र भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए कसरत करने लगे। इस तरह प्रजातन्त्र की पुनः स्थापना के बाद नेपाल में भाषा सम्बन्धी कट्टरतावादी संस्कार खास कर 'हिंदी विरोध' फिर पनपने लगा। हिंदी समर्थकों को भारतीय दलाल या साम्प्रदायिक तथा सद्भावना (एक राजनीतिक पार्टी जो हिंदी को नेपाल की द्वितीय राष्ट्रभाषा बनाने की मांग करती थी) कहकर हेय नजरों से देखा जाता रहा है। नए प्रजातान्त्रिक युग में एक-दो ऐसी घटनाएँ हुईं, जो हिंदी के प्रति

नये शासकों के उपेक्षाभाव या स्वार्थपूर्ण विरोध को दर्शाती हैं। संसद में सद्भावना पार्टी के सांसदों द्वारा हिंदी में बोले जाने पर कुछ सांसदों ने विरोध किया और 'हिंदी नहीं समझते, नेपाली में बोलो' कह कर माइक की लाइन तक काट दी गई थी, लेकिन संघर्ष और दृढता से सद्भावना पार्टी के सांसदों को हिंदी में बोलने की छूट मिल गयी। फिर जब नया शिक्षा आयोग बना उसमें भी हिंदी के शिक्षक या विद्वान को नहीं लिया गया। इस तरह किसी न किसी तरीके से नेपाल में हिंदी का विरोध किया जाता रहा। इस सम्बन्ध में एक घटना का ज़िक्र करना ज़रूरी है। इससे भारत के लोगों, नेताओं और कलाकारों को अपनी भाषा हिंदी से प्यार करने की सीख मिल सकती है। नेपाल टी.वी. ने जब अभिनेता अमिताभ बच्चन की अन्तरवार्ता प्रसारित की थी, नेपाल टी.वी. के विख्यात अन्तरवार्ताकार विजय कुमार पाण्डे अंग्रेज़ी में सवाल कर रहे थे और बच्चन शुद्ध हिंदी में उसका जवाब दे रहे थे। यह घटना उस समय काफी चर्चित रही। पाण्डे जी अपनी जगह सही थे क्योंकि उस समय नेपाल टी.वी. का यह कठोर नियम था कि हिंदी में कोई अन्तरवार्ता नहीं ले सकता और अब बात आती है स्टार बच्चन के बारे में तो वे अपनी जगह और भी सही थे। क्योंकिं एक ओर उन्होंने अपनी भाषा हिंदी को महत्व दिया तो दूसरी ओर नेपाली जनता हिंदी अच्छी तरह समझती है इसलिए अंग्रेज़ी के अच्छे जानकार होने के बाद भी उन्होंने हिंदी में बोला। इसी तरह प्रसिद्ध साहित्यकार और पत्रकार हिमांशु जोशी से जब अंग्रेज़ी में अन्तरवाता लेनी चाही तो उन्होंने मना कर दिया। तब हार कर नेपाली में उनसे सवाल पूछे गए और उन्होंने हिंदी में जवाब दिया। इन दोनों व्यक्तित्वों से भारत के उन तमाम लोगों को सीख लेनी चाहिए जो अंग्रेज़ी में बोलकर अपनी भाषा की ही नहीं, अपनी पहचान, अपने व्यक्तित्व का मज़ाक उड़ाकर अपनी गुलाम मानिसकता को दर्शाते हैं।

इसी तरह अगर हम नेपाल की शैक्षिक गतिविधयों पर नजर डालते हैं तो हम देखते हैंकि मधेश के कुछ कैम्पसों में हिंदी की पढ़ाई होती है लेकिन काठमाण्डू में सिर्फ़ पद्मकन्या कैम्पस (महिला कैम्पस) में हिंदी पढ़ाई जाती है। शुरू में यहाँ के त्रिचन्द्र कॉलेज में भी हिंदी की पढ़ाई होती थी लेकिन बाद में उसे बन्द कर दिया गया। पद्मकन्या में शुरू में केवल प्रवीणता प्रमाण पत्र स्तर पर हिंदी की पढ़ाई होती थी, किंतु स्नातक में नहीं। तो स्वभाविक है विश्वविद्यालय के केन्द्रीय विभाग जहाँ स्नातकोत्तर की पढ़ाई होती है, छात्र न्यून होंगे ही। लड़कों के लिए काठमाण्डू के किसी भी कॉलेज में हिंदी की पढ़ाई नहीं है। मुझे याद है जब पद्मकन्या कॉलेज में हिंदी पढ़ाने की इच्छा से पहली बार आवेदन देने गयी थी तो उस समय जवाब दिया गया था '(पर्दैन-पर्दैन यहाँ हिंदी सिन्दी पढाउन, विद्यार्थी हुँदैन, एकजना हुनुहुन्छ, पुगिहाल्छ।)' यानी नहीं नहीं, यहाँ हिंदी सिन्दी नहीं पढ़ाना है,

विद्यार्थी नहीं होते और एक तो है ही, चल जाएगा। बाद में मुझे यहाँ रखा गया और काफी भागदौड़ के बाद यहाँ हिंदी में तीन वर्ष का कोर्स भी पढ़ाना शुरू हुआ। हिंदी मेंः स्नातक की पढ़ाई केवल काठमाण्डू के त्रि.वि. केन्द्रीय विभाग में ही होती है।

स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई नहीं होती। मातृभाषा के नाम पर मैथिली, भोजपुरी, अवधी में प्राथिमक शिक्षा देने की व्यवस्था की गई लेकिन हिंदी को नजरअन्दाज कर दिया गया। नवीं और दसवीं में ऐच्छिक विषय के तौर पर हिंदी रखी गयी है, किंतु शुरू से नहीं पढ़ने पर नवीं-दसवीं में ऐच्छिक वि षय में हिंदी को कौन लेना चाहेगा? फल यह है कि उच्च शिक्षा में हिंदी पढ़ने वाले बहुत कम होते हैं या कभी-कभी नहीं भी होते। फिर भी मधेश के कॉलेजों, काठमाण्डू के पद्मकन्या कैम्पस तथा त्रिभुवन विश्वविद्यालय का केन्द्रीय हिंदी विभाग हिंदी की लाज बचाए हुए हैं। जबकि नेपाल में सम्वत् 2018 साल तक हिंदी शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा की माध्यम भाषा थी।

लेकिन अब की स्थिति कुछ और हो गयी है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक दृष्टि में बहुआयामी परिवर्तन हुए है। कुछ चीजें, लोग, तबका, विचार अर्थात मधेशी समाज सदियों से हाशिये पर रहने के लिए बाध्य होता रहा है, कमोबेश बहिष्कृत और निर्वासित जीवन जीने को मजबूर हैं। संवैधानिक अधिकारों के बावजूद दोयम दर्जे का नागरिक जिन्हें अरसे से कहा जाता रहा है आज वे न सिर्फ़ आवाज़ उठा रहे हैं बल्कि अपने उपर हुए अमानुषिक कृत्यों का जवाब भी मांग रहे हैं। देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक ढाँचे में अब सुधार की ज़रूरत है। यह मांग देश की आधी आबादी की आवाज़ है।

उनका कहना है कि सामाजिक, राजनीतिक रूप से एक लोकतान्त्रिक देश के वासी होने पर समुदाय, जाति वर्ग, लिंग भेद के आधार पर समाज में व्याप्त अन्याय और अत्याचार लोकतान्त्रिक देश की निशानी नहीं है क्योंकि अस्मिता, अस्तित्व, समानता, सम्प्रभुता, बन्धुता, स्वतन्त्रता का भाव, विचार अब समाहित होना ही चाहिए। पहले जहाँ हिंदी पूरे तराई मधेश को एक सूत्र में बाँधती थी–शैक्षिक स्तर से लेकर सम्पर्क स्तर तक और सभी भाषा भाषी लोग हिंदी बोलने के साथ ही हिंदीभाषी कहलवाने में भी गर्व करते थे। लेकिन आज बात कुछ अलग ढंग से की जाती है। खुले रूप में हिंदी का विरोध करते भी हैं और नहीं भी।

आज की स्थिति में मैथिली, भोजपुरी, अवधी आदि हिंदी की बोली के रूप में नहीं बल्कि स्वतन्त्र भाषाओं के रूप में उभर कर आ रही हैं। इस भाषा के लोग हिंदी से

काम चलाने के लिए उसे केवल सम्पर्क भाषा के रूप में देखना चाहते हैं उससे आगे मधेश के साहित्यिक, सांस्कृतिक पहचान या एकता के सूत्र के रूप में नहीं देखना चाहते हैं। मैथिली, भोजपुरी भाषा माँ बन जाती है, लेकिन हिंदी मौसी भी नहीं बनती बल्कि वह दूर दराज पड़ोस की माँ कही जाती है। यह सोच आज की पीढ़ी की है। 11-12 कक्षा में हिंदी कम से कम ऐच्छिक रूप में तो है लेकिन विद्यार्थी और शिक्षकों के अभाव में नाम मात्र बन कर रह गयी है।

इस तरह हिंदी की उपेक्षा के अजीबोगरीब तरीके अपनाये जा रहे हैं। मधेश का दो नम्बर प्रदेश, जहाँ की सरकार मधेशी है, जो पूर्णरूपेण मेरी सोच से हिंदीमय जगत है लेकिन वहाँ भी ऐसी कोई व्यवस्था अब तक नहीं की गई है जिससे हिंदीत्व की बात दिखाई पड़े। जबकि उस क्षेत्र में हिंदी के लिए अनेक अवसर उपलब्ध हो सकते हैं। उदारहण के तौर पर उस प्रदेश में नेपाल के संविधान की धारा 7920 के तहत सरकारी कामकाज की भाषा हिंदी बनाई जा सकती है, स्कूल से लेकर कॉलेजों की शिक्षा में हिंदी विषय रखे जा सकते हैं, राजर्षि जनक विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में हिंदी को भी महत्व देना चाहिए। इस तरह अनेक ऐसे कार्य हैं, जो हिंदी को ध्यान में रखकर किए जा सकते हैं, किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जिस प्रदेश के पूर्वजों ने कल के दिनों में हिंदी के पक्ष में आवाज़ उठाई, आज की पीढ़ी उससे मुकर रही है। रघुनाथ ठाकुर, वेदानन्द झा, काशी प्रसाद श्रीवास्तव, मातृका प्रसाद कोइराला, सूर्य प्रसाद उपाध्याय जैसे राजनीतिज्ञ, विद्वान और कई संघ-संस्थाओं के हिंदी भाषा के प्रति इतने उच्च और अच्छे विचार को दर्शाया इसके लिए संघर्ष भी करते रहे, आज उनकी ही नयी पीढ़ी के लोग इससे दुराव और द्वेषभाव रखते हैं। इसके बावजूद हिंदी भाषा नेपाल के मधेशी और गैर मधेशी लोगों के बीच लोकप्रिय है। दूरदर्शन पर आने वाले हिंदी कार्यक्रम नेपाल में भी लोकप्रिय हैं। हजारों विद्यार्थी प्रति वर्ष भारत के विश्विवद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं, जहाँ माध्यम हिंदी ही होता है। इसके अतिरिक्त काफी संख्या में आम नेपाली भारत नौकरी के लिए भी जाते हैं, वहाँ भी माध्यम हिंदी ही होता है।

नेपाली भाषी के साथ-साथ तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार से सम्बद्ध नेवार तथा नेपाल के पहाड़ी क्षेत्रों की अन्य जातियों के लोग भी हिंदी समझते हैं और इसका प्रयोग अन्य भाषा भाषियों के साथ सम्पर्क भाषा के रूप में करते हैं।

उत्तर भारत के बृहद् हिंदी क्षेत्र और नेपाल में मधेश के मध्य हिंदी का प्रभुत्व वास्तव में भाषाशास्त्रीय अनिवार्यता के साथ ही सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार करने

के ऐतिहासिक कारण हैं। इस वृहद् हिंदी क्षेत्र में पिछले एक सहस्र वर्ष की अवधि में अनेक भाषाओं ने विकास कर केन्द्रीय भाषा अथवा सम्पर्क भाषा का स्थान प्राप्त किया यथा– राजस्थानी, ब्रज, अवधी, खड़ीबोली आदि। अन्ततः दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में प्रयुक्त खड़ीबोली ने सम्पर्क भाषा का स्थान प्राप्त किया। परन्तु मानक हिंदी का एक संश्लिस्ट चरित्र है जिसमें अन्य भाषाओं की विशेषताएँ समाहित हैं।

यह सच है कि नेपाल एक बहुभाषी देश है। सरकारी माध्यम से इसकी पुष्टि होती है। वैसे व्यवहार में यह नहीं है, यह अलग बात है। इसकी पुष्टि वर्तमान नेपाल का संविधान भी करता है। यह संविधान भाषाई दृष्टि से काफी विरोधाभासपूर्ण है। संविधान की धारा ६ नेपाल में बोली जाने वाली हर भाषा को यहाँ की राष्ट्रभाषा करार देती है जिसके तहत अब हिंदी भी यहाँ की राष्ट्रभाषा हुई। लेकिन इसकी धारा 7910 नेपाल के अलावा अन्य किसी भी भाषा को नेपाल सरकार की कामकाजी भाषा नहीं मानती।

सरकारी आँकड़े, दस्तावेज और व्यवहार चाहे जैसा भी हो, सच तो यह है कि हिंदी तो यहाँ के रोम-रोम में बसी हुई है। राजा से लेकर जनता तक इससे भलीभाँ ति परिचित हैं। हमने संक्षिप्त रूप में इसकी चर्चा की है। व्यापकता और विस्तार के लिए तो इतना ही समझना बहुत है कि नेपाल की भाषा जिसे नेपाली, मैथिली, अवधी, भोजपुरी आदि कहते हैं उसका विकास कैसे हुआ है, हिंदी या नेपाली साहित्य जानने वाले अच्छी तरह जानते हैं, इसीलिए नेपाल में हिंदी है और व्यापक रूप में है। यदि कोई इसे नकारता है तो वह महज मानसिक दरिद्रता की वजह से। अब बात आती है कि नेपाल में हिंदी नहीं है। यह बहुत दुःख के साथ कहना पड़ता है कि नेपाल जो कभी हिंदी का देश था, जहाँ शिक्षा हिंदी माध्यम में दी जाती थी, जहाँ के अभिलेखों में हिंदी के चौपाइयाँ और दोहे खुदे हुए हैं, जहाँ के शाहवंशी राजाओं ने नेपाली के साथ हिंदी को भी प्रधानता दी थी, जिस देश के साहित्यकारों का साहित्यिक विकास हिंदी में शुरू हुआ।

गोपाल सिंह नेपाली को हिंदी का वरिष्ठ कवि माना जाता है, उस देश में हिंदी नहीं है। यह इसलिए नहीं कहा जा रहा है कि यहाँ हिंदी की पढ़ाई नहीं होती है। लोग हिंदी बोलते हैं, पढ़ते हैं, जानते और समझते हैं। हाँ, कुछ ऐसे हिंदी प्रेमी हैं जो अब भी नेपाल में हिंदी की सेवा कर रहै हैं। काठमाण्डू से हिंदी भाषा में प्रकाशित कुछ मुख्य पत्र-पत्रिकाएँ हैं–'नेपाल दैनिक', 'द पब्लिक', 'हिमालिनी', 'जनकपुर बौद्धिक समाज', 'लोकमत साप्ताहिक' आदि तो नेपालगंज से भी हिंदी और अवधी भाषा की मिश्रित साप्ताहिक पत्रिका 'ग्रामदीप' निकल रही है।

वस्तुतः यह कहने में थोड़ा भी संकोच नहीं है कि हिंदी अपनी अन्य बहनें नेपाली, मैथिली, भोजपुरी और अवधी की प्रतिस्पर्धी नहीं है। बल्कि यह उनके विकास में पूरक का काम करती है, क्योंकि यह स्वंय इन सभी भाषाओं को समृद्ध करने में समर्थ है। इसी प्रकार यदि हम नेपाली, मैथिली, भोजपुरी और अवधी भाषाओं का विकास करते हैं तो वह हिंदी के लिए भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

नेपाल के संदर्भ में हिंदी की अनिवार्यता अंग्रेज़ी की अपेक्षा कहीं अधिक है। अंग्रेज़ी केवल अभिजात्य वर्ग समझता है जो कि न्यून मात्रा में है और हिंदी भाषी नेपाली इसके अनुपात में काफी बड़ी संख्या में हैं। नेपाली केवल नेपाल में ही हिंदी भाषा का प्रयोग नहीं करते बल्कि शिक्षा, नौकरी, व्यापार आदि के लिए जब भारत जाते हैं तब भी उन्हें अनिवार्य रूप से हिंदी का प्रयोग करना पड़ता है। यहाँ तक कि दोहा, दुबई आदि एअरपोर्ट पर भी अंग्रेज़ी न जानने वाले नेपालियों से हिंदी में ही बातें करते देखी और सुनी हैं। इसलिए हिंदी के साथ सौतेला व्यवहार नेपाल के हित में कतई सही नहीं है। पुरानी पीढ़ी के नेपाली नेताओं और विद्वानों के लिए शिक्षा का प्रमुख स्रोत हिंदी क्षेत्र वाराणसी, पटना और कोलकात्ता विश्वविद्यालय था। वाराणसी तो एक प्रकार से नेपाल का शैक्षिक, सांस्कृतिक मातृ–विद्यापीठ ही रही है। हिंदी भाषा और साहित्य का प्रभाव उनके संस्कार में गहराई तक है। इतने बडे पैमाने पर अपने अस्तित्व और प्रचार के बाद भी आधुनिक काल में नेपाल में हिंदी की उपेक्षा और विरोध विश्व समुदाय को अचम्भे में डाल देने वाला है। हिंदी भाषा और हिंदी भाषियों के सहयोग से नेपाली भाषा, साहित्य और नेपालियों के विकास की कथा सभी जानते हैं।

सच कहा जाए तो मधेश की राजनीति में हिंदी भाषा इस तरह से घुली-मिली है कि आप उसे अलग करने की सोच ही नहीं सकते हैं। इसलिए अब यहाँ कुछ राजनीतिज्ञों के विचारों को देना अधिक उपयुक्त हेगा। सन् 1957 में तराई कांग्रेस के अध्यक्ष वेदानन्द झा ने घोषणा की कि–"हम शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी को नहीं हटाने देगें। हम इसके लिए हर वलिदान देगें। तराई के निवासी हिंदी का अपमान नहीं सहेगें। "

उस समय के सत्तादल यूडेपा (यूनाइटेड डेमोक्रेटिक पार्टी) के महासचिव काशी प्रसाद श्रीवास्तव ने राजविराज में हुई सभा में कहा–

> "हिंदी तराई की भाषा है और मेरा यह दृढ विश्वास है कि तराई की भाषा हिंदी ही होनी चाहिए। हिंदी के प्रश्न पर एक होना पड़ेगा हमे। ऐसा न करना भंयकर भूल होगी।"

हिंदी साहित्य परिषद् वीरगंज के सचिव की घोषणा थी कि–

> "हिंदी भाषा को नकारने का अर्थ है तराई निवासियों का अपमान। हिंदी को हटाना राष्ट्रीय एकता की भावना के विरूद्ध है क्योंकि इससे मधेशियों और पहाड़ियों के मध्य भेद बढ़ेगा।"

सन् 1957 में मातृका प्रसाद कोइराला ने कहा–"स्कूली शिक्षा में नेपाली माध्यम थोपने से समस्या कम होने के वजाय बढ़ेगी।" 1959 में हुए चुनाव में नेपाली कांग्रेस को बहुमत मिला। वी.पी. कोइराला सरकार ने प्राथमिक स्तर से लेकर विश्व विद्यालय स्तर तक हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाए रखने की अनुमति दी। स्कूलों में नेपाली के साथ मैथिली और नेवारी जैसी स्थानीय भाषाएँ पढ़ाने की भी व्यवस्था की गई। उस समय संसद में भी हिंदी मान्य भाषा थी। फिर सन् 1960 में चुनी गई वीपी सरकार को भंग कर दिया गया और पंचायती राज ने स्कूलों और विश्वविद्यालय से शिक्षा माध्यम हिंदी को हटा दिया। इससे भी बुरा तब हुआ जब हिंदी को विदेशी भाषा तक घोषित कर दिया गया।

अतः नेपाल में हिंदी की सम्भावनाओं के रूप में यह उचित होगा की सभी नेपालियों के हित के लिए विशेषकर मधेश में हिंदी को शिक्षा माध्यम के रूप में पुनः स्वीकार करना ही होगा।

मैथिली, भोजपुरी और अवधी में शिक्षण सामग्री का काफी अभाव है। एक मैथिली में लिखित साहित्य की लम्बी सूची है, इसके वावजूद अवधी, भोजपुरी और मधेश की अन्य भाषाओं के साथ मैथिली को भी विद्यालय स्तर पर शिक्षा की माध्यम भाषाओं के स्तर पर आने में अभी भी बहुत समय लगना है। साथ-साथ इन भाषाओं को मातृभाषा के रूप में सियासी कुटिलता के साथ हिंदी के विकल्प में जिस प्रकार उभारा जाता है, राज्य का साधन स्रोत इनके संवर्धन और विकास में कतई खर्च होता नहीं देखा जाता। इसलिए आवश्यक है कि आने वाले समय में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी भाषा को माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाए। यदि ऐसा सम्भव हुआ तो इस कदम से नेपाली भाषी जो स्नातक हैं या होने वाले हैं, और बलपूर्वक थोपी गई अनिवार्य अंग्रेज़ी भाषा का सम्यक ज्ञान जिन्हें नहीं है और नेपाली भाषा में ज्ञान-विज्ञान की पठन सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं है, तो उनके लिए हिंदी का दूसरा कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि नेपाली साहित्य के लिए भी उन्हें आलोचना सिद्धान्त आदि के लिए हिंदी साहित्य का सहारा लेना ही पड़ता है। नेपाल में नेपाली साहित्य के जितने भी विद्वान हैं सभी हिंदी साहित्य के अच्छे जानकार हैं। हिंदी का महत्व इससे भी साबित होता है।

भारत में नेपाली भाषा-भाषी निवासियों की संख्या वहाँ की कुल जनसंख्या के सामने अत्यन्त ही न्यून है। इसके बावजूद वहाँ की सरकार ने अपने संविधान की आठवीं अनुसूची में नेपाल की कामकाजी भाषा नेपाली को रखा है। इसी तरह पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू को भी भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में रखा गया है। इसके अतिरिक्त दोनों देशों की सांझी भाषा मैथिली को भी इस अनुसूची में रखा गया है। संभवतः और भी भाषाएँ आएंगी। इससे भी सिद्ध होता है कि मैथिली, भोजपुरी सहित और भाषाओं के प्रति हिंदी अनुदार नहीं है। साथ साथ आठवीं अनुसुची में नेपाली भाषा के आने से भारत में रहने वाले नेपाली भाषी भारत के लोक सेवा आयोगों की विभिन्न परीक्षाओं में अपनी भाषा में परीक्षा देकर सफल होकर ऊँचे-ऊँचे ओहदे पर पहुँच सकते हैं, पहुँचे भी हैं।

तब यह सोचने बाली बात है कि क्या इतनी छोटी सी बात हमारे देश के नेताओं और तथाकथित बुद्धिजीवियों की समझ में नहीं आ रही है कि यदि भारत अपने संविधान में नेपाल की कामकाजी राष्ट्रभाषा को स्थान दे सकता है, जो न काफी समृद्ध और न ही सशक्त भाषा है, तो जो हिंदी भाषा अत्यन्त समृद्ध और अत्यन्त ही सशक्त भी है उसे अपने देश के शैक्षिणक संस्थाओं में शिक्षण माध्यम और लोक सेवा आयोग में परीक्षा माध्यम के रूप में स्वीकार करने में क्या आपत्ति हो सकती है। इसी तरह मुद्रण और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में भी इसे उचित स्थान देकर लाखों मधेशियों के साथ पहाड़ी क्षेत्र के लोगों का भी हित किया जा सकता है, क्योंकि सभी नेपाली हिंदी भाषा का प्रयोग प्रथम, द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में करते ही हैं।

निष्कर्ष

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि नेपाल में हिंदी की स्थिति सामान्यजनों की भाषा के रूप में अच्छी है लेकिन शैक्षिक स्तर पर उतनी अच्छी नहीं कही जा सकती है जितना उसे होना चाहिए क्योंकि हिंदी नेपाल की अपनी भाषा है न कि विदेशी। दूसरी बात यह है कि शैक्षिक स्तर पर भी हिंदी अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक सुगम और समृद्ध है। तराई मधेश के लिए तो शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से भी यह भाषा जीवन का आधार है। इसलिए मधेश की युवा पीढ़ी में हिंदी के प्रति जो नकारात्मकता भरी हुई है उसे निकालना होगा, और उन्हें स्वयं इसके लिए आगे आना होगा क्योंकि नेतागण कभी ऐसा नहीं चाहेंगे, उन्हें तो राजनीति करनी है, चाहे वह भाषा की राजनीति हो या फिर धर्म की राजनीति। वे कभी नहीं चाहेंगे कि किसी भी मुद्दे पर

मधेशी एक हों। यदि भारत की ओर से भी थोडी बहुत कोशिश की जाए तो अच्छा होगा। इसलिए आइए हम सब अपने बचे हुए सपने को पुनः प्राप्त करें और विकास की ओर नये कदम बढाएँ। यदि हम सब ऐसा कर पाते हैं तो नेपाल की हिंदी का कल अर्थात भविष्य उज्ज्वल है इसमें संदेह की थोड़ी भी गुंजाइश नहीं है।

इसी तरह नेपाल में हिंदी की सम्भावनाओं के बारे में कहा जाए तो हिंदी भाषा तथा साहित्य के अनुसन्धान में नेपाल का प्रमुख स्थान रहा है। हिंदी साहित्य के आदिकाल के सिद्धों की वाणी के रूप में उसका जो कुछ भी प्राचीनतम रूप आज उपलब्ध है उसे सुरक्षित रखने का श्रेय नेपाल को ही जाता है। नेपाल दरबार लाइब्रेरी में सिद्धों के पचास पदों का एक संग्रह मिला जिन्हें स्थानीय नेपाल भाषा में चर्या गीत के नाम से गाया जाता है। आधुनिक आर्य भाषाओं में साहित्य रचना के आरम्भिक दिनों से ही हिंदी भाषा भाषी साहित्यकारों की सहभागिता रही है। प्राचीन सिद्ध तथा नाथ कवियों मे से अनेक ने नेपाल को अपनी लीला भूमि बनाया जिनकी परम्परा आज भी विद्यमान है। इसलिए नेपाल में हिंदी शोध की अनेक सम्भावनाएँ हैं जिन्हें उजागर करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. गोप, डा. सूर्यनाथ–नेपाल में हिंदी और हिंदी साहित्य, इलाहावाद, किताब महल 1941
2. राजेश्वर नेपाली–(स) नेपाल में हिंदी की अवस्था, जनकपुर, जकपुर–बौद्धिक समाज, 2053
3. झा, हरिवंश, नेपाल में तराई समुदाय एवं राष्ट्रीय एकता–सेन्टर फार एकानॉमिक्स एण्ड टोक्नोलॉजीकल स्टडीज़, ललितपुर।
4. अश्क, गोपाल, नेपाल का हिंदी साहित्यकार र तिनका कृति नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान, 2069
5. राउत, डॉ. सी.के. मधेश का इतिहास, प्रकाशक, गैर आवासीय मधेशी
6. मिश्र, डॉ. कृष्ण चन्द्र, नेपाल के हिंदी–विद्या विहार, नयी दिल्ली, 1995
7. राकेश, डॉ. रामदयाल, नेपाल के हिंदी लेखक, प्रकाशक वाराणसी, 2003

संजीता वर्मा *नेपाल के त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू के केन्द्रीय हिंदी विभाग की अध्यक्ष और नेपाल की प्रख्यात हिंदी साहित्यकार हैं। संपर्क: drsanjitaverma@gmail.com*

फ़ीजी

मनीषा रामरक्खा

श्रीमद्भागवत गीता में श्री कृष्ण ने कहा है–"शरीर की कोई सुन्दरता नहीं होती, सुंदर होते हैं व्यक्ति के कर्म, उसके विचार उसकी वाणी, उसका व्यवहार, उसके संस्कार और उसका चरित्र। जिसके जीवन में यह सब है वही इन्सान दुनिया का सबसे सुंदर व्यक्ति है"। इन समस्त चरित्र–रत्नों के समन्वय का आधार है, हमारी मातृभाषा हिंदी। प्राचीनतम एवं गौरवमयी संस्कृत भाषा सीखने का प्रथम माध्यम भी हिंदी है। आज आधुनिक युग में समस्त धर्म ग्रंथों जैसे वेद, श्रीमद्भगवद्गीता, वाल्मीकि रामायण, गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस आदि विभिन्न ग्रन्थों का अध्ययन हिंदी भाषा के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है।

सर्वमान्य है यदि भाषा है तो संस्कृति है, और संस्कृति है तो संस्कार सुरक्षित हैं क्योंकि संस्कृति ही संस्कारों की जननी है। हमारी मातृ भाषा हिंदी हमारे आंतरिक सौन्दर्य, संस्कार और संस्कृति की नीव है। भारत से हजारों-हजारों मील, विश्व की विभिन्न जगहों पर जाकर बसने वाले पूर्वजों ने अपने दिल में हिंदी के प्रति प्रेम और उसके महत्व की भावना को जागृत रखा है और अपने अथक प्रयासों से हिंदी को आत्मसात करते हुए उसे उन्नत बनाये रखने का हर संभव प्रयास किया है। अपनी परम्पराओं वैदिक ज्ञान संस्कृति और पारम्परिक मान्यताओं को संरक्षित रखना उनका प्रचार-प्रसार करना और यथासम्भव आगे बढ़ाना उन्होंने अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी समझी और मातृभाषा हिंदी को फ़ीजी के संविधान में मान्यता दिलाई एवं राष्ट्रभाषा का अधिकार दिलाया।

हिंदी भाषा भारतीयों के जीवन का अहम हिस्सा ही नहीं यह हिन्दुओं के अस्तित्व, धर्म, वैदिक परम्परा, दैनिक जीवन पद्धति, योग, आयुर्वेद आदि विभिन्न ज्ञान-विज्ञान

प्राप्त करने का माध्यम है। फ़ीजी में भारतीयों ने यथा सम्भव अपनी मातृभाषा को जैसे हिंदी, तमिल, तेलगू, उर्दू, पंजाबी, गुजराती आदि को बोलचाल एवं शिक्षा के माध्यम में सुरक्षित रखा है तथा समृद्ध बनाने का भरसक प्रयास किया है। यह सब तभी संभव हो सका क्योंकि फ़ीजी के संविधान में सभी को अपने धर्म, पूजा-पाठ, मातृ भाषा के पठन-पाठन की पूर्ण स्वीकृति है।

फ़ीजी द्वीप के मौलिक आदिवासियों का इतिहास लगभग तीन हज़ार साल पुराना है। यहाँ की जन-जाति को काईवीती या साधारण तौर पर फ़ीजियन भी कहते हैं इनकी भाषा ई–त्तौकैयी के नाम से जानी जाती है। फ़ीजी के मुखिया सरदार जार्ज दकम्बाऊ ने अपना कर्ज चुकाने के लिए 1874 फ़ीजी को ब्रिटिश राज्य को सौंप दिया और उनकी अधीनता को स्वीकार कर लिया (Fiji Constitution, Page 3 No, 3) भारत में भी उस समय ब्रिटिश राज्य था।

आज से 145 वर्ष पूर्व सन 1879, 14 मई को भारतीय जहाज़ हमारे पूर्वजों को लेकर फ़ीजी के समुद्री तट पर आया था और यहीं से शुरू हुई फ़ीजी में हिंदी के आगमन, बोलचाल और हिंदी शिक्षण की कहानी। पाँच वर्षीय अनुबंध के तहत भारतीय मजदूरों को फ़ीजी लाया जाने लगा। यहाँ फ़ीजी संविधान में मातृ भाषाओं की चर्चा करना भी ज़रूरी है, जिसकी वजह से फ़ीजी मे हिंदी का स्थान सर्वमान्य है।

फ़ीजी द्वीप समूह गणराज्य का संविधान तीसरी बार 1997 में संशोधित किया गया और विभिन्न बदलावों के बाद 2013 में वर्तमान संविधान फिर से लागू किया गया। इस तरह कॉनवर्सेशनल और कांटंपरेरी ई–तौकैयी और अनिवार्य हिंदी भाषाएँ सभी प्राईमरी कक्षाओं में पढ़ाई जायेंगी।" https://wwwfijigov.fi/About-Fiji/Fijian-Constitution

"फ़ीजी में हिंदी एक आधिकारिक भाषा है। 1997 के संविधान में इसे हिन्दुस्तानी कहा गया लेकिन 2013 के संविधान में इसे केवल "हिंदी" कहा गया यह मुख्य रूप से फ़ीजी हिंदी स्थानीय संस्करण है जो फ़ीजी में बोली जाने वाली विभिन्न भाषाओं का मिश्रण है। फ़ीजी में इसे आपसी वार्तालापीय और विभिन्न भाषा-भाषियों के समप्रेक्षण रूप से मान्यता प्राप्त हैं।" फ़ीजी की आबादी का लगभग अस्सी प्रतिशत जनसमुदाय अपने विचार एवं भावनाओं को व्यक्त करने के लिए फ़ीजी हिंदी का प्रयोग करते हैं।

हिंदी की स्थिति अन्य गिरमिटिया देशों की तुलना में फ़ीजी में अति उत्तम है क्यों कि दैनिक जीवन में विचारों के आदान-प्रदान में हिंदी का प्रयोग अधिक होता है, परन्तु आधुनिकता के आकर्षण में जो वैश्विक परिवर्तन हो रहे हैं, उसका असर कहीं न कहीं फ़ीजी के युवाओं पर पड़ रहा है। इसी कारण बोलचाल में पठन-पाठन, में हिंदी के प्रयोग की समस्या उत्पन्न हो रही है। फ़ीजी में हिंदी के क्षेत्र में कार्य करते हुए मुझे पैतालीस वर्ष हो गये। आज से दो दशक पहले प्राईमरी, सेकेंडरी स्कूलों तथा अन्य शिक्षण संस्थाओं में हिंदी का दर्जा अन्य विषयों के समान माना जाता था। उस समय वर्ष दस तक शिक्षा व्यवस्था में सभी मातृभाषाएँ अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती थीं। बच्चों को उत्तम अंक मिलते थे और वे वर्ष दस की बोर्ड परीक्षा को अच्छे अंक से पास करते थे। अधिकांश स्कूलों में हिंदी का परिणाम शत् प्रतिशत आता था।

उस समय हिंदी की पढ़ाई विशेष आकर्षण का केंद्र होती थी। मेरी कक्षा में सभी हिन्दू बच्चे हिंदी विषय लेते थे। इसका शायद यही कारण था फ़ीजी आगमन के बाद वह अपने धर्म, संस्कृति और भाषा को जाग्रत रखना चाहते थे जिसे वह पीछे छोड़ आए थे।

1980 के दशक और उसके बाद कई दशकों तक ही हिंदी का जो वातावरण फ़ीजी में देखने को मिला, ऐसा लगता था वह मॉरीशस में दिए गये महात्मा गांधी के विचारों को फ़ीजी में अमल कर रहे थे महात्मा गांधी ने संस्कृति के प्रचार-प्रसार में मातृभाषा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए–मॉरीशस में प्रवासी भारतीयों के समक्ष बोलते हुए इन तीन बातों को अपनाने के लिए कहा था। गांधी जी के शब्दों में–

> "पहले–अपने बच्चों को शिक्षित कीजिए, दूसरी–राजनीति में भाग लीजिए, तीसरी–अपनी मातृभाषा हिंदी का समुचित प्रयोग कीजिए।"

इन तीनों विचारों को, फ़ीजी भारतीय पूर्वजों ने अपने जीवन का लक्ष्य मान कर अपने बच्चों के लिए अनेक पाठशालाएँ खोलीं, राजनीति में अच्छा मुकाम हासिल किया और हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान दिलाया। हिंदी साहित्य को भी भरसक समृद्ध बनाने का प्रयास किया। उन्होंने अपने व्यक्तिगत लाभ को परे रखते हुए त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए हिंदी भाषा के भविष्य को सुदृढ़ बनाया। परिणाम स्वरूप आने वाले पर्यटक फ़ीजी को भारत का एक छोटा प्रांत समझते हैं, यहाँ आकर उन्हें वही आनन्द प्राप्त होता है जैसे वह भारत में घूम रहे हैं। माना कि हमारे पूर्वजों के सामने नया वातावरण नये जीवन

की नई कहानी, नई समस्यायें थीं लेकिन अपनी भाषा, अपना साहित्य, अपनी संस्कृति थी और अपने सत्य सनातन विचारों का साथ उन्होंने कभी नहीं छोड़ा।

"विद्या में विनम्रता, विनम्रता में पात्रता, पात्रता से धन, धन से धर्म, धर्म से सुख की प्राप्ति होती है। अर्थात मातृभाषा हिंदी और संस्कृति के सहयोग से शिक्षा में पूर्णता आती है। क्योंकि–शिक्षा और संस्कृति जीवन के मूल मन्त्र हैं। शिक्षा कभी झुकने नहीं देती संस्कृति कभी गिरने नहीं देती "। 1980 के दशक में हिंदी पढ़ाने वालों का बड़ा सम्मान था। मेरा सौभाग्य है मुझे फ़ीजी में हिंदी पठन-पाठन का अवसर मिला। इस दौरान किसान संघ–का इतिहास अयोध्या प्रसाद शर्मा, फ़ीजी में मेरे से 21 वर्ष–पंडित तोता राम सनाढ्य, व फ़ीजी में प्रवासी भारतीय, बनारसी दास चतुर्वेदी–और A Hundred years of Hindi in Fiji–जोगेंद्रसिंह कंवल एवं अन्य साहित्यिक अध्ययन और शोध करने का अवसर प्राप्त हुआ, साथ ही फ़ीजी में हिंदी और भावी सम्भावनाओं को जानने का अवसर प्राप्त हुआ।

हिंदी की स्थिति जान कर मुझे लगा–

"थी आस्था अपनी संस्कृति में, भाषा का साथ नहीं छोड़ा,
तुलसी की रामायण लेकर फ़ीजी में, भारत बसा गया।
वेदों की ध्वनि गूंज रही, कहीं हवन यज्ञ का ज्ञान मिले।
गुरूद्वारे में गुरु वाणी कहीं, कहीं मन्दिर में गुणगान चले।"

फ़ीजी प्रशांत महासागर का स्वर्ग कहलाता है। यहाँ विभिन्न संस्कृतियों, सभ्यताओं और भाषाओं का संगम दिखाई पड़ता है। कहते हैं जिस चीज को न चाहते हुए भी खो बैठते हैं उसे पाने की चाहत हमें कर्मठ बना देती हैं। ऐसा ही गिरमिट प्रथा के अंतर्गत भारत से लगभग 12,000 किलोमीटर दूर भारत से फ़ीजी आने वाले गिरमिटियों के साथ हुआ। अपने परिवार, अपनी जन्म भूमि से दूर होने पर भी, वे अपनी भाषा संस्कृति को नही भूले, वह पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन उनकी आस्था अपनी भाषा अपनी संस्कृति के प्रति अटूट थी, परिणाम स्वरूप अपने बल पर उन्होंने छोटे-छोटे केंद्र स्थापित किये जिसे वह कुटी कहते थे देखने में वह घास फूस की झोंपड़ी के समान हुआ करती थी, जिसमें उन्होंने हिंदी भाषा संस्कृति की शिक्षा देनी शुरू की। शिक्षा का माध्यम हिंदी और संस्कृत हुआ करता था। पाठ्य पुस्तक थी चाणक्य नीति दर्पण, विदुर नीति, कबीर या रहीम के दोहे, या जो भी

पुस्तक उपलब्ध होती थी उसे पाठ्य पुस्तक के रूप में काम में लाया जाता था। कालान्तर में भारतीय समाज की अनगिनत पाठशालाएँ खड़ी हो गयीं जहाँ हिंदी और संस्कृति की शिक्षा दी जाती थी। आज फ़ीजी में अनेक हिन्दू संगठन हैं, लगभग दो हज़ार रामायण मंडलियाँ हैं। " सेवा आश्रम एक कर्मठ संस्था है जो सभी प्राईमरी एवं सेकेंडरी स्कूल के बच्चों को हिंदी के पठन-पाठन में जोड़े हुए है।

फ़ीजी में हिंदी के दो रूप देखने को मिलते हैं पहला "मानक हिंदी"–फ़ीजी सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त और शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम मानक हिंदी में उपलब्ध है। इसका लिखित रूप पूर्णतया देवनागरी लिपि है। यह पाठ्यक्रम कक्षा एक से लेकर कक्षा आठवीं तक प्राईमरी स्कूल तक के लिए है और वर्ष नौ से लेकर वर्ष तेरहवें वर्ष तक सेकेण्डरी स्कूलों के लिए पूर्णतया मानक हिंदी पर आधारित हैं। मानक हिंदी फ़ीजी में औपचारिक तौर से काम में लाई जाने वाली पूर्ण विकसित भाषा है।

दूसरा रूप है, बोलचाल की भाषा जिसे "फ़ीजी हिंदी" के नाम से जाना जाता है। फ़ीजी हिंदी का अपना एक रूप है, अपना अलग इतिहास हैं बोलने-समझने में सरल है अपनी एक मिठास है। यहाँ के गैर-भारतीय भाई-बन्धु इसका प्रयोग बड़ी आसानी से कर लेते हैं। अपनी बातों को समझाने के लिए आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं खासकर अंग्रेज़ी और काईवीती 'ई-तौकेयी भाषा के शब्दों का मिश्रण भी देखने को मिलता है। भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोगों को लाया गया जिनकी भाषा बोलियाँ अलग-अलग थीं। इन आनेवाले लोगों में अधिकतर ग्रामीण इलाके के लोग थे सीधे-साधे एक दूसरे की भाषा को समझते नहीं थे। कहते हैं 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' अत : जब एक दूसरे को अपने दुःख-सुख में शामिल करने की आवश्यकता हुई तो 'तो मिश्रित' भाषा 'फ़ीजी बात' का आविष्कार हुआ और कालान्तर में फ़ीजी हिंदी कहलाई। फ़ीजी हिंदी का पाठ्यक्रम भी है, जो रोमन लिपि में तैयार किया गया है, इसके माध्यम से गैर भारतीय बच्चों को हिंदी में बात करना एवं हिन्दू संस्कृति से परिचित कराया जाता है। उदाहरणार्थ–कौन ची करता, हमहू आईस है, के आईस है, घर जाता रहा, सुतीस रहा, हम जगाई दिया आदि।

फ़ीजी में हिंदी की स्थिति पर विचार करें तो हिंदी के विकास में पंडित अमिचंद जी का विशेष योगदान रहा है। आर्यसमाज द्वारा 1927 में उन्हें फ़ीजी बुलाया गया था। उन्होंने बहुत ही सरल मानक हिंदी में सभी प्राईमरी स्कूल के बच्चों के लिए छः पुस्तकें

(मेरी पहली पुस्तक–मेरी छठी पुस्तक लिखीं) जो की 1930 & 50 के दशक में बहुत लोकप्रिय और ज्ञानवर्द्धक साबित हुईं हिंदी पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक अध्ययन भी शामिल किया गया है। सभी स्तर के बच्चों के लिए सांस्कृतिक अध्ययन के हेतु स्थानीय लेखकों की पुस्तकें भी काम में लाई जा रही हैं। प्राईमरी कक्षाओं के लिए अधिकांशतया स्थानीय लेखकों के द्वारा लिखी गयी हैं जैसे–संस्कृति और नैतिक शिक्षा, संस्कृति और मानव धर्म।

फ़ीजी में तीन विश्वविद्यालय हैं तीनों में सर्टिफ़िकेट, डिप्लोमा और डिग्री स्तर पर हिंदी पठन-पाठन उपलब्ध है। फ़ीजी भारतीयों के लिए ग़र्व की बात हैं इनमें से तीनों में से एक The University of Fiji गिरमिटिया के वंशजो द्वारा संचालित विश्वविद्यालय हैं जहाँ हिंदी स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाई जाती है यानि Master of Arts in Hindi कोर्स उपलब्ध है। जिसके अंतर्गत भारतीय साहित्य और हिंदी, महाभारत, रामायण एवं अन्य सांस्कृतिक ग्रन्थों का अध्ययन विस्तृत रूप से शामिल है। निकट भविष्य में संस्कृत अध्ययन एवं शोध विस्तृत रूप से शामिल हैं और निकट भविष्य में शोध संस्थान स्थापित करने और हिंदी में पी-एच.डी. की सुविधा शुरू करने की सम्भावना की जा रही है। वर्तमान मे फ़ीजी में हिंदी अध्ययन की अच्छी सुविधाएं उपलब्ध हैं। यहीं से एम.ए. किये हुए मेरे दो विद्यार्थी इसी यूनिवर्सिटी में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत हैं पर आज हिंदी की स्थिति यह है कि हिन्दू समाज की युवा पीढ़ी की रुचि हिंदी के प्रति घटती जा रही है परिणाम: हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में गिरावट आती जा रही है।

आज इक्कीसवीं सदी में, आधुनिकता के प्रभाव में बदलती हुई आवश्यकताओं के कारण पाठ्यक्रम में बदलाव आ रहे हैं युवा पीढ़ी हिंदी और संस्कृति से दूर होते जा रही है। शिक्षा मंत्रालय की नई पालिसी के अंतर्गत कुछ ऐसे बदलाव हुए हैं जिसकी वजह से हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या कम होती जा रही है। हिंदी के भविष्य के लिए यह एक गम्भीर समस्या है इसलिए हिंदी शिक्षण सम्बन्धी समस्त साझेदारी–भारतीय दूतावास, फ़ीजी शिक्षा मंत्रालय के साथ 12/12/2020 को Hindi Teachers Association of Fiji के सहयोग से एक मीटिंग आयोजित की गयी। हिंदी को लेकर विस्तृत सम्भावनाओं पर चर्चा की गयी। यह सभा बहुत महत्वपूर्ण थी क्योंकि हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के लिए निम्न विषयों पर सम्मिलित रूप होकर कार्य करने का निर्णय लिया गया। हिंदी के विकास के लिए निम्न सम्भावनाओं पर कार्य किया जा रहा है। समाज व माता-पिता में हिंदी के महत्व के प्रति जागरूकता लाना। अधिकांशतया माता-पिता अपने बच्चों को हिंदी के

प्रति जागरूकता से वंचित रखते हैं। महिला मंडलियों में जाकर उनसे सम्पर्क करके उनके माध्यम से हिंदी के महत्व को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य चल रहा है क्योंकि महिलाएं आपसी सम्पर्क की विशेष क्षमता रखती हैं।

हिंदी को आकर्षक बनाने के लिए अति आवश्यक है कि शिक्षकों को शिक्षण कला रोचक एवं आधुनिक उपकरणों द्वारा उचित प्रयोग युक्त बनाया जाये। इसके लिए अधिक से अधिक कार्यशालाओं को करने का विचार किया गया। 'हिंदी टीचर्स एसोसिएशन' एवं शिक्षा मंत्रालय मिल कर हिंदी प्रशिक्षण कार्यशालाएं कर रहे हैं। इस कार्य के लिए फ़ीजी भारतीय दूतावास का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त हो रहा है।

सभी मातृ भाषाओं को बिना विकल्प के पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में लाने का प्रयास ज़रूरी है ताकि कोई भी अपनी मातृभाषा के शिक्षण से वंचित न रह जाए। वर्ष 2000 में शिक्षा समिट के बाद जो बदलाव आये, उनके कारण मातृभाषा शिक्षण में गिरावट आती गयी। समिट से पहले मातृ भाषाएँ बिना विकल्प के अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती थी। इसके बाद शिक्षा मंत्रालय द्वारा मातृभाषा के साथ एग्रीकल्चर और ऑफ़िस टेक्नोलॉजी जोड़ कर वैकल्पिक विषय बना दिया गया है। आज के युवा आफिस टेक्नोलॉजी को अधिक महत्व दे रहे हैं। अत: स्कूलों में हिंदी पढ़ने वाले बच्चों की संख्या घटती जा रही है। अपनी भाषा से बच्चों को वंचित रखा जा रहा है। सनातन धर्म, आर्यसमाज एवं सभी साझेदार इस विषय पर सरकार और शिक्षा विभाग के साथ मिल कर काम कर रहे हैं।

प्राइमरी और सेकेंडरी स्कूलों के हिंदी पाठ्यक्रम अवलोकन कर इसे सरल और रोचक बनाना ज़रूरी है। यह भी एक सम्भावना है बच्चों में रुचि जाग्रत करने की। शिक्षा मंत्रालय, पाठ्यक्रम विभाग इसमे साझेदारी करते है।

भारतीय दूतावास फ़ीजी के सहयोग से हिंदी के श्रेष्ठ अध्यापकों को पुरस्कृत करने की योजना पर कार्य किया जा है। भारतीय दूतावास बच्चों को हर वर्ष हिंदी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने भारत भेज रहे हैं। यदि फ़ीजी की यूनिवर्सिटी में हिंदी डिग्री, एम.ए की डिग्री देने के लिए छात्रवृति देने प्रारम्भ कर दें तो छात्रों को हिंदी करने का प्रोत्साहन मिलेगा।

फ़ीजी में कुछ बुद्धिजीवी हिंदी को मानक हिंदी के स्थान पर लाने का प्रयास करते रहते हैं लेकिन फ़ीजी हिंदी बोलचाल की भाषा है और मानक हिंदी पाठ्यक्रम की भाषा हैं। दोनों का अपनी-अपनी जगह विशेष महत्व है। सभी साझेदार इस प्रयास को मिल कर असफल बनाते रहे हैं, असफल बनाते रहेंगे।

देश में हिंदी की प्रतिष्ठा एक बहुत महत्वपूर्ण विषय है। युवा पीढ़ी में देवनागरी का स्थान रोमन लिपि लेती जा रही है। वे रोमन लिपि में लिखना सहज समझते हैं और परिणामत:हिंदी ध्वनियाँ लुप्त होती जा रही हैं जैसे N के प्रयोग के कारण ण का लोप होता जा रहा है। जैसे रामायण को सभी फ़ीजी के लोग रामायन पढ़ते हैं।

हिंदी को उन्नत बनाने की एक सम्भावना यह भी थी कि हिंदी अध्यापकों को साथ लाया जाये ताकि वह अपने विचारों को सबसे साझा कर हिंदी शिक्षण में सुधार कर सकें। इस उद्देश्य के लिए हिंदी अध्यापकों के एक मजबूत संगठन की आवश्यकता थी। 2004 में 'हिंदी टीचर एसोसिएशन आफ 'फ़ीजी' का गठन किया गया। आज भी यह संगठन हिंदी के विकास में संलग्न है।

पुस्तकें आकर्षण का केंद्र होती हैं। बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। यह भी एक सम्भावना है यदि हिंदी पुस्तकें पुस्तकालयों में बच्चों की योग्यता के अनुसार अधिक अपलब्ध होंगी तो बच्चों में हिंदी के प्रति रूचि जागेगी। दुर्भाग्यपूर्ण विषय है प्राइमरी, सेकेंडरी स्कूल के पुस्तकालयों में हिंदी पुस्तकें न के बराबर हैं जो कि अन्य पुस्तकों के बीच में दबी पड़ी रहती हैं। यहाँ तक कि घरों में माता-पिता अंग्रेज़ी तथा अन्य विषयों की पुस्तकें खरीदने पर ज़ोर देते हैं। बच्चों को अपने चारो तरफ़ जो दिखाई देता है, वे उसी के प्रति लगाव रखते हैं और उसी को अपने जीवन में ढालने का प्रयास करते हैं। भारतीय दूतावास, भारत सरकार और शिक्षा मंत्रालय के सहयोग से यदि उपयुक्त एवं पर्याप्त मात्रा में हिंदी पठन-पाठन सामग्री उपलब्ध करायी जा सके तो सम्भवत: फ़ीजी में हिंदी के स्तर को सुधारा एवं उन्नत बनाया जा सकता है। सभी के सम्मिलित सहयोग से स्कूलों में पुस्तकों की कमी को पूरा करने की ज़रूरत है। 'सनातन धर्म', 'आर्यसमाज' के प्रयास अति सराहनीय हैं 'सेवाश्रम संघ फ़ीजी द्वारा हर वर्ष स्कूली छुट्टी में, विभिन्न शहरों में स्कूलों के सभी बच्चों के लिए शिविरों का आयोजन किया जाता है। इस दौरान हिंदी शिक्षण, कविता, भाषण, योग आदि विभिन्न विषयों का प्रशिक्षण एवं प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती हैं। बच्चों के लिए यह आकर्षण का केंद्र होता है। फ़ीजी में स्वामी

संयुक्ता नन्द का यह बहुत ही सराहनीय और हिंदी को बढ़ावा देने वाला कार्य है सभी साझेदार इन समस्त योजनाओं पर शिक्षा मंत्रालय और भारतीय दूतावास फ़ीजी के साथ मिल कर हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के लिए कार्यरत हैं। अंत में मैं यही कहना चाहती हूँ–

> ‘‘मातृ भाषा मानव जीवन की चाहत नहीं है बल्कि एक ऐसी आवश्यकता है जो मानव को पूर्णता प्रदान करती है और उसे मानवीय कर्त्तव्य पालन के लिए तैयार करती है।’’

सन्दर्भ सूची :

‘फ़ीजी में प्रवासी भारतीय’–बनारसी दास चतुर्वेदी

‘फ़ीजी में मैं इक्कीस वर्ष’–तोताराम सनाढ्य

‘किसान संघ का इतिहास’–पं. अयोध्या प्रसाद

मनीषा रामरक्खा *नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ीजी की सेवानिवृत हिंदी अध्यापिका हैं, फ़ीजी हिंदी अध्यापक संघ की अध्यक्ष रही हैं और देश की विभिन्न हिंदी संस्थाओं से जुड़ी रही सक्रिय हिंदी सेवियों में गिनी जाती हैं। संपर्क: mrsramrakha@gmail.com*

बुल्गारिया

देवेन्द्र शुक्ल

भारत और बुल्गारिया के बीच पारस्परिक सम्बन्ध दीर्घकालिक, मधुर और मैत्रीपूर्ण हैं। यद्यपि स्वाधीनता के बाद भारत और बुल्गारिया के बीच राजनयिक सम्बन्धों की स्थापना 1954 में हुई, पर आधुनिक पुरातात्विक एवं भाषा-वैज्ञानिक साक्ष्य दोनों देशों के अति प्राचीन सांस्कृतिक संबंधों को प्रमाणित करते हैं। दोनों देशों के बीच भाषिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विरासत के साक्ष्य 8वीं शताब्दी के पूर्व से ही उपलब्ध होते हैं।

हिंदी आज विश्व की तीन प्रमुख भाषाओं में से एक है। पिछले तीन दशकों से इसका अन्तरराष्ट्रीय महत्व काफी बढ़ा है। इससे यह स्पष्ट है कि हिंदी में एक ऐसी सन्धिनी शक्ति है जो संस्कृत की प्रमुख उत्तराधिकारिणी भाषा होने के कारण ऐतिहासिक भाषाशास्त्र की दृष्टि से विश्व के अनेक भाषा-परिवारों को आपस में जोड़ती है। साथ ही व्यापक स्तर पर यह अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक समझ और आदान-प्रदान को भी गतिशील बनाती है। अमरीका तथा यूरोपीय देशों में इधर हिंदी के प्रति रुचि काफी बढ़ी है जिसके विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारण हैं।

बुल्गारिया की भाषा दक्षिणी स्लाव भाषा समुदाय के अन्तर्गत है। संस्कृत-हिंदी-परिवार और स्लाव भाषाओं का सम्पर्क ज़्यादा गहरा है, शायद इसीलिए बुल्गारिया में संस्कृत और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन के प्रति अभिरुचि में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

यह उल्लेखनीय है कि हिंदी और बुल्गारिया के संदर्भ में विज्ञान, संस्कृति, साहित्य, लोक-कथाओं और कलाओं के अनुसंधान के प्रति भारतीय जिज्ञासा को जागृत करने का श्रेय सर्वप्रथम दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर विमलेश कांति वर्मा जी को ही

जाता है। यह ध्यातव्य है कि भारत में बुल्गेरियन भाषा के अध्ययन-अध्यापन के कार्य में गतिशीलता एवं दोनों देशों के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक सौहार्द का विकास 1973 ई. में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के माध्यम से सांस्कृतिक समझौते से हुआ। 1974 में ही प्रो. विमलेश कान्ति वर्मा की प्रतिनियुक्ति 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्' के माध्यम से सोफ़िया विश्वविद्यालय के 'भारत विद्या विभाग' में हुई। प्रो. वर्मा के प्रयत्नों से हिंदी और बुल्गेरियन भाषा एवं साहित्य के तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन के साथ ही दोनों भाषाओं में अनुवाद कार्य में बहुआयामी प्रगति हुई।

दूसरे शब्दों में प्रो. वर्मा ने अपनी हिंदी निष्ठा को बुल्गेरियन भाषा से जोड़ कर दोनों देशों के बीच एक साहित्यिक-सांस्कृतिक सेतु का निर्माण किया। यह भारत-बुल्गारिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों का शुभारम्भ था, जिसकी परिणति लगभग दो दशकों के अन्तराल में भारतीय-बुल्गेरियाई सम्बन्धों को और दृढ़तर बनाती हुई अनेक सांस्कृतिक-सामाजिक संगठनों में दिखायी पड़ती है। 1992 से 1993 में जामिया मिल्लिया में बुल्गेरियन भाषा की प्राध्यापिका के रूप में कार्यरत बुल्गारिया की डॉ. दोंका अलेग्ज़ेंड्रोवा ने भारत में बुल्गारिया भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के अध्ययन को बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया।

यह उल्लेखनीय है कि भारत में यह सांस्कृतिक संबंध न केवल कुछ समर्पित बुद्धिजीवियों द्वारा विकसित किया गया था (जिन्हें बुल्गेरियाई संस्कृति से प्यार हो गया) बल्कि कुछ समर्पित सांस्कृतिक इकाइयों और संगठनों ने भी भारतीय भावभूमि में इसे समझने एवं विकसित करने में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। इनमें प्रमुख हैं–

1. भारतीय-बुल्गारिया साहित्य-क्लब (Indo-Bulgarian Literary Club),
2. भारतीय-बुल्गारिया मैत्री-समाज (Societies for Indo-Bulgarian Friendship) और
3. जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय का बुल्गेरियन अध्ययन केन्द्र (Lectorate in Bulgarian studies) आदि।

भारत में बुल्गारिया अध्ययन के विशेषज्ञ

यह उल्लेखनीय है कि बुल्गेरियाई भाषा में भारतीय अभिरुचि को प्रेरित करने वाले विद्वानों में शिक्षण से इतर वर्ग भी शामिल हुए। श्री अरुण दास गुप्ता पहले समूह से हैं। वे बुल्गारिया अध्ययन के लिए स्थापित "भारतीय संस्कृति संस्था" के उपाध्यक्ष भी रहे हैं।

उन्होंने अपने जीवन के 20 से अधिक वर्ष भारतीय-बुल्गारिया संस्कृति के अध्ययन को समर्पित किये हैं। वे बुल्गेरियन संस्कृति के जाने-माने पारखी और प्रवर्तक थे।

1978 से 1984 की अवधि के दौरान सोफ़िया विश्वविद्यालय के पांच स्नातकोत्तर छात्रों ने भारत-बुल्गेरियाई अध्ययन, हिंदी भाषा एवं साहित्य तथा एशियन-यूरोपीय तुलनात्मक साहित्य पर केन्द्रित अपने लघु शोध-प्रबंधों को प्रस्तुत किया था। कालान्तर में ये छात्र भारत में हिंदी-बुल्गेरियन अध्ययन के प्रवर्तक भी सिद्ध हुए। उनके अध्ययन का विवरण इस प्रकार है–

1. डॉ. सत्येन्द्र कुमार विज। (दिमितर दिनोव और अर्नेस्ट हेमिंग्वे के साहित्य पर स्पेनिश गृहयुद्ध का प्रभाव)।
2. डॉ. गीता विज (एलिन पेलिन और प्रेमचंद की रचनाओं में वर्णित किसानों की नियति : एक अध्ययन)।
3. डॉ. सुमन भूटानी (हिंदी और बुल्गारीय संज्ञा-पदबन्धों का तुलनात्मक अध्ययन)।
4. डॉ. रश्मि श्रीमल जोशी (बुल्गारीय लोक-कथाएँ)।
5. डॉ. उषा वोहरा।

इन अध्येताओं के अतिरिक्त भारत एवं बुल्गारिया तथा बुल्गारिया और हिंदी भाषा के सांस्कृतिक सम्बन्ध के उदयकाल में "भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नयी दिल्ली" द्वारा सोफ़िया विश्वविद्यालय में अतिथि प्रोफ़ेसर के रूप में प्रतिनियुक्ति पर आमन्त्रित प्रो. विमलेश कान्ति वर्मा, डॉ. रामकृष्ण कौशिक, डॉ. महेन्द्र और डॉ. कर्ण सिंह चौहान ने भी बुल्गारीय-हिंदी भाषिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों का सर्जनात्मक सेतु स्थापित किया।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, सोफ़िया विश्वविद्यालय के पूर्व उल्लिखित भारतीय अध्येताओं एवं विदेश मन्त्रालय (आई.सी.सी.आर.) की प्रतिनियुक्ति पर आमंत्रित विद्वानों ने स्वदेश लौट कर बुल्गारिया और हिंदी भाषा तथा साहित्य पर गम्भीर और वैज्ञानिक शोध किया और भारत में धाराप्रवाह बुल्गारिया भाषा बोलने वालों का एक विद्वत्मंडल भी स्थापित किया। इसका दूरगामी प्रभाव भी पड़ा। इस विद्वत्मंडल ने एक महत्वपूर्ण संस्था 'बुल्गारीय अध्ययन का भारतीय केन्द्र' भी स्थापित किया जिसके माध्यम से सांस्कृतिक सम्बन्धों के दृढ़ीकरण के साथ ही अनेक महत्वपूर्ण बुल्गेरियन साहित्यिक कृतियों का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत हुआ।

हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं तथा बुल्गारिया भाषा और संस्कृति के पारस्परिक अध्ययन के सम्मोहन के जादू ने न केवल बुल्गारिया भाषा के अधिकारी विशेषज्ञों और प्राध्यापकों को प्रभावित किया बल्कि दोनों देशों की प्राचीन संस्कृति, प्राकृतिक सौन्दर्य, कला और दर्शन ने अनेक राजनयिकों, पुरातत्ववेत्ताओं, इतिहासकारों, उद्योगपतियों और कलाकारों को भी प्रभावित किया। इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं–प्रो. विमलेश कान्ति वर्मा (जिन्हें बुल्गारिया सर्जनात्मक साहित्य के हिंदी अनुवाद एवं दोनों देशों के सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के उपलक्ष्य में बुल्गारिया सरकार द्वारा दो अति विशिष्ट राष्ट्रीय पुरस्कारों '1300 बुल्गारिया' तथा 'ज़्लातना लावरोवा क्लोंका' से सम्मानित किया गया), प्रो. हीरेन मुखर्जी ("बुल्गारीय अध्ययन का भारतीय केन्द्र" के पूर्व अध्यक्ष), प्रो. लोकेश चन्द्र (पूर्व सांसद, अन्तरराष्ट्रीय भारतीय सांस्कृतिक संस्थान के तत्कालीन निदेशक), प्रख्यात उपन्यासकार एवं कवयित्री अमृता प्रीतम (जिन्हें बुल्गारिया का अति प्रसिद्ध सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार 'एन.आई. वप्त्सारोव पुरस्कार' प्राप्त हुआ), धीरा वर्मा (जिन्होंने अनेक सुप्रसिद्ध बुल्गेरियन कहानियों का हिंदी अनुवाद किया)।

प्रख्यात साहित्यकार कर्तार सिंह दुग्गल ('भारत-बुल्गारीय साहित्य-क्लब' के अध्यक्ष), प्रो. बी०सी० ग्रोवर (भारतीय ऐतिहासिक अनुसन्धान परिषद् के तत्कालीन पूर्व निदेशक और भारत-बुल्गारिया ऐतिहासिक अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी के प्रथम तत्कालीन संयोजक और संगठक), प्रो. अभय मौर्य (रूसी भाषा और साहित्य के विशेषज्ञ), 'बुल्गारिया अध्ययन केन्द्र' के तत्कालीन उपाध्यक्ष प्रख्यात कवि और साहित्यकार गंगा प्रसाद विमल (जिन्होंने अनेक बुल्गारीय लेखकों एवं कवियों की रचनाओं का हिंदी अनुवाद किया), विनोद शर्मा (प्रख्यात कवि, अनुवादक एवं 'भारत-बुल्गारीय साहित्य-क्लब' के तत्कालीन सचिव), डॉ. कृष्ण खुल्लर ('भारत-बुल्गारीय साहित्य-क्लब' के प्रथम सचिव), और प्रो. ए.के. बनर्जी (प्रख्यात पत्रकार, पूर्व संकाय प्रमुख-जनसंचार एवं पत्रकारिता संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) आदि अनेक बुल्गारिया एवं भारतीय संस्कृति-प्रेमी साहित्यकारों एवं अनुसंधानकर्ताओं ने दोनों भाषाओं में योगदान दिया है जिनका अद्यावधि अत्यन्त महत्व है।

हिंदी में अनूदित बुल्गारिया साहित्य

अनुवाद का निहितार्थ सृजनात्मक रचना-संस्कृति पुनः सृजित करना है। भारत में बुल्गारिया भाषा के अध्ययन का आरम्भ सातवें दशक से शुरू हुआ। 1973 ई. में भारत-बुल्गारिया सांस्कृतिक समझौते के अंतर्गत भारतीय विश्वविद्यालयों में स्लाविक भाषाओं

के अध्ययन का प्रावधान किया गया। सर्वप्रथम दिल्ली विश्वविद्यालय एवं जामिया मिल्लिया विश्वविद्यालय में बुल्गारिया भाषा का अध्ययन आरम्भ हुआ। इस प्रक्रिया में मूल बुल्गारिया से हिंदी अनुवाद के साथ ही अंग्रेज़ी अनुवाद से भी हिंदी अनुवादों के प्रयास किये गए। मूल बुल्गारिया भाषा से हिंदी में अनूदित साहित्य संख्या में बहुत कम है। कुछ महत्वपूर्ण अनुवाद इस प्रकार हैं–

1. ग्योर्गी जागरोव की कविताओं का संग्रह–'वर्षान्त', अनुवादक–सती कुमार, समकालीन प्रकाशन, नयी दिल्ली।

2. ल्यूबोमीर लेवचेव–'मुर्गा-युद्ध', अनुवादक–सती कुमार।

   (सती कुमार ने मूल बुल्गारिया भाषा से सर्वप्रथम हिंदी में उपर्युक्त काव्य-अनुवाद प्रस्तुत किया। इसका प्रकाशन समकालीन प्रकाशन द्वारा किया गया। अनुवाद : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ)।

3. 'बुल्गारिया का इतिहास'–(अलेग्ज़ेन्डर फ़ॉल, वसिल ग्यूज़ेलेव, निकोलाई गेंचेव, कांस्तेंतीन, इल्चो दिमित्रोव, आंद्रेई पान्तेव, मिलचो लालकोव, कोस्तादिन पेत्रोव)। (अनुवाद : धीरा वर्मा एवं विमलेश कान्ति वर्मा, 1981, राजपाल एंड संस प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली)।

   (राजपाल एंड संस द्वारा 1981 ई. में उपर्युक्त प्रकाशन अति लोकप्रिय हुआ था क्योंकि बुल्गारिया राज्य की स्थापना के 1300वीं जयन्ती पर इसका हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुआ था।)

4. 'बुल्गारिया की लोक कथाएँ' : बुल्गारिया की 19 लोक-कथाओं का दुर्लभ संग्रह, अनुवाद : धीरा वर्मा, 1982, राजपाल एंड संस प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

5. 'बुल्गारिया की लोक-कथाओं के लतीफे', चतुर पेतर और नसरुद्दीन हाजी के नाम से, 1986, वाणी प्रकाशन, अनुवाद एवं संकलनकर्ता : डॉ. सत्येन्द्र कुमार विज तथा डॉ. गीता विज)।

6. 'ल्यूबोमीर लेवचेव तथा लाचेज़ार एलेन्कोव : चुनी हुई कविताएँ' (अनुवाद : गंगा प्रसाद विमल और दिमितर पोपोव), ('शाश्वत पंचांग'–14 कविताएँ, 'छुट्टी का दिन'–18 कविताएँ संयुक्त रूप में अनुवाद)।

कोश-साहित्यः-

1. 'हिंदी-बुल्गारिया का पहला द्विभाषीय कोश':

   (डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा, बलगरस्को-हिंदी रेचनिक, 1978, प्रकाशन: बुल्गारिया–नउका इ इज़कुस्तवो द्वारा)।

   [बुल्गारिया-हिंदी अनुवाद के क्षेत्र में पहला महत्वपूर्ण अध्ययन 1978 ई. में प्रकाशित प्रो. विमलेश कांति वर्मा का उपर्युक्त द्विभाषिक कोश है। प्रस्तुत कोश में 15,000 बुल्गारियन शब्दों, पदों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों के हिंदी पर्याय दिये गये हैं। कोश के परिशिष्ट में भौगोलिक, ज्योतिष, गणित में प्रयुक्त होने वाले प्रतीकों, संख्यावाचक शब्दों के हिंदी अनुवाद दिये गये हैं।]

2. 'हिंदी-बल्गारीय अभिव्यक्ति'

   (हिंदी-बल्गार्स्की रज्गोबोर्नीक, डॉ. देवेन्द्र शुक्ल, 2002-2003, प्रकाशक–केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा)।

   [प्रस्तुत पुस्तिका में बुल्गारीय भाषा-भाषियों के उपयोग के लिए बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले हिंदी शब्दों और वाक्यों को संकलित करने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तिका का उपयोग बुल्गारीय पर्यटक भारत में आने पर और हिंदी भाषी पर्यटक बुल्गारिया जाने पर प्रारम्भिक कामकाज के लिए सरलतापूर्वक कर सकते हैं। इसी सन्दर्भ में यह संक्षिप्त पुस्तिका व्यावहारिक भाषा-प्रयोग की दृष्टि से तैयार की गयी है।]

3. 'हिंदी-बुल्गारियाई वार्तालाप पुस्तिका'

   (सम्पादन: डॉ. सत्येन्द्र कुमार विज, डॉ. गीता विज, डॉ. गालिना मोल्होवा, 2006, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली)।

   [डॉ. सत्येन्द्र कुमार विज के संपादन एवं मार्गदर्शन में निर्मित वार्तालाप पुस्तिका] को प्रो. विज एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के बुल्गारियाई भाषा के प्राध्यापक, डॉ. गीता विज, एवं डॉ. गालिना मोल्होवा ने तैयार किया है। पुस्तिका का पुनरीक्षण डॉ. गालिना मोल्होवा एवं मीरेना पात्सेवा ने किया है। बुल्गारियाई वाक्यों के देवनागरी लिप्यंतरण का कार्य उपर्युक्त विशेषज्ञों की सहायता से केन्द्रीय हिंदी निदेशालय के अधिकारियों ने संपन्न किया है।]

4. ‘संस्कृत-बुल्गारीय कोश’–प्रोफ़ेसर रामकृष्ण कौशिक

प्रख्यात भाषाविद् प्रो. रामकृष्ण कौशिक भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की ओर से वर्ष 1979-1984 में सोफ़िया विश्वविद्यालय में अतिथि प्रोफ़ेसर के रूप में प्रतिनियुक्त हुए थे। उसी अवधि में उन्होंने कोश-निर्माण कार्य किया था। उपर्युक्त संस्कृत-बुल्गारीय कोश में डॉ. कौशिक ने लगभग 11000 संस्कृत शब्दों के बुल्गारीय पर्यायों एवं अर्थों का समावेश यथासंभव भाषा-वैज्ञानिक व्युत्पत्ति के साथ किया है, जो तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

देवेन्द्र शुक्ल *केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के सेवानिवृत्त हिंदी प्रोफ़ेसर हैं। वे चीन तथा बुल्गारिया के राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में अतिथि प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत भी रहे हैं। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली ‘सरस्वती, के वर्तमान सम्पादक हैं। संपर्क: profdevendrashuklakhs1@gmail.com*

बांग्लादेश

पूनम गुप्त

भारत के मित्र बांग्लादेश में 2015 में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने अपने कर कमलों द्वारा हिंदी विभाग की स्थापना ढाका विश्वविद्यालय में की। यह साझा करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है कि मैं ढाका विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा संस्थान में प्रथम भारतीय अध्यापक के रूप में प्रतिनियुक्त हुई। मेरा कार्यकाल 3 मार्च 2022 से 2 मार्च 2024 तक रहा। ढाका विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में विदेशी प्राध्यापिका की भूमिका अत्यंत कसौटी पूर्ण रही क्योंकि ढाका में प्रबलता से बांग्ला भाषा का चलन अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है। ऐसी स्थिति में हिंदी भाषा के प्रति रुचि और उपयोगिता से वहां के विद्यार्थियों को परिचित कराना प्रथम सोपान था। ढाका विश्वविद्यालय बांग्लादेश का अत्यंत प्रसिद्ध और प्राचीन शिक्षा का स्रोत है जहाँ 45000 विद्यार्थी अध्ययन प्राप्त कर रहे हैं। इसकी स्थापना 1921 में भारतीय विधान परिषद् के ढाका विश्वविद्यालय अधिनियम 1920 के अंतर्गत की गई थी। जिसका सिद्धांत "शिक्षा आलो" अर्थात 'शिक्षा प्रकाश' है।

बांग्लादेश में भारत और भारतीय संस्कृति का आकर्षण चरम पर है, इसलिए यहां के लोगों में हिंदी के प्रति लगाव अधिक है। बॉलीवुड की आकर्षण शक्ति ने वहाँ के निवासियों को अपनी ओर प्रभावित किया है। वह समझ तो सकते हैं किंतु अपने उदगार और हिंदी लेखन को पढ़कर व्यक्त करने में असमर्थ हैं। इसलिए ढाका विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा संस्थान में हिंदी विभाग की स्थापना अंधेरे में प्रकाश की तरह प्रकाश पुंज के रूप में अपना स्थान रखती है। 2015 में हिंदी विभाग स्थापित हुआ किंतु पूर्णतया सक्रिय नहीं हो सका। इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र में हिंदी भाषा की कक्षाएँ 2010 से लगभग चल रही थीं तथा विश्वविद्यालय में 'अतिथि संकाय' के रूप में शिक्षकों ने कक्षाएं लीं। 2019 से 2021 में कोरोना महामारी ने अपने प्रभाव से हिंदी विभाग में प्रतिनियुक्ति

के कार्य को बाधित भी किया। मेरी प्रतिनियुक्ति 2022 में मार्च 3 से प्रारंभ हुई जब मेरा कार्यकाल आरंभ हुआ उस समय एक बैच पिछले 3 वर्षों से नामांकित था उसे पूर्ण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। विद्यार्थियों में अधिकांश विद्यार्थी स्वरोजगार और नौकरीपेशा हैं जिन्हें भारतवर्ष के साथ संपर्क और व्यवसाय के रूप में जुड़ना है और कुछ चिकित्सा सुविधा के लिए भारत के चिकित्सकों से जुड़े हैं तथा उनका यह मानना है कि यदि वह हिंदी भाषा का ज्ञान अर्जन करेंगे तो उनको सुविधा होगी। ऐसी स्थिति को समझ कर पाठ्यक्रम का आंकलन करना और सुनिश्चित करना भी हिंदी भाषा की प्रथम आवश्यकता की कड़ी है। हिंदी भाषा का पाठ्यक्रम और अन्य 14 विदेशी भाषाओं का पठन- पाठन ढाका विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा संस्थान का हिस्सा है जिसमें 4 वर्षों में पाठ्यक्रम को पूर्ण करना पूर्व से निश्चित किया गया है। चार स्तरों में विभाजित कोर्स क्रमशः इस प्रकार थे–कनिष्ठ श्रेणी, वरिष्ठ श्रेणी, डिप्लोमा और वरिष्ठ डिप्लोमा।

तदुपरांत पाठ्यक्रम में परिवर्तन के लिए विषय विशेषज्ञों और विश्वविद्यालय समिति की बैठक में यह निश्चित किया गया कि समयानुसार विषय सामग्री और स्तरों के चार वर्षीय पाठ्यक्रम में संशोधन की आवश्यकता है। इस कार्यक्रम के तहत हिंदी विभाग की प्रमुख की भूमिका का निर्वहन करते हुए पाठ्यक्रम में परिवर्तन का कार्य मेरे द्वारा पूर्ण किया गया। जिसको ढाका विश्वविद्यालय की मान्यता भी प्राप्त हुई, पाठ्यक्रम निर्धारण करते समय निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना अति आवश्यक था। बांग्लादेश के हिंदी प्रेमियों के रुझान और झुकावों पर पाठ्यक्रम केंद्रित करना अत्यंत महत्वपूर्ण था। पाठ्यक्रम व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक सामर्थ्य को परिपूर्ण करने वाला होना चाहिए था और विद्यार्थियों की क्षमता और रुचियों के साथ ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक पक्षों को ध्यान में रखकर बनाना था इसके अतिरिक्त समाज, संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रीयता और अंतरराष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण हो और व्यक्ति विशेष के मनोवैज्ञानिक निर्माण में सहायक हो, इसका भी पूरा ध्यान रखा। पाठ्यक्रम संरचना में प्रथम हिंदी भाषा के प्रारंभिक स्वरूप से विद्यार्थियों को अवगत कराने के लिए भाषायी दक्षता श्रवण, वाचन, पाठन और लेखन को भी माध्यम बनाना अत्यंत आवश्यक रहा।

लेखन के अंतर्गत प्रारंभ ध्वनियों द्वारा लिपिबद्ध कर अभ्यास प्रक्रिया पहला प्रयास था। तदुपरांत शब्द निर्माण और शब्दों के अर्थ दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने के आधार पर करवाना जिससे विद्यार्थियों में रोचकता उत्पन्न हो यह एक सकारात्मक प्रयास का हिस्सा रहा। ढाका विश्वविद्यालय में पूर्व में चल रहे पाठ्यक्रमों के नाम में परिवर्तन के

साथ-साथ विषय सामग्री में भी परिवर्तन किया गया। वर्तमान में भी चार स्तरों में भाषा की शिक्षा का प्रयोजन सुनिश्चित हुआ, उनके नाम क्रमश: इस प्रकार रखे गए : एलिमेंट्री सर्टिफिकेट कोर्स, प्री इंटरमीडिएट, डिप्लोमा और हायर डिप्लोमा। पाठ्य सामग्री में भी विभिन्न श्रेणियों के अनुसार स्तर की उच्चता का मापदंड भी सुनिश्चित किया, जिससे प्रथम से द्वितीय और द्वितीय से तृतीय के स्तर की बढ़ोतरी के साथ भाषा और साहित्यिक सामग्री को भी सम्मिलित किया गया। चतुर्थ वर्ष में भाषा, व्याकरण और साहित्य का अधिक समावेश करते हुए विद्यार्थियों को भारत में आकर उच्च स्तर की हिंदी भाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर भी मिल सके ऐसी योजना के अनुरूप शिक्षित करने की प्रणाली के क्रियान्वयन में संशोधन भी किया। ढाका विश्वविद्यालय में बंगला और हिंदी भाषा की समरूपता भी कहीं सहायक तो कहीं विरोधाभास उत्पन्न करती रही। उच्चारण में आकार और ओकार की स्थिति भ्रामकता प्रदान करती है, जिसे बड़ी सूझबूझ के साथ स्वनियमावली के रूप में समझाना भी एक चुनौती पूर्ण रहा। समय-समय पर हिंदी भाषा की कार्यशाला का आयोजन और हिंदी के विशेष अवसरों पर अनेक गतिविधियों का आयोजन हिंदी शिक्षा में सफलता प्रदान करने का साक्षी बना। दोहे और चौपाइयों को अंताक्षरी के रूप में विद्यार्थियों के समूह से और काव्य पाठ भी करवाया, जिससे वहाँ के विद्यार्थियों में हिंदी की विशिष्टता परिलक्षित हुई। विशेष तौर पर भक्ति काल के कवियों की जीवन शैली और रचनाओं को बांग्ला कवियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन और शिक्षा प्रदान करने में हमें सहायता मिली और विद्यार्थी भी लाभान्वित हुए।

इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र की पहल सराहनीय रही क्योंकि समय-समय पर हिंदी भाषा की गतिविधियों का आयोजन कर पारितोषित भी किया, जिससे विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्धा की भावना ने बांग्लादेशी छात्रों के मनोबल को भी बढ़ाया। आपसी संबंधों को बनाए रखने की कला और चातुर्य की बोधगम्यता का भी अभ्यास मौखिक तौर पर सप्ताह में एक दिन अनिवार्य रूप से शामिल किया गया। भारत की सांस्कृतिक एवं शैक्षिक दूत के रूप में प्रतिनिधित्व करने का अवसर मुझे मिला जिसे भावनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में विद्यार्थियों द्वारा साकार भी करवाया। इस प्रकार से हिंदी भाषा के शिक्षण में सुगमता और बोधगम्यता ने बरबस अपना स्थान बना लिया। मौखिक और श्रवण कौशल में शिक्षाप्रद फिल्मों को दिखाया और उन्हीं विषयों पर प्रश्नोत्तरी बनाकर वाचन कौशल को भी निखारने का प्रत्येक विद्यार्थी को अवसर प्रदान किया। परीक्षा से पूर्व पाठ्यक्रम पर आधारित खाका परीक्षा अर्थात अभ्यास पत्र और ब्लूप्रिंट की सहायता से पुनरावृत्ति का भी अभ्यास करवाया। समय-समय पर ऐसा भी लगा कि विश्वविद्यालय के नियमित

पाठ्यक्रम की भांति हिंदी भाषा का भी पठन-पाठन प्रारंभ किया जाना चाहिए। हिंदी भाषा को मात्र भाषा तक सीमित न रखकर नौकरी उन्मुखता की ओर विकसित किया जाना चाहिए। बांग्लादेश के 8 राज्य और 64 जिलों में ढाका विश्वविद्यालय एक मात्र ऐसा स्थान है जहां हिंदी भाषा का पठन-पाठन हो रहा है। विद्यार्थियों की उत्सुकता को ध्यान में रखते हुए मेरा सविनय निवेदन है कि अन्य स्थानों पर भी हिंदी की कक्षाएं प्रारंभ की जाए। पीठ के कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व यदि अन्य पीठ की प्रतिनियुक्ति की जाए तो चल रही कक्षाओं में व्यवधान उत्पन्न होने से रोका जा सकता है। अंशकालिक शिक्षक की नियुक्ति में हिंदी विशेषज्ञ की अनुमति भी आवश्यक होनी चाहिए। हिंदी भाषा की अवमानना हास्यास्पद स्थिति की जनक है जो कि ढाका विश्वविद्यालय में मेरे द्वारा अनुभव की गई। भारत सरकार के इन अमूल्य प्रयासों के द्वारा बांग्लादेश ही नहीं अपितु विश्व लाभान्वित हो रहा है। अतः संबंधित विभाग से मेरा अनुनय निवेदन है कि कार्य प्रणाली पर नजर रखते हुए पाठ्यक्रम संबंधी और रोज़गारपरक हिंदी को भारत में आकर पढ़ने की रुचि रखने वाले विद्यार्थियों का भी समर्थन उसी प्रकार करें जैसे कि अन्य कोर्सेज़ में किया जा रहा है। भारतीय विश्वविद्यालय भी इन विद्यार्थियों को जोड़ने में सकारात्मक पहल कर सकते हैं, जिन विद्यार्थियों ने 4 वर्ष का कोर्स पूरा कर लिया उन्हें भारतीय विश्वविद्यालयों में दाखिला देकर हिंदी की गरिमा को बढ़ाने में विश्वविद्यालय भी योगदान दे सकते हैं। अंत में मैं यही कहना चाहती हूँ कि पीठ द्वारा 2 वर्ष में जिस भाषायी इमारत को तैयार किया जाता है उसे ढहने से बचाने का प्रयत्न होना चाहिए।

पूनम गुप्त *भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की ओर से ढाका विश्वविद्यालय में प्रतिनियुक्त हिंदी अध्यापिका रही हैं। संपर्क: mrsvpoonam@gmail.com*

मॉरीशस

अलका धनपत

मॉरीशस हिन्द महासागर में स्थित एक छोटा सा टापू है, जो हिन्द महासागर के दक्षिण-पश्चिम में है।

सन् 1907 में गिरमिट प्रथा के अधीन मॉरीशस गये भारतीय मजदूरों की मदद हेतु गांधीजी द्वारा मणिलाल डाक्टर को मॉरीशस भेजा गया। आप पेशे से वकील थे और हिंदी, गुजराती, अंग्रेज़ी तथा फ्रेंच भाषा के अच्छे जानकार थे। आपके आने से सोई जाति ने मानो करवट लेनी शुरू की। टापू के विकास में हमारा भी योगदान है, यह एहसास जागने लगा था। अपनी संस्कृति, अपनी भाषा तथा आस्थाओं को जीवित रखने के लिए ये भारतीय कटिबद्ध थे। आज मॉरीशस में ही नहीं अपितु गुयाना, सूरीनाम, फ़ीजी, त्रिनीदाद आदि में भी इन गिरमिटिया मज़दूरों ने अपनी भाषा, धर्म तथा संस्कृति को कठिन परिस्थितियों में भी बचाए रखा।

अधिकतर मज़दूर बंगाल, यूपी तथा बिहार के सीमावर्ती क्षेत्रों से लाए गए थे। ये आपस में भोजपुरी बोला करते थे। गिरमिटिया शाम को किसी पेड़ के नीचे या किसी चबूतरे पर बैठका लगाते थे। यहाँ ये मिलकर, आल्हा, बिरहा, कुछ कबीरा, मानस की चौपाइयाँ, भजन आदि का गान करते थे। कुछ लोग अपनी गठरी में सुख सागर, हनुमान चालीसा, कैथी लिपि में लिखी रामायण आदि भी लाए थे। (कुछ प्रतियाँ महात्मा गांधी संस्थान के संग्रहालय में आज भी सुरक्षित हैं) जो थोड़े साक्षर थे, उन्होंने इनकी कुछ प्रतियाँ हस्तलिखित भी बनाईं।

सन् 1907 में वकील मणिलाल डॉक्टर के कार्यों से मॉरीशस में ***हिंदी*** का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पूर्व भारतीय गिरमिटिया भोजपुरी में ही संवाद करते थे। 6-7-8 मई, 2024 को मॉरीशस में अंतरराष्ट्रीय भोजपुरी महोत्सव का आयोजन हुआ, जिसका मुख्य

उद्देश्य अपनी भाषा की इस विरासत को सुरक्षित रखना था, भोजपुरी गीत-गवाई परम्परा अब विश्व विरासत के अंतर्गत संरक्षित है। ध्यातव्य है कि जिन बच्चों को भोजपुरी का वातावरण मिलता है, वे हिंदी भी ठीक से समझ पाते हैं।

अपने प्रवास के दौरान (1907-1911) उन्होंने भारतीयों के लिए अनेक चुनौतीपूर्ण कदम उठाए, जैसे हिंदुस्थानी पत्र (1909-1911) का प्रकाशन तथा भारतीयों के हकों के लिए लिखना, डबलकट प्रथा के उन्मूलन के लिए लड़ाई, भारतीयों के शोषण के विरुद्ध अदालत में केस की पैरवी करना आदि। मणिलाल ने आर्य-समाज (1910) की भी स्थापना की। आर्य समाज ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए अथक कार्य किया। 1916 में भारत से पढ़कर आई, अनेक भारतीयों गिरमिटियों की सन्तानों ने देशवासियों के हितार्थ कार्य करना शुरू कर दिया था।

मॉरीशस को अंग्रेज़ों से आज़ादी एक लंबे संघर्ष के बाद सन् 1968 में मिली। देश ने जहाँ करवट लेनी शुरू की, वहीं देशवासियों की जीवन शैली भी तेज़ी से बदलने लगी थी। अपने पूर्वजों की भाषा एवं सरल जीवन शैली अब पिछड़ी लगने लगी थी। यूरोपीय जीवन के प्रति आकर्षण बढ़ रहा था; ऐसी लहर में भी बहुत से समाज के हितैषी अपनी सांस्कृतिक भाषा तथा अपनी संस्कृति के प्रति जागरण की लहर को पैदा कर रहे थे। इसका परिणाम यह तो हुआ कि आज सभी शिक्षण संस्थाओं में एशियन भाषाओं (हिंदी, उर्दू, तमिल, तेलुगू, मराठी) की पढ़ाई हो रही है। छात्र इसका लाभ भी उठा रहे हैं, फिर भी छात्रों की संख्या कम ही हो रही है। अब क्रियोल, मांदारिन, अरबी भाषाएँ भी इसमें जुड़ गई हैं।

अपनी सांस्कृतिक पहचान, अपनी भाषा, अपनी जीवन-शैली पर गौरव तथा अपने धर्म एवं रीति-रिवाजों का सम्मान तब भी चिंता का विषय था, जब दुर्गा पत्रिका (1935) निकलती थी और आज भी जब समाज विकासशील है। आज भी केवल आर्य सभा से आर्योदय, महात्मा गांधी संस्थान से वसंत तथा रिमझिम, हिंदी प्रचारिणी सभा से पंकज हिंदी भाषा में लगातार छप रही हैं।

एक व्यक्ति-सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' के द्वारा हिंदी आन्दोलन शुरू हुआ, लेकिन इसमें हिंदी एवं देशप्रेमी जुड़ते गए और दुर्गा पत्रिका एक आंदोलन बन गया और जनवरी 1935 से शुरू होकर 1938 तक चलता रहा। मॉरीशस में गुलामी के उस समय में जब गोरी सरकार के अत्याचारों से प्रवासी दुख एवं व्यथापूर्ण जीवन जी रहे थे और जीवन नारकीय बन गया था, तब सूर्यप्रसाद मंगर 'भगत' जैसे देशप्रेमी नवयुवक देश, जाति, धर्म

एवं भाषा के उद्धार के लिए जागृति-यज्ञ आरंभ कर रहे थे।' (दुर्गा, संपादक–गोयनका; प्रकाशक: विदेश मंत्रालय, भारत सरकार-2018; भूमिका)

महात्मा गांधी संस्थान के संग्रहालय में कैथी लिपि में लिखी कितनी ही हस्तलिखित रामायण की प्रतियां मौजूद हैं, (आज कैथी समझने वाला भारत में भी उपलब्ध नहीं है) आश्चर्य तो तब होता है जब शोधकर्ता ने हाथ से तैयार पूरी रामकथा चित्रों में उकेरी हुई देखी। संध्या समय बैठकाओं में वे झाल, ढोल, मंजीरे लेकर इन लोकगीतों को खूब गाते थे। आज भी ये गीत सोहर, ललना, विवाह-गीत, हल्दी-गीत, परछावन आदि के रूप में समाज में प्रचलित हैं। आज भी इन गीतों के प्रचलन कारण हिंदी पढ़ना तथा समझना यहाँ के लोगों के लिए आसान हो जाता है।

"हमारे पूर्वजों को भारत छोड़कर मॉरीशस आना पड़ा और अपार दुःख झेलना पड़ा। यहाँ उनको मालाबार और जगार्ना नाम दिए गए।" (जगार्ना की जीत, द्वारका, मॉरीशस, 1970) अर्थात एक ऐसी जाति जिसका कोई सम्मान नहीं है। एक गाली की तरह यह शब्द प्रयोग किए जाते थे। यहाँ तक कि 1925-1935 का समय कुछ ऐसा समय था, जब आम जगहों में हिंदी बोलना अपमानजनक समझा जाता था।

सन् 1911 में युवक काशीनाथ किष्टो लाहौर के डी ए वी कॉलेज में उच्च शिक्षा हेतु भारत गए। वहाँ उन्होंने हिंदी, संस्कृत, वैदिक-साहित्य तथा हिन्दू-धर्म का अध्ययन किया। वे एक मेधावी छात्र थे। कॉलेज के प्राचार्य लाला हंसराज भी उनसे प्रभावित थे। विद्यावाचस्पति तथा आर्योपदेशी की उपाधियों से विभूषित होने वाले आप पहले मॉरीशन थे। सन् 1916 में आप स्वदेश लौटे; आर्य परोपकारिणी सभा ने आपको प्रधान पुरोहित का पदभार सौंपा। सन् 1917 में आपने आर्यन वैदिक स्कूल की स्थापना की, यह स्कूल आज भी समाज में विशेष स्थान रखता है। पर उस समय वैदिक शिक्षाओं तथा संस्कृति के प्रचार का कार्य काफ़ी कठिन था। उनकी पुत्री लिखती हैं–'पं काशीनाथ जी द्वार-द्वार जाकर माता-पिता को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रेरित करते थे, विशेषकर लड़कियों को, क्योंकि उस ज़माने में हिन्दू अपनी पुत्रियों को पाठशाला भेजने में उतने उत्सुक नहीं थे।' ***'वे ईसाई बने लोगों को पुनः शुद्धि द्वारा हिन्दू समाज में वापिस लाते थे।' ***कभी-कभी वे अपमानित किए जाते थे तथा कभी-कभी उन पर आक्रमण भी किया जाता था।' (पं. काशीनाथ रचनावली, पृ 13, महात्मा गांधी संस्थान, 1984) आज इस प्राइमरी स्कूल में हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या सराहनीय है।

सन् 1878 में गवर्नर फ़ायरे तथा सन् 1885 में अंग्रेज़ गवर्नर हिंग्गिसन के प्रयासों से टापू के 5 स्कूलों में पूर्वीय भाषाओं का प्रयोग शुरू किया गया। ये दोनों गवर्नर कुलियों का हित भी सोचते थे। सन् 1935 तक कई महानुभावों के सफल प्रयासों के से लगभग 48 सरकारी एवं सरकार समर्थित पाठशालाओं में भारतीय भाषाएँ छात्र पढ़ने लगे थे। 1947 में पूर्वी भाषाओं के साथ-साथ फ्रेंच, अंग्रेज़ी आदि में साक्षरता की जागरूकता ने आंदोलन का रूप लेना शुरू किया। 1948-1949 में भारतीय भाषाओं का लिए संघर्ष बढ़ा। स्वतंत्रता से पूर्व तथा बाद में भी पूर्वी भाषाओं जिसमें हिंदी भी थी, इन भाषाओं को महत्व नहीं दिया गया। हिंदी तथा अन्य पूर्वी भाषाओं के विषय को मॉरीशसीय प्राइमरी शिक्षण में यूरोपियन भाषाओं यथा फ्रेंच तथा अंग्रेज़ी के बराबर नहीं रखा गया।

हिंदी विषय को अन्य विषयों के समान पूरा अधिकार तथा समकक्षता मिले, इसके लिए गवर्नमेंट टीचर्स यूनियन, मॉरीशस ने (GTU) मॉरीशसीय सर्वोच्च अदालत को चुनौती देकर 1994 में, इंग्लैण्ड में प्रिवी कौंसिल तक लड़ाई लड़ी तथा उनकी जीत ने मॉरीशस में हिंदी विषय को मुख्य विषयों के समकक्ष बना दिया। अब हिंदी पढ़ने के लिए छात्र विशेष रूप से प्रेरित होने लगे।

वर्तमान में हिंदी की स्थिति को लेकर मॉरीशस देश की गणना उन देशों में होती है, जहाँ हिंदी का अध्ययन-अध्यापन पीएच.डी. स्तर तक निर्बाध हो रहा है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में भारत के बाद यदि किसी अन्य देश का नाम लिया जाता है तो वह मॉरीशस ही है। मॉरीशस में हुए ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन (2018) में मॉरीशसीय जनता का उत्साह तथा उनके साथ हिंदी में बातचीत करते हुए, विदेशों से आए सभी हिंदी प्रेमियों ने यह महसूस किया कि यहाँ हिंदी से केवल प्रेम ही नहीं वरन् हिंदी भाषा तथा संस्कृति को लोग जीते भी हैं।

मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान में अन्य कुछ भारतीय भाषाओं (तमिल, तेलुगु, भोजपुरी, मराठी, उर्दू) के साथ-साथ हिंदी भाषा का भी अध्ययन-अध्यापन होता है। यहाँ छात्र डिप्लोमा, बी.ए. पार्ट टाइम, बी.ए. ऑनर्ज़ फ़ुल टाइम तथा एम.ए. की भी शिक्षा प्राप्त करते हैं। हिंदी प्रचारिणी सभा अपनी बैठकों में परिचय, प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा की कक्षाएँ हर शनिवार/रविवार को लगाती है तथा आज उत्तमा उत्तीर्ण छात्र को हिंदी डिप्लोमा (3 वर्ष अंशकालिक) की समकक्षता प्राप्त है। उत्तीर्ण छात्र को बी.ए. पार्ट टाइम (2 वर्ष) में प्रवेश मिल जाता है। आर्य-समाज भी हिंदी तथा संस्कृत में कक्षाएं चलाता है। अत: हिंदी शिक्षण अनवरत चल रहा है। बैठकाओं के अध्यापकों को एक छोटी-सी

धनराशि भी मानदेय के रूप में दी जाती है। देश में हर छात्र अपनी संस्कृति के अनुसार भाषा का चयन करता है–जैसे मुस्लिम छात्र उर्दू अथवा अरबी भाषा का चयन करता है। तमिल परिवार का छात्र तमिल भाषा का चयन करता है।

आज हिन्दू परिवारों के लगभग सभी छात्र कक्षा छह तक हिंदी विषय का अध्ययन करते हैं। इनमें कुछ गैर हिन्दू छात्र भी अब हिंदी भाषा को सीखने में रुचि लेने लगे हैं। कक्षा 7-9 तक भी अधिकतर ये छात्र हिंदी विषय को ही लेना पसंद करते हैं। कक्षा 1-9 तक सभी भाषाओं की पुस्तकें छात्रों को देश के शिक्षा मंत्रालय से निःशुल्क मिलती हैं।

कोरोना काल से ही ऑनलाइन कक्षाओं का प्रावधान शुरू हो चुका है। प्राथमिक स्तर के लिए राष्ट्रीय टीवी पर Early Digital Learning Programme (EDLP) & Educational Video Production (EVP) कार्यक्रम लगातार चलाए जाते रहे हैं। इन सब योजनाओं में महात्मा गांधी संस्थान का भी योगदान रहता है। संस्थान की पाणिनि भाषा प्रयोगशाला में भाषा-शिक्षण संबंधी कार्यों की अनेक कार्यशालाएं चलती हैं जैसे–पूर्वी भाषाओं में कम्प्यूटर पर टंकण, नवीन हिंदी के पाठ्यक्रम पर कार्यशाला, डिजिटल पाठों का निर्माण आदि।

केंब्रिज से एस.सी., तथा एच.एस.सी. की परीक्षाओं में भी हिंदी विषय हैं, पर अन्य विषयों में अधिक रुचि तथा ये विषय व्यावसायोन्मुखी अधिक हैं। इस कारण हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में कमी आ जाती है। आज भी बी०ए० ऑनर्ज़ हिंदी में 35-40 छात्र महात्मा गांधी संस्थान में प्रवेश लेते हैं। कोरोना-काल में पूरे एक बैच का प्रवेश नहीं हो सका था।

हिंदी भाषा के इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मॉरीशस के हिंदी प्रेमियों, भारतीय संस्कृति के उपासकों को काफ़ी संघर्ष करने पड़े। आज भी अपनी भाषा तथा अस्मिता के लिए, वे अनवरत संघर्षरत हैं। कला एवं सांस्कृतिक विरासत मंत्रालय हर वर्ष राष्ट्रीय स्तर पर सभी भाषाओं में नाटक-प्रतियोगिता आयोजित करता है, हिंदी भाषा में लगभग 20-25 तक नाटक प्रस्तुत किए जाते हैं। इसमें नाटक लेखन से लेकर नाटक खेलने तक की यात्रा में अनेक पुरस्कार होते हैं।

मॉरीशस में हिंदी में छात्रों को पढ़ाने के लिए प्राइमरी एज्यूकेटर, सैकेंड्री एज्यूकेटर तथा हिंदी प्रवक्ताओं भी आवश्यकता बनी ही रहती है। इनके लिए प्रशिक्षण-कोर्स

मॉरीशस इंस्टीट्यूट ऑफ़ एज्युकेशन (MIE) तथा महात्मा गांधी संस्थान (MGI) के मिले जुले सहयोग से चलते हैं। ये कोर्स हैं–टीचर्स डिप्लोमा प्रोग्राम (TDP) पोस्ट ग्रेज्यूएट सर्टिफ़िकेट इन एज्यूकेशन (PGCE)। तृतीयक स्तर या विश्वविद्यालय स्तर पर आज हिंदी विभाग के सभी अध्यापक पी०एच०डी० हैं। प्रत्येक वर्ष इनके छात्रों के कार्यों का मूल्यांकन तथा भावी सुझाव हेतु, भारत से भाषा-विशेषज्ञ भी आते हैं।

मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अनेक संस्थाओं का अतुलनीय योगदान रहा है यथा–आर्य सभा, हिंदी प्रचारिणी सभा, आर्य रविवेद सभा, हिंदी स्पीकिंग यूनियन, विश्व हिंदी सचिवालय, रेडियो-टेलिविज़न, देश के सभी सरकारी स्कूल (4146 स्कूल) सैकेंड्री कॉलेज तथा मॉरीशस विश्वविद्यालय के अंतर्गत महात्मा गांधी संस्थान।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में मीडिया के योगदान को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। चौबीस घंटे हिंदी गानों का प्रसारण, हिंदी में वार्तालाप, साक्षात्कार, कानूनी-चर्चा, हिन्दुस्तानी समाचार आदि। टीवी पर फ़िल्में, धारावाहिक आदि आज गैर हिंदी भाषी भी देखना तथा सुनना पसंद करते हैं, तब वे हिंदी सीखने के लिए ऑनलाइन कोर्स (MGI) करते हैं।

मॉरीशस का हिन्दू पंडित समाज वह चाहे आर्यसमाजी हो या सनातनी, पूजा-पाठ, धार्मिक अनुष्ठान आदि सभी कार्य, हिंदी तथा संस्कृत में ही करते हैं। विवाह-विधि भी वे संस्कृत के मंत्रों के साथ हिंदी में ही सम्पन्न करवाते हैं।

मॉरीशस में हिंदी लेखकों की भी एक समृद्ध परंपरा है–अभिमन्यु अनत, सोमदत्त बखोरी, चिंतामणि, सूर्यदेव सीबोरत, महेश रामजियावन, पूजानन्द नेमा, बृजमोहन, भानुमती नागदान, डॉ. सुन्दर, कल्पना लालजी, सुरीति रघुनंदन, धनराज शंभु, प्रह्लाद रामशरण, सोमदत्त काशीनाथ आदि।

आज हिंदी के लिए चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं। अपने बच्चों को पढ़ाई तथा अंकों की सुविधा देने के लालच में अभिभावक चुनाव के समय हिंदी भाषा को उपेक्षित कर, देश की मातृभाषा क्रियोल का चयन करा रहे हैं। तीन वर्ष के आंकड़ों से स्पष्ट हो रहा है कि हिंदी के छात्रों की संख्या निरंतर घटती जा रही है। जो छात्र प्राइमरी स्तर पर हिंदी का चयन नहीं करता, वह आगे की पढ़ाई की यात्रा में हिंदी से पूरी तरह से कट जाता है। तब वह जीवन में हिंदी के पाँच वाक्य भी नहीं बोल पाता। हिंदी भाषा का प्रयोग केवल हिंदी

की कक्षा में ही हो रहा है, इस कारण भी हिंदी का सम्प्रेषण चिंता का विषय बना हुआ है। नई पीढ़ी को अपनी संस्कृति या भाषिक संस्कार की चिंता नहीं है। मॉरीशस एक्ज़ामिनेशन सिंडिकेट ने ग्रेड 6 के वार्षिक मूल्यांकन के जो आंकड़े दिए वे इस प्रकार हैं–

- सन् 2020-21 में हिंदी के छात्रों की संख्या थी–4642 तथा क्रियोल पढ़ने वालों की संख्या थी–2825
- सन् 2021-22 में–हिंदी के छात्र थे–5195 तथा क्रियोल पढ़ने वालों की संख्या थी–3253
- सन् 2022-23 में–हिंदी के छात्र थे -4638 तथा क्रियोल पढ़ने वालों की संख्या थी–3309

इस प्रकार क्रियोल (मातृभाषा) के बढ़ते चरण तथा उसका चयन हिंदी भाषा के छात्रों की संख्या को घटा रहा है। आज हिंदी भाषियों के लिए यह एक चिंता का विषय बन चुका है।

देश में हिंदी में एक भी सूचना पट्ट नहीं हैं। पढ़े-लिखे सभ्य समाज की बोलचाल में हिंदी पूरी तरह से ग़ायब है। फ्रेंच या अंग्रेज़ी में बात करना सामाजिक शान की बात है। नए प्राइवेट स्कूलों में हिंदी का महत्व न के बराबर है। हिंदी केवल धार्मिक कार्यों की अनिवार्यता बनकर रह गई है। ये सीमाएं हिंदी का मार्ग अवरुद्ध कर रही हैं।

अंतत: कह सकते हैं कि हिंदी की डगर है तो कठिन, पर मॉरीशस वासियों ने हिंदी को अपने हृदय में स्थान दे रखा है। आज भी मॉरीशस का हिन्दू अपनी हिंदी को एक विरासत के रूप में, अपनी आने वाली पीढ़ी को देकर जाने की चाह रखता है और उसके लिए वह प्रयास तो करता है, पर दु:ख इस बात का है कि घरों में भोजपुरी तथा हिंदी के स्थान पर बोलचाल की भाषा क्रियोल बोली ने ले ली है। आज मॉरीशस की संपर्क भाषा क्रियोल है, राजभाषा अंग्रेज़ी तथा फ्रेंच हैं। संस्कार की भाषा हिंदी है। इसलिए हिंदी आपको मॉरीशस की जनता की संपर्क-भाषा के रूप में सुनाई नहीं देती।

सहायक ग्रंथ सूची

मॉरीशस का इतिहास, पंडित आत्माराम विश्वनाथ–आत्माराम एंड संस, दिल्ली; तीसरा संस्करण 1998

हिन्दू मॉरीशस, पंडित आत्माराम विश्वनाथ–आत्माराम एंड संस, दिल्ली; तीसरा संस्करण 1998

मॉरीशस में भारतीयों का इतिहास, हज़ारीसिंह-महात्मा गांधी संस्थान; 1976

जगारना की जीत, महेश–लोंग माउंटेन, मॉरीशस; 1970

मॉरीशस का इतिहास, रामधन पूरण–मॉरीशस; 1974

काशीनाथ रचनावली–श्री रामबरण; महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस;1984

दुर्गा, मूल संपादक: ज्वालामुखी; प्रकाशक–विदेशमंत्रालय भारत, 2018

उपन्यास का समाजशास्त्र, संपादिका–गरिमा श्रीवास्तव, संजय प्रकाशन, 2016

संस्कार मंजरी, सुचिता रामदीन–महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस;1989

अलका धनपत *मॉरीशस के महात्मा गांधी हिंदी संस्थान में वरिष्ठ हिंदी प्राध्यापिका हैं, मॉरीशस की प्रसिद्ध हिंदी पत्रिका 'वसंत' की सम्पादक रही हैं। संपर्क: drdunputh@gmail.com*

रूस

हेमचन्द्र पाँडे

हिंदी का अध्ययन-अध्यापन भारतविद्या का अंग है, यद्यपि आरम्भ में विदेशों में भारतविद्या में संस्कृत तथा उससे जुड़े विषयों की ही प्रधानता थी। यह स्थिति रूस समेत सभी देशों में दिखाई देती है। कालान्तर में भारतविद्या का विस्तार हुआ और उसमें आधुनिक भारतीय भाषाएँ भी सम्मिलित हो गईं जो स्वाभाविक ही था। इस तरह भारतीय भाषाओं के साहित्य के अनुवाद तथा अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ। यही स्थिति रूसी भारतविद्या में भी दिखाई देती है।

रूस में भारतविद्या की चर्चा करते समय स्वयम् 'रूस' की अवधारणा को तीन कालों में विभाजित करना आवश्यक है–(1) पूर्व-सोवियत काल, (2) सोवियत काल, तथा (3) उत्तर-सोवियत काल। पूर्व-सोवियत काल सन् 1917 की सोवियत क्रान्ति से पहले का काल है; सोवियत काल सन् 1917 की सोवियत क्रान्ति से लेकर दिसम्बर 1991 तक सोवियत संघ के विघटन तक का काल है; तथा उत्तर-सोवियत काल पूर्व सोवियत संघ के विघटन के बाद (जनवरी 1992) से लेकर वर्तमान समय तक का काल है।

रूस में हिंदी के अध्ययन की पृष्ठभूमि

वस्तुतः पूर्व सोवियत संघ में अर्थात् सोवियत काल में हिंदी को काफ़ी बढ़ावा मिला था और उसी की निरन्तरता काफ़ी हद तक आज भी बनी हुई है। इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के नाम लिए जा सकते हैं जिन्होंने रूस में हिंदी के अध्ययन तथा अनुसन्धान की सुदृढ़ नींव रखी। ऐसे विद्वानों में तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' तथा लल्लूजी लाल कृत 'प्रेमसागर' के अनुवादक अलेक्सेइ पेत्रोविच बरान्निकोव (1890-1952) का नाम, निश्चय ही, सर्वोच्च है। अलेक्सेइ बरान्निकोव ने ही रूस में आधुनिक भारतीय

भाषाओं के अध्ययन तथा अनुसन्धान की नींव रखी थी। उनका कार्यस्थल सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय था। उल्लेखनीय है कि अ.पे. बरान्निकोव की मातृभाषा यूक्रेनी थी।

पूर्व सोवियत संघ समेत वर्तमान समय में रूस में हिंदी की स्थिति, सम्भावनाओं और चुनौतियों पर विचार करते समय यह देखना आवश्यक है कि उक्त विषय के आयाम क्या-क्या हो सकते हैं। हमारी दृष्टि में इसके अन्तर्गत जिन विषयों को सम्मिलित किया जा सकता है वे इस प्रकर हैं–

(1) हिंदी-शिक्षण तथा हिंदी की पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण;

(2) हिंदी के शब्दकोशों का निर्माण;

(3) हिंदी भाषा पर शोध-कार्य;

(4) हिंदी साहित्य पर शोध-कार्य;

(5) भारत और रूस के बीच सम्पर्क-भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका;

(6) हिंदी साहित्य का अनुवाद।

उपरोक्त विषयों में से अन्तिम विषय (6) 'हिंदी साहित्य का अनुवाद' पर पहले ही काफ़ी लिखा जा चुका है (देखें रूसी अनुवाद विशेषांक (अतिथि संपादक हेमचन्द्र पाँडे), अनुवाद, अंक 172-173, जुलाई-दिसंबर 2017; Hem Chandra Pande–A SURVEY OF LITERARY TRNSLATIONS: RUSSIAN-HINDI-RUSSIAN (रूसी भाषा में), Russian Philology, 38, 2019)। इसलिये प्रस्तुत आलेख में पहले पाँच विषयों पर विचार किया जाएगा।

हिंदी-शिक्षण तथा हिंदी की पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण. रूस में हिंदी का अध्यापन मुख्यतः दो नगरों में होता है–राजधानी मास्को और सेंट पीटर्सबर्ग (सोवियत काल में इसका नाम था लेनिनग्राद) में। मास्को में हिंदी का अध्यापन मास्को राजकीय विश्वविद्यालय के एशियाई और अफ़्रीकी देशों के संस्थान में, रूसी राजकीय मानविकी विश्वविद्यालय में तथा राजकीय अन्तरराष्ट्रीय अध्ययन विश्वविद्यालय में होता है। सेंट पीटर्सबर्ग में हिंदी का अध्यापन सेंट पीटर्सबर्ग राजकीय विश्वविद्यालय के भारतीय-आर्य भाषाशास्त्र विभाग में होता है। इन संस्थानों में हिंदी भाषा तथा साहित्य पर अनुसन्धान-कार्य भी होता आ रहा है। हिंदी में अनुसन्धान-कार्य रूसी विज्ञान अकादमी के प्राच्यविद्या संस्थान तथा भाषाविज्ञान संस्थान में भी होता है। मास्को के एक स्कूल में भी हिंदी पढ़ाई जाती रही है। आजकल इंटरनेट के माध्यम से भी हिंदी का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

पाठ्य-पुस्तक निर्माण भाषा-शिक्षण का अनिवार्य अंग है। रूस के हिंदीविदों ने समय-समय पर हिंदी सीखने की पाठ्य-पुस्तकों की भी रचना की है। आरम्भ में अ.पे. बरान्निकोव की लिखी पाठ्य-पुस्तक हिन्दुस्तानी सबसे अधिक प्रचलित थी जिसमें सारी सामग्री समानान्तर रूप से देवनागरी और उर्दू लिपियों में दी गई थी। वस्तुतः पूर्व सोवियत संघ में बीसवीं शताब्दी के सत्तर के दशक तक हिंदी और उर्दू के विद्यार्थी दोनों ही भाषाओं को सीखा करते थे।

पूर्वोक्त पुस्तक को स्थानापन्न किया उच्येब्निक यज़िका हिंदी (हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक) ने जो संयुक्त रूप से ज़.म.दीमशित्स, ओ.ग.उल्त्सिफ़ेरोव तथा व.इ.गोर्युनोव द्वारा लिखी गई थी। यह पुस्तक तीन खण्डों में है। इसका पहला संस्करण 1969 में आया था और तीसरा संस्करण 1999 में।

ताशकन्द की हिंदी विदुषी र.अ.अऊलोवा ने सन् 1969 में उच्येब्निक यज़िका हिंदी (हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक) शीर्षक हिंदी की पाठ्य-पुस्तक बनाई थी जिसकी काफ़ी प्रशंसा हुई थी। सन् 2008 में इसका संशोधित उज़्बेकी संस्करण प्रकाशित हुआ है (र.अ. अऊलोवा, ब.र. रहमातोव, म.क़. सोदिकोवा–हिंदी तिलि दर्सलिगि, 1-क़िस्म, तोशकेन्त, 2008)। इस पाठ्य-पुस्तक का उपयोग उज़्बेकिस्तान तथा कुछ पड़ोसी देशों में आज भी हो रहा है।

हिंदी सीखने-सिखाने की नई पुस्तकों में उल्लेखनीय हैं इन्दिरा गाज़ीयेवा की लिखी पुस्तकें एलेमेन्तार्नाया ग्रामातिका हिंदी (हिंदी का प्रारम्भिक व्याकरण) तथा सितुआतीव्नी हिंदी (व्यावहारिक हिंदी)। ये दोनों पुस्तकें 2006 में प्रकाशित हुई थीं। इन्दिरा गाज़ीयेवा मास्को के रूसी राजकीय मानविकी विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाती हैं। इनकी शिक्षण-पद्धति कम्प्यूटर पर आधारित है जिसमें माइक्रोसॉफ़्ट पब्लिशर का उपयोग किया जाता है। इनके सभी छात्र हिंदी के मामले में कम्प्यूटर-साक्षर हैं। इनकी ही लिखी एक अन्य पुस्तक है चितायेम इ गोवोरीम ना हिंदी (आओ, हिंदी पढ़ें और बोलें)। यह पुस्तक हिंदी की मूल रचनाओं पर आधारित है जिसमें गद्य और पद्य साहित्य के नमूने भी दिए गए हैं।

उपरोक्त पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त हिंदी सीखने-सिखाने की दो अन्य पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं जिनके लेखक हैं ओ.ग.उल्त्सिफ़ेरोव–उच्येब्निक यज़िका हिंदी. प्येर्वी गोद ओबुच्येनिया (हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक. प्रथम वर्ष) तथा उच्येब्निक यज़िका हिंदी. ओस्नोव्नोइ कूर्स. फ़्तोरोइ इ त्रेती गोद ओबुच्येनिया (हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक.

आधारभूत कोर्स. द्वितीय तथा तृतीय वर्ष)। इनका प्रकाशन वर्ष 2006 है। सन् 2008 में सामोउचीतेल यज़िका हिंदी (हिंदी स्वयम् शिक्षक) प्रकाशित हुई थी जिसकी लेखिका हैं न.न.लाज़ारेवा।

इस तरह नई-नई पुस्तकों का प्रकाशन यही दर्शाता है कि रूस में हिंदी की शिक्षण-पद्धति में निरन्तर प्रगति हो रही है। नई पुस्तकें भारत के जन-जीवन तथा रीति-रिवाजों से भी छात्रों को परिचत कराती हैं।

हिंदी के शब्दकोशों का निर्माण. किसी भी भाषा के अध्ययन में शब्दकोश अनिवार्य उपकरण होते हैं। स्वाभाविक है कि रूस के हिंदीविद् ने शब्दकोश-रचना की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है। वहाँ के हिंदी विद्वानों ने कई तरह के हिंदी-रूसी तथा रूसी-हिंदी कोश बनाए हैं। कोश-रचना की पहल अकादमिक अ.पे. बरान्निकोव के ज़माने में ही हो गई थी जिनके सम्पादकत्व में पहला हिंदी-रूसी शब्दकोश सन् 1948 में प्रकाशित हुआ था जिसके संकलनकर्ता व.म.बेस्क्रोव्नी थे। कोशकार के रूप में सबसे प्रमुख नाम व.म.बेस्क्रोव्नी का ही है जिन्होंने गे.अ. ज़ोग्रफ़, अ.स्ते. बर्ख़ुदारोव तथा पे. लिपेरोव्स्की के साथ मिलकर दो खण्डों का हिंदी-रूसी शब्दकोश बनाया था। इस शब्दकोश का प्रकाशन 1972 में हुआ था और इसकी बहुत प्रशंसा हुई थी। इस कोश का काम पूरा हो जाने के बाद व.म.बेस्क्रोव्नी जी ने अपने एक पत्र में मुझे लिखा था कि कभी-कभी तो इस काम का कोई अन्त ही दिखाई नहीं पड़ रहा था—नान्तं न मध्यम्। इसमें हिंदी के ऐसे शब्द तक शामिल हैं जो हिंदी के सामान्य शब्दकोशों में तक नहीं मिलेंगे। अर्थात् यह शब्दकोश अनुसन्धान-आधारित है और कोशकारों के परिश्रम का फल है। व.म. बेस्क्रोव्नी के नेतृत्व में उक्त कोश के रचनाकारों ने इसका संशोधित संस्करण भी तैयार कर लिया था जो (उपरोक्त स्व. अ.स्ते.बर्ख़ुदारोव जी और स्व. व्ल.पे. लिपेरोव्स्की जी द्वारा मुझे दी गई जानकारी के अनुसार) तीन खण्डों में प्रकाशित होने वाला था परन्तु तत्कालीन सोवियत संघ के विघटन के कारण वह अप्रकाशित ही रह गया। संशोधित शब्दकोश की बहुमूल्य पाण्डुलिपि भी अब उपलब्ध नहीं है और यह रूसी भारतविद्या की भारी क्षति है।

रूस और भारत में लगभग एक साथ सन् 1957 में रूसी-हिंदी कोश प्रकाशित हुए थे जिनमें से एक के संकलनकर्ता थे इ.स.रबिनोविच, म.ग. ग्रिज़ुनोवा, व.इ. गोर्युनोव तथा न.इ. दोब्र्याकोवा और सम्पादक थे व.म. बेस्क्रोव्नी तथा दूसरे कोश की रचना भारत के रूसीविद् वीर राजेन्द्र ऋषि ने की थी। भारत में प्रकाशित रूसी-हिंदी कोश का प्रकाशन

साहित्य अकादमी द्वारा किया गया था और ऐसा प्रतीत होता है कि इसके प्रकाशन में अप्रत्यक्ष पहल जवाहरलाल नेहरू द्वारा भी की गई थी।

रूस में हिंदी-रूसी छात्रोपयोगी शब्दकोश (संकलनकर्ता ओ.ग. उल्त्सिफ़ेरोव, 1962), रूसी-हिंदी छात्रोपयोगी शब्दकोश (संकलनकर्त्री नी.इ. सोन्त्सेवा, प्रथम संस्करण 1963, द्वितीय संस्करण 1985) तथा रूसी-हिंदी शैक्षिक शब्दकोश (संकलनकर्ता ज़.म. दीमशित्स, 1984) भी प्रकाशित हुए हैं।

इनके अतिरिक्त अलग-अलग विषयों के दो अन्य शब्दकोशों का उल्लेख करना भी आवश्यक है–सामान्य अर्थशास्त्र तथा विदेश व्यापार का हिंदी-रूसी व रूसी-हिंदी शब्दकोश (सम्पादक अ.इ. मेदोवोइ, 1974) और हिंदी-रूसी सामाजिक-राजनीतिक शब्दकोश (सम्पादक ब.इ. क्ल्यूयेव, 1981)। इस तरह के विषय-केन्द्रित शब्दकोशों का प्रकाशन इस ओर संकेत करता है कि तत्कालीन सोवियत सरकार को, सम्भवतः, ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि यदि स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग होने लगेगा तो रूसी से हिंदी में ऐसे विषयों की पुस्तकों के अनुवाद की माँग बढ़ेगी। इससे तत्कालीन सोवियत सरकार की दूरदृष्टि का आभास हो जाता है। यद्यपि ऐसा वास्तव में घटित नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में कुछ और चर्चा आगे '1.5. भारत और रूस के बीच सम्पर्क-भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका' शीर्षक के अन्तर्गत भी की गई है।

हिंदी भाषा पर शोध-कार्य. हिंदी के व्याकरण के सभी पक्षों पर रूसी हिंदीविदों ने काम किया है और अनेक पुस्तकें तथा लेख भी लिखे हैं जबकि स्वयम् हिंदी में इस तरह के भाषावैज्ञानिक लेख बहुत कम देखने को मिलते हैं। इस तरह की पुस्तकों तथा लेखों के कुछ ही उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं जबकि इनकी संख्या बहुत अधिक है।

सन् 1960 में प्रकाशित यज़िक हिंदी (हिंदी भाषा) शीर्षक पुस्तक में हिंदी व्याकरण का संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक परिचय दिया गया है जिसकी लेखिका हैं तत्याना कतेनीना। व.अ.मुहम्मदजानोवा ने 1967 में क् वोप्रोसु अ कतेगोरी ज़लोगा व् उर्दू, हिंदी इ उज़्ब्येक्स्कोम यज़िकाख़ (उर्दू, हिंदी और उज़्बेकी भाषाओं में वाच्य की कोटि) शीर्षक लेख लिखा था जो ताशकन्द से प्रकाशित पत्रिका वोस्तोकोव्योदेनिये. इनोस्त्रान्निये यज़िकी में प्रकाशित हुआ था। ज़ाल्मन दीमशित्स ने हिंदी व्याकरण लिखा है जिसका योगेन्द्र नागपाल द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद मास्को से 1983 में प्रकाशित हुआ था। इससे पहले दीमशित्स द्वारा लिखित पुस्तक हिंदी व्याकरण की रूपरेखा सन् 1966 में

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, से भी निकल चुकी थी। दीमशित्स के सहयोगी ओलेग उल्त्सिफ़ेरोव ने भी हिंदी व्याकरण का गहरा अध्ययन किया है। आपने हिंदी के वाक्यांश विषय पर एक पुस्तक अलग से लिखी है। आपकी ही लिखी पुस्तक हिंदी में क्रिया सन् 1979 में पराग प्रकाशन, दिल्ली, से प्रकाशित हुई थी। गे.अ.ज़ोग्रफ़ ने आर्य भाषाओं की रूप-संरचना का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन किया है। आपकी पुस्तक उत्तर भारत की लोकोक्तियाँ (इसके सह रचनाकार हैं अ.स्ते.बर्ख़ुदारोव और व.म. बेस्क्रोव्नी) मरणोपरान्त सन् 1998 में प्रकाशित हुई थी जो कई वर्षों की मेहनत का परिणाम है; इसमें हिंदी की लोकोक्तियों को विषयानुसार वर्गीकृत करके रूसी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया गया है। अ.स्ते. बर्ख़ुदारोव की हिंदी में शब्दनिर्माण (1963) नामक पुस्तक अपने विषय की अत्यन्त प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है। व्ल.पे. लिपेरोव्स्की ने तो हिंदी व्याकरण के अलग-अलग विषयों–क्रिया, वाक्य-रचना, वृत्ति आदि–पर कई पुस्तकें लिखी हैं। लिपेरोव्स्की ने ब्रज और अवधी के व्याकरण भी रूसी में लिखे हैं। हिंदी की वाक्य-रचना का व.अ. चेर्निशोव ने भी विशेष अध्ययन किया है। अ.पे. बरान्निकोव के सुपुत्र प्यो.अ. बरान्निकोव ने हिंदी की शब्द-सम्पदा के अतिरिक्त राजभाषा के रूप में हिंदी की भूमिका विषय पर भी अलग से एक पुस्तक लिखी है। ओल्गा झ़्मोतोवा ने हिंदी की क्रियाओं पर काम किया था परन्तु वह अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार गई थीं। हिंदी व्याकरण और ध्वनिविज्ञान पर लिखने वालों में स.ग. रूदिन और ता.या. येलिज़ारेन्कोवा के नाम भी उल्लेखनीय हैं। स.ग. रूदिन ने 1957 में प्रकाशित रूसी-हिंदी शब्दकोष के परिशिष्ट के रूप में हिंदी के ध्वनिविधान का परिचयात्मक विवरण लिखा था जिसमें आवश्यकतानुसार हिंदी के स्वरों और व्यंजनों की रूसी के स्वरों और व्यंजनों के साथ तुलना भी की गई है। रूस के हिंदीविदों ने कामताप्रसाद गुरु के हिंदी व्याकरण का भी रूसी में अनुवाद किया है, जबकि किसी अन्य विदेशी भाषा में इस व्याकरण का अनुवाद देखने में नहीं आया है।

पूर्व सोवियत संघ से स्वतन्त्र हुए देशों के हिंदीविदों का उल्लेख करना भी यहाँ आवश्यक है जिन्होंने भी हिंदी भाषा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इन हिंदीविदों में उज़बेकिस्तान के र. मुहम्मदजानोव तथा व.अ. मुहम्मदजानोवा और आ.नू. शमातोव के नाम उल्लेखनीय हैं। र. मुहम्मदजानोव तथा व.अ. मुहम्मदजानोवा ने हिंदी की क्रियाओं पर कई अनुसन्धानपरक लेख लिखे हैं जिनमें से एक का उल्लेख ऊपर किया गया है। आ.नू. शमातोव की लिखी क्लास्सिीचेस्की दक्खिनी पुस्तक में पुरानी दक्खिनी का भाषावैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। आ.नू. शमातोव ने दक्खिनी का

ऐतिहासिक शब्दकोश (2014) भी बनाया था जिसमें दक्खिनी साहित्य की रचनाओं में आए अनेक शब्दों के प्रयोगों के उदाहरण दिए गए हैं जिनसे पता चलता है कि ऐतिहासिक कालक्रम में उन शब्दों के प्रयोगों में किस तरह का बदलाव आया। दक्खिनी पर इस तरह का काम, सम्भवतः, भारत में भी नहीं हुआ है। इस बहुमूल्य पुस्तक की केवल चालीस प्रतियाँ ही प्रकाशित हुई हैं जिनमें से एक प्रति इन पंक्तियों के लेखक के पास भी उपलब्ध है।

हिंदी साहित्य पर शोध-कार्य. अनुवाद के साथ-साथ रूस के हिंदीविदों ने हिंदी साहित्य के विविध पक्षों पर पुस्तकें और लेख भी लिखे हैं। रामचरितमानस के अनुवादक अ.पे.बरान्निकोव ने अपने अनुवाद के साथ विस्तृत भूमिका भी लिखी थी जिसका हिंदी अनुवाद केसरी नारायण शुक्ल ने किया था और वह पुस्तिका रूप में लखनऊ से प्रकाशित भी हुई थी। रूसी विद्वानों द्वारा हिंदी साहित्य पर लिखी कुछ पुस्तकें इस प्रकार हैं– भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम में हिंदी नाटकों की भूमिका (द्रामातुर्गीया हिंदी व्-बोर्ब्ये ज़ा स्वोबोदु इ नेज़वीसिमोस्त ईन्दी), स.इ.पोताब्येन्को, 1962; हिंदी की आधुनिक कविता (सोव्रेम्येन्नया पोएज़िया हिंदी), ये.पे.चेलिशेव, 1965; हिंदी साहित्य (लितेरातूरा हिंदी), ये.पे. चेलिशेव, 1968; सुमित्रानन्दन पंत तथा हिंदी कविता में परम्परा और नवीनता, ये.पे. चेलिशेव, दिल्ली, 1970; आधुनिक भारतीय साहित्य (सोव्रेम्येन्नया लितेरातूरा ईन्दी), ये.पे. चेलिशेव, मास्को, 1981); कथाकार प्रेमचंद (प्रेमचंद–नोवेल्लीस्त), व.इ. बालिन, 1973 आदि। उपरोक्त विद्वानों के अतिरिक्त व.म. बेस्क्रोव्नी, न.अ. विश्न्येव्स्काया, न.द. गव्र्यूशिना द.म. गोल्दमान, इ.स. रबिनोविच इ.द. सेरेब्र्याकोव व.अ. चेर्निशेव, व.प. याकूनिन, न. साज़ानोवा, स. सेरेब्र्यानी आदि ने भी हिंदी साहित्य पर अनुसन्धानपरक लेख लिखे हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी भारतविद् रोबेर्त सेवेस्त्यानोविच ल्येन्त्ज़ 'पृथ्वीराजरासो' के अध्ययन की ओर आकर्षित हुए थे परन्तु मात्र 28 वर्ष की आयु में स्वर्ग सिधार जाने के कारण उनकी इच्छा अधूरी रह गई (डा. वीरेन्द्र शर्मा–'पृथ्वीराजराज रासो के प्रथम रूसी अध्येता रोबेर्त लैन्त्ज़', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 22 जून 1986, पृ. 25)। न.अ. विश्न्येव्स्काया ने हिंदी एकांकी का विशेष अध्ययन किया है जो 'भारतीय एकांकी नाटक' नाम से प्रकाशित हुआ है। उनकी इस पुस्तक में भारतेन्दु ('नीलदेवी'), जयशंकर प्रसाद ('एक घूँट'), अश्क ('लक्ष्मी, 'स्वागत है' तथा 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ') के नाटकों के अनुवाद भी सम्मिलित हैं।

हिंदी साहित्य के अध्यापन तथा अनुसन्धान के मामले में सेंट पीटर्सबर्ग राजकीय विश्वविद्यालय का भारतीय-आर्य भाषाशास्त्र विभाग शुरू से ही बहुत सक्रिय रहा है जिसका श्रेय विभाग के संस्थापक अकादमिक अ.पे. बरान्निकोव को जाता है। 1960 और उसके बाद के कुछ दशकों तक सक्रिय रहे वीक्तोर बालिन का योगदान विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है। उन्होंने हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की कविता का अध्ययन किया था जिसका प्रमाण हैं उनके द्वारा विद्यार्थियों के लिये तैयार की गईं तीन पुस्तिकाएँ–इनमें से एक है हिंदी की आरम्भिक कविता (लेनिनग्राद, 1990) जिसमें गोरख-बानी, पृथ्वीराज रासो तथा बीसल देव रासो के अंश संकलित हैं; दूसरी पुस्तिका है विद्यापति (लेनिनग्राद, 1991) जिसमें विद्यापति के कुछ पद संकलित हैं; तीसरी पुस्तिका है बीसवीं सदी की हिंदी कविता (लेनिनग्राद, 1991) जिसमें मैथिलीशरण गुप्त से लेकर अज्ञेय तक लगभग सभी प्रमुख कवियों की कुछ रचनाओं को सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त मध्ययुगीन हिंदी कविता के छन्द-विधान पर भी वी.बालिन ने एक पुस्तिका हिंदी छन्द (लेनिनग्राद, 1989) लिखी थी। इन तीनों पुस्तिकाओं को सुन्दर हस्तलिपि में लिखा गया है क्योंकि तब टाइपराइटर की सुविधा उपलब्ध नहीं रही होगी। इस सामग्री को देखकर कहा जा सकता है कि वी.बालिन अपने विद्यार्थियों को हिंदी कविता के अध्ययन तथा अनुसन्धान के लिये पूरी तरह सक्षम बना देना चाहते थे। यह भी उल्लेखनीय है कि पूर्व सोवियत संघ में वी. बालिन प्रेमचंद के सबसे बड़े विशेषज्ञ थे।

सेंट पीटर्सबर्ग राजकीय विश्वविद्यालय के भारतीय-आर्य भाषाशास्त्र विभाग द्वारा कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित दो अन्य पुस्तकों का उल्लेख करना भी नितान्त आवश्यक है–बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की भारतीय कहानियों का संकलन मेरी ओर देखो (सेंट पीटर्सबर्ग, 2013) जिनके अनुवादक कई सारे भारतविद् हैं (न.व. गूरोव, अ.व. चेल्नोकोवा, त.प. सेलिवानोवा, यू.ग. कोकोवा; ल.अ. स्त्रलेत्सोवा, स.अ. त्सेवेत्कोवा, स.व. स्पास्स्की, ये.अ. कोस्तिना, स.स. दोन्चेन्को, ये.क. ब्रोसालिना, अ.ल. स्लादकोव, न.ग. क्रास्नोदेम्ब्स्काया, ये.व. स्मिर्नोवा, विद्या स्वर्गे तथा द.व. सोबोलेवा) और इस अनुवाद की विस्तृत भूमिका लिखी है ये.क.ब्रोसालिना, यू.ग. कोकोवा तथा अ.व. चेल्नोकोवा ने; दूसरी पुस्तक है भारतीय साहित्य के इतिहास की रूपरेखा (सेंट पीटर्सबर्ग, 2014) जिसके लेखक भी कई सारे भारतविद् हैं (ये.क. ब्रोसालिना, स.स. दोन्चेन्को,

यू.ग. कोकोवा, ये.अ. कोस्तिना, द.व. सोबोलेवा, ल.अ. स्त्रलेत्सोवा, स.अ. त्सेवेत्कोवा, अ.व. चेल्नोकोवा तथा द.ग. एर्मान)।

निश्चय ही, मास्को तथा सेंट पीटर्सबर्ग के बीच चल रही अप्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप रूस में भारतविद्या को लाभ ही पहुँचा है।

भारत और रूस के बीच सम्पर्क-भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका–भारत और रूस के बीच सम्पर्क-भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका के रूप में पहली बार विचार किया जा रहा है जो रोज़गार के अवसर पैदा कर सकती है। रूस और रूस के कुछ पड़ोसी देशों के सन्दर्भ में सबसे पहले इस बात को रेखांकित करना आवश्यक है कि किसी देश की भाषा जानने वाले विशेषज्ञ ही दो देशों के बीच, प्रथमतः, सम्पर्क स्थापित करने की मुख्य कड़ी होते हैं। इस तरह के विशेषज्ञों को तैयार करने में शिक्षण संस्थानों की प्रमुख भूमिका होती है क्योंकि शिक्षा के केन्द्रों से ही भावी भाषा-विशेषज्ञ निकलते हैं। जहाँ तक रोज़गार प्रदान करने में हिंदी की भूमिका का प्रश्न है, इसे हम शिक्षा से जोड़कर देख सकते हैं। रूस तथा उसके कुछ पड़ोसी देशों में हिंदी सीख रहे विद्यार्थी ही हिंदी के भावी विशेषज्ञ बनते हैं। इसी तरह हमारे देश में भी रूसी सीख रहे विद्यार्थी ही रूसी के भावी विशेषज्ञ बनते हैं।

रूसी जानने वाले भारतीय विशेषज्ञों के लिये तो रोज़गार के द्वार खुल जाते हैं क्योंकि रूस तथा अन्य पड़ोसी देशों के बीच होने वाली औपचारिक वार्ताओं में, व्यापार आदि के क्षेत्रों में, सामान्यतः, रूसी और अंग्रेज़ी भाषाओं का प्रयोग होता है और भारतीय भाषा-विशेषज्ञ दोनों ही भाषाओं में दक्ष होते हैं। इसलिये ऐसे विशेषज्ञों के लिये रोज़गार के अवसर हो ही जाते हैं।

उपरोक्त स्थिति के विपरीत रूस के हिंदी जाननेवाले विशेषज्ञों को इस तरह के रोज़गार के अवसर नहीं अथवा बहुत कम मिल पाते हैं क्योंकि भारतीय प्रतिनिधिमण्डलों के सदस्य औपचारिक वार्ताओं में अंग्रेज़ी का ही प्रयोग करते आ रहे हैं। बड़े मनोयोग से हिंदी सीखनेवाले रूसी विद्यार्थियों का जब पहली बार ऐसी वस्तुस्थिति से सामना होता है तो उनके मन में निराशा उपजने लगती है। इसलिये यह विचारणीय विषय है कि रूस और भारत के सन्दर्भ में हिंदी को लेकर रोज़गार प्रदान करने की दिशा में किस प्रकार की सम्भावनाएँ हो सकती हैं जिससे कि रूसी शिक्षण संस्थानों में हिंदी की रोज़गारपरक सार्थकता का कुछ विस्तार हो सके और विद्यार्थियों में हिंदी सीखने के प्रति उत्साह पैदा

हो। रूस में (तथा अन्य देशों में भी) में हिंदी सीख रहे विद्यार्थियों के तरह-तरह के उद्देश्य हो सकते हैं–(अ) हिंदी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना अर्थात् बोलचाल की भाषा सीखना, (आ) साहित्य का अध्ययन करना, (इ) व्याकरण तथा भाषा का एक विषय के रूप में अध्ययन करना, (ई) व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना या बढ़ाना, (उ) हिंदीभाषी क्षेत्र की संस्कृति को जानना आदि-आदि। भाषा सीखकर इन उद्देश्यों का प्रतिफलन विभिन्न रूपों में सामने आता है। इन उद्देश्यों के ध्यातव्य बिन्दु निम्नलिखित हो सकते हैं–

(अ) बोलचाल की हिंदी भाषा जानने वाले रूसी आम जनता के साथ सीधे सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं, उन्हें किसी दुभाषिये की आवश्यकता नहीं पड़ती है। पर्यटन के लिये भारत आने वाले हिंदी सीखे हुए रूसी लोग व्यावहारिक हिंदी में अपनी दक्षता को इस रूप में फलीभूत हुआ देखते हैं। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी को व्यवहार में लाने से उनकी भाषा में निखार होता चलता है।

(आ) हिंदी में प्राप्त दक्षता, स्वाभाविक रूप से, हिंदी साहित्य के अध्ययन की ओर प्रेरित करती है। हिंदी साहित्य के रूसी अध्येता, प्रायः, छोटी कहानी से आरम्भ करके उपन्यासों में रुचि लेने लगते हैं। रूस में हिंदी साहित्य के अनेकों विद्वान हुए हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर समकालीन साहित्य तक का अध्ययन किया है और अनेकों पुस्तकें तथा लेख लिखे हैं जिनकी कुछ जानकारी ऊपर दी गई है।

(इ) रूस में हिंदी-शिक्षण की एक विशिष्टता है हिंदी व्याकरण तथा भाषा का एक विषय के रूप में अध्ययन। व्याकरण तथा भाषा के इस प्रकार के अध्ययन से तात्पर्य है हिंदी व्याकरण के विभिन्न पक्षों का सैद्धान्तिक अध्ययन तथा कोश-रचना। रूस के हिंदी भाषा के विशेषज्ञ हिंदी व्याकरण के विविध पक्षों पर निरन्तर शोध करते रहे हैं। इस प्रकार के अध्ययन में रूस के हिंदी विद्वान, निश्चित रूप से, काफ़ी अग्रणी माने जा सकते हैं। व्याकरण के अध्ययन के अतिरिक्त कोश-रचना भी रूस के हिंदी विद्वानों की विशेषता रही है। इस प्रकार के अध्ययनों की कुछ जानकारी भी ऊपर दी गई है।

(ई) जहाँ तक व्यापारिक सम्बन्धों की बात है, उसमें स्थिति कुछ भिन्न है, बल्कि निराशाजनक है। अनौपचारिक बातचीत में कहीं-कहीं चाहे हिंदी का प्रयोग होता

हो, औपचारिक वार्ताओं में भारत की ओर से अंग्रेज़ी का तथा रूस की ओर से रूसी का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि व्यापारिक सम्बन्धों में हिंदी को किस प्रकार रोज़गारपरक बनाया जाए–यह एक विचारणीय विषय है। इसका समाधान भी सरल नहीं है क्योंकि हमारे अपने ही देश में औपचारिक स्तर पर अंग्रेज़ी का ही बोलबाला है। सभी तरह के अभिलेख अंग्रेज़ी में तैयार किए जाते हैं, कुछ सामग्री हिंदी में भी रहती है। किन्तु जब प्रामाणिकता की बात आती है तो, अंग्रेज़ी पाठ ही प्रामाणिक माना जाता है। इस दिशा में विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है जिसका आरम्भ प्रचार-सामग्री के अनुवाद से किया जा सकता है। व्यापार के अन्तर्गत आनेवाले तरह-तरह के उत्पादों को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के उद्देश्य से निर्माताओं द्वारा प्रचार-सामग्री तैयार करवाई जाती है। यदि भारत और रूस, पारस्परिक सहमति से, इस तरह की प्रचार-सामग्री के द्विभाषिक पाठों को लेकर सहमत हो जाएँ, तो इससे अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर रोज़गार प्रदान करने में हिंदी की सक्षमता, वास्तविक अर्थ में बढ़ जाएगी। सम्भवतः, इसी तरह की आशा के साथ तत्कालीन सोवियत संघ में व्यापार और आर्थिक विषयों के हिंदी-रूसी तथा रूसी-हिंदी शब्दकोश भी प्रकाशित हुए थे जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है।

(उ) हिंदी भाषा के रूसी शिक्षार्थी हिंदीभाषी क्षेत्र की संस्कृति को भी जानना चाहते हैं। हिंदीभाषी क्षेत्र की संस्कृति से तात्पर्य है इस क्षेत्र के रीति-रिवाज, पारिवारिक सम्बन्धों की विशिष्टता, सामाजिक सम्बन्ध, शिष्टाचार, खान-पान, धार्मिक परम्परा आदि। रूस से भारत आने वाले पर्यटकों की भी इनमें रुचि रहती है। किसी भी भाषा तथा उसके साहित्य को ठीक से समझने के लिये उस क्षेत्र की संस्कृति को जानना भी अपरिहार्य होता है। इसलिये रूस में (तथा अन्य देशों में भी) में हिंदी सीख रहे विद्यार्थियों के उद्देश्यों में इसे भी शामिल किया गया है।

उपरोक्त सभी बिन्दु भाषा सीखने की प्रेरणा देते हैं। यदि भाषा-ज्ञान रोज़गार से जुड़ा हो तो उससे विद्यार्थियों को अतिरिक्त प्रोत्साहन मिलता है। जहाँ तक रूस में हिंदी सीखनेवालों को प्रोत्साहन देने की बात है, इसमें भारत की ओर से ही पहल की जा सकती है। यह किस प्रकार फलीभूत होगी–कुछ कहा नहीं जा सकता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूस में हिंदी-अध्ययन के विविध आयाम हैं जिनमें से यहाँ पर हमने भाषा-शिक्षण, शब्दकोश-निर्माण, हिंदी भाषा विषयक अनुसन्धान, हिंदी साहित्य विषयक अनुसन्धान, भारत और रूस के बीच सम्पर्क-भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका जैसे विषयों पर विचार किया है। प्रत्येक विषय के अन्तर्गत हुई प्रगति से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी अध्यापन, पाठ्यपुस्तक-निर्माण, हिंदी भाषा पर अनुसन्धान, हिंदी साहित्य पर अनुसन्धान के क्षेत्रों में रूस का अपना विशिष्ट स्थान है। इनके अतिरिक्त भारत और रूस के बीच सम्पर्क-भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका विषय पर पहली बार विचार किया गया है जिसमें यह सुझाव दिया गया है कि इस दिशा में किस प्रकार आगे बढ़ा जा सकता है ताकि रूस में हिंदी सीख रहे विद्यार्थियों को प्रोत्साहन मिल सके। प्रस्तुत आलेख के यही मुख्य निष्कर्ष हैं।

अ) संक्षिप्त सन्दर्भ-सामग्री (रूसी)

1. अऊलोवा र.अ., ब.र. रहमातोव, म.क़. सोदिकोवा–हिंदी तिलि दर्सलिगि, 1-क़िस्म (हिंदी भाषा, भाग-1), तोशकेन्त, 2008. (उज़्बेकी में)
2. उल्तिसफ़ेरोव ओ.ग.–स्लोवोसोचेतानिया व् हिंदी (हिंदी के शब्दबन्ध), इज़्दातेल्स्त्वो वोस्तोच्नोइ लितेरातूरि, इज़्दातेल्स्त्वो 'नऊका', मास्को, 1971.
3. उल्तिसफ़ेरोव ओ.ग. और ब.ई.शुर्शालिन–सामान्य अर्थशास्त्र तथा विदेश व्यापार का हिंदी-रूसी व रूसी-हिंदी शब्दकोश (सम्पादक अ.ई.मेदोवोय), पृ.सं. 664, मास्को, 1974.
4. कतेनीना त.ये.–यज़िक हिंदी (हिंदी भाषा), इज़्दातेल्स्त्वो वोस्तोच्नोइ लितेरातूरि, इज़्दातेल्स्त्वो 'नऊका', मास्को, 1960.
5. त्स्वेत्कोवा स.ओ. (प्रधान सम्पादक)–ओचेर्कि इस्तोरी लितेरातूर ईन्दी–X-XX वेकोव (भारतीय साहित्य के इतिहास की रूपरेखा–दसवीं से बीसवीं शताब्दी तक), सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय प्रकाशन, सेंट पीटर्सबर्ग, 2014.
6. चेलिशेव ये.पे.–लितेरातूरा हिंदी (हिंदी साहित्य), ग्लाव्नाया रेदाक्त्सिया वोस्तोच्नोइ लितेरातूरि, इज़्दातेल्स्त्वो 'नऊका', मास्को, 1968.
7. चेलिशेव ये.पे.–सोव्रेम्येन्नाया पोएज़िया हिंदी (हिंदी की आधुनिक कविता), ग्लाव्नाया रेदाक्त्सिया वोस्तोच्नोइ लितेरातूरि, इज़्दातेल्स्त्वो 'नऊका', मास्को, 1965.
8. दीमशित्स ज़.म., ओ.ग.उल्तिसफ़ेरोव तथा व.इ.गोर्युनोव–उच्येब्निक यज़िका हिंदी (हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक), "मुराव्येइ गाइड" प्रकाशन, मास्को, 1999.

9. ब्रोसालिना ये.क. (प्रधान सम्पादक)–पोस्मोतत्रीत्ये न मेन्या–अन्तोलोगिया इन्दीस्कोवो रस्काज़ा फ़्तोरोइ पोलोवीनि XX व्येका (मेरी ओर देखो! बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की भारतीय कहानी का संचयन), सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय प्रकाशन, सेंट पीटर्सबर्ग, 2013.
10. शमातोव आ.नु.–क्लास्सिचेस्की दक्खिनी. यूझ्नी हिन्दुस्तानी XVII व्येका (क्लास्सिचेस्की दक्खिनी. 17वीं शताब्दी की दक्षिणी हिन्दुस्तानी), ग्लाव्नाया रेदाक्त्सिया वोस्तोच्नोइ लितेरातूरि, इज़्दातेल्स्त्वो 'नऊका', मास्को, 1974.
11. शमातोव आ.नु.–इस्तोरीचेस्की स्लोवार दक्खिनी (यूझ्नोवो हिन्दुस्तानी XV–XVIII वेकोव) (पन्द्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी की दक्खिनी (दक्खिनी हिन्दुस्तानी) का ऐतिहासिक शब्दकोश, ताशकन्द, 2014.
12. सोन्त्सेवा नी.इ. और ओ.ग. उल्त्सिफ़ेरोव–हिंदी-रूसी सामाजिक-राजनीतिक शब्दकोश (संपादक ब.इ. क्ल्यूयेव), पृ.सं. 535, मास्को, 1981.

आ) संक्षिप्त सन्दर्भ-सामग्री (हिंदी)

1. केसरी नारायण शुक्ल–'रूसी मानस की हिंदी भूमिका–कृतज्ञता-प्रकाश, रूसी अनुवाद विविधा-5, पृ. 25-27, 2020.
2. तोत्स्काया ओल्गा और तत्याना ओरांस्कया–'नरेन्द्र मोदी की भाषाई रणनीति और 2013-2014 के चुनाव-भाषणों में रूपकों का प्रयोग' (अनु. हेमचन्द्र पाँडे), रूसी अनुवाद विविधा-1, पृ. 9-12, 2018.
3. बेस्क्रोव्नी व.म.–'रोमा भाषा के संख्यावाचक शब्दों पर अन्यभाषी परिवेश का प्रभाव' (अनु. हेमचन्द्र पाँडे), रूसी अनुवाद विविधा-3, पृ. 7-16, 2019.
4. बेस्क्रोव्नी व.म.–'हिंदी की संयुक्त क्रिया खड़ा होना सहायक क्रिया के रूप में' (अनु. हेमचन्द्र पाँडे), रूसी अनुवाद विविधा-5, पृ. 8-13, 2020.
5. वीरेन्द्र शर्मा–'पृथ्वीराजराज रासो के प्रथम रूसी अध्येता रोबर्त लैन्त्ज़', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 22 जून, पृ. 25, 1986.
6. वीरेन्द्र शर्मा–विश्व में हिंदी के अनछुए संदर्भ, गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचर समिति, अहमदाबाद, 2002.
7. वीरेन्द्र शर्मा–'विष्णु प्रभाकर का रूसी भाषा में अनुवाद और अध्ययन', रूसी अनुवाद विविधा-2, पृ. 13-16, 2018.
8. व्लदीमिर लिपेरोव्स्की–'हिंदी भाषा की एक वाक्य-रचना', रूसी अनुवाद विविधा-2, पृ. 8-12, 2018.

9. हेमचन्द्र पाँडे (अतिथि संपादक)–'रूसी अनुवाद विशेषांक', अनुवाद पत्रिका, अंक 172-173, जुलाई-दिसम्बर, 2017.

10. हेमचन्द्र पाँडे (अनुवादक)–'भारतविद् व.म.बेस्क्रोव्नी, रूसी अनुवाद विविधा-3, पृ. 17-21, 2019.

11. हेमचन्द्र पाँडे–'अ.पे.बरान्निकोव द्वारा अनूदित "रामचरितमानस" तथा "प्रेमसागर", रूसी अनुवाद विविधा-5, पृ. 14-24, 2020.

हेमचन्द्र पाँडे *जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में रूसी विभाग के पूर्व अध्यक्ष रहे हैं।*
संपर्क: hcpande1@rediffmail.com

सूरीनाम

भावना सक्सैना

अपन भाषा में एक बात बोली
तोहसे हम्मे बहुत है प्यार
महतारी भाषा हमार —हरिदेव सहतू : *महतारी भाषा*

संसार का हर व्यक्ति अपनी मातृभाषा से प्यार करता है। वह चाहे किसी देश में रहे, कितने भिन्न भाषा-भाषियों के बीच रहे उनकी अपनी भाषा सर्वोपरि होती है। सूरीनाम के हिंदुस्तानी वंशज भी अपनी भाषा से बहुत प्यार करते हैं। लातिन अमरीका उपमहाद्वीप के शीर्ष पर बसा है देश सूरीनाम जहाँ आज गिरमिटिया वंशजों की चौथी-पाँचवी पीढ़ियाँ बसती हैं। यह सूरीनाम देश की जनसंख्या के एक तिहाई हिस्से से अधिक हैं। 4 जून 2024 को उन्होंने अपने पूर्वजों के सूरीनाम की धरती पर पहुँचने की 151वीं जयंती मनाई।

भारत से हज़ारों मील की भौगोलिक दूरी पर बसे इस देश में हिंदी की गूंज आह्लादित करती है। 5 जून 1873 को भारत के 410 लोगों को लेकर लालारुख जहाज़ पहुँचा था सूरीनाम। बाद में कुल 64 जहाज़ों द्वारा 34304 भारतीय श्रमिकों को शर्तबंदी पर सूरीनाम ले जाया गया जहाँ उन हिंदुस्तानियों को लोमहर्षक यातनाओं का सामना करना पड़ा, किंतु इस पीड़ा को उन्होंने अपने धर्म और संस्कृति के बल पर सह लिया। धर्म और संस्कृति को बचाए रखने के लिए अपनी भाषा को बचाना भी ज़रूरी था। सूरीनाम में हिंदी का बीजवपन यहीं से हुआ।

सूरीनाम में हिंदी का वृक्षारोपण

सूरीनाम आने वाला भारतीय समुदाय बहुत पढ़ा-लिखा तो नहीं था किंतु अपनी संस्कृति को जीने वाला वर्ग था, सूरीनाम में हिंदी का उदय इन्हीं गिरमिटिया मजदूरों के

माध्यम से हुआ। यहाँ आने वाले भारतीय श्रमिक मूलतः उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों से थे जहां भोजपुरी, अवधी, मगही, मैथिली, ब्रज भाषाएँ बोली जाती हैं। सूरीनाम लाकर उन्हें अलग प्लान्टेशनों में रखा जाता था जिसके कारण उनके परस्पर व्यवहार में हिंदी की बोलियों का ही प्रयोग होता था, साथ ही ये लोग रामायण, गीता, पुराण, सत्यनारायण कथा आदि साथ ले कर आए थे। दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद ये अपने साथ लाए रामचरितमानस की चौपाइयां पढ़ते आपस में मिल बैठ कर भजन करते किस्से कहानियाँ कहते और इन्ही बैठकों के माध्यम से भाषा, धर्म व संस्कृति का प्रचार होता रहा।

भाषा धर्म और संस्कृति को बचाए रखने के लिए स्वाध्याय मंडलों, हिंदी कक्षाओं मंदिर व गुप्त पंचायतों ने जन्म लिया। देवनागरी लिपि का ज्ञान रखने वाले बंधुओं ने अपनी सन्तानों व गाँव वालों को रात्रि के समय और छुट्टी के दिन पढ़ाना आरम्भ किया। यह किसी के घर या झोंपड़ी में होता था। इस तरह परोक्ष रूप से सूरीनाम में हिंदी का वृक्षारोपण हुआ। धीरे-धीरे यह वृक्ष पल्लवित होने लगा।

स्वाध्याय मंडलों द्वारा हस्तलिखित पर्चे, लेख, कहानियाँ, भजन, प्रार्थना के मंत्र, चौपाई, दोहे आदि वितरित किए जाते (1884 से 1929 तक) सन 1929 के बाद हाथ से लिखकर साइक्लोस्टाल किया जाता था। इस क्षेत्र में जिला सारामाका के व्यक्तियों ने ठोस व प्रशंसनीय कार्य किया।

आधिकारिक रूप से भी हिंदी की आवश्यकता लालारुख के आगमन के साथ ही अनुभव की जाने लगी थी। प्रथम भारतीय मजदूरों का विभाजन प्लांटेशनों में हो जाने के पश्चात स्टेट अधिकारियों अथवा मंझा ने जब मजदूरों को अपनी बात समझाने व उनकी बात समझने में कठिनाई अनुभव की तब सरकार ने अति शीघ्रता के साथ 15 जुलाई सन् 1873 में रेसुलूशी नंबर 153 जिसे सरकारी निश्चय कहते हैं के अनुसार बंगाल नामक जहाज़ से वरुणी शरण ऩामक व्यक्ति जो हिंदी-अंग्रेज़ी के अच्छे अनुवादक थे को मंगवाया और उसे तोलक की उपाधि दी।

सरकार की तरफ से नियुक्त किए गए हिंदी-अंग्रेज़ी अनुवादक या तोलक निम्नानुसार हैं–

वरुणी शरण, शीतल महाराज, हजारी शिवप्रसाद, प्लई सिंह, तुलसी कामथ अली, अकरम, बालकीसुन, रामदास जबार, दिलरोशन और उदयराज सिंह वर्मा।

सभी अनुवादक हिंदी भाषी गिरमिटियों व अहिंदी भाषी अधिकारियों के बीच का सेतु बने और धीरे-धीरे डच व अन्य भाषाओं के शब्द भी दैनिक व्यवहार में शामिल होकर भाषा को समृद्ध करने लगे और हिंदी का वृक्ष सुदृढ़ होता गया।

आज सूरीनाम में हिंदुस्तानियों का एक बड़ा वर्ग है। हिंदुस्तानी मूल के लोग सभी क्षेत्रों यथा चिकित्सा, इंजीनियरी, सरकारी कार्यालयों के प्रतिष्ठित पदों, उद्योगों आदि में अपना स्थान बना चुके हैं और हिंदुस्तानियों की स्थिति जितनी सुदृढ़ होती है उनकी भाषा भी उतनी ही सशक्त होती जा रही है।

सूरीनाम की हिंदी सेवी संस्थाएँ

151 वर्ष पश्चात सूरीनाम में हिंदी का जो रूप व विस्तार देखने को मिलता हैं वह किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था के कारण नहीं अपितु इसका श्रेय उन सभी धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं वैयक्तिक इकाइयों व हर हिंदुस्तानी वंशज को जाता हैं जो कठिन परिस्थितियों के बावजूद अपनी भाषा व संस्कृति को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रतिबद्ध थे। और आज भी सतत् रूप से हिंदी के विकास में लगे हुए हैं।

सूरीनाम में हिंदी के विकास में जिन मुख्य संस्थाओं का योगदान रहा–(1) सनातम धर्म महासभा (2) आर्य दिवाकर (3) सूरीनाम हिंदी परिषद् (4) बाबू महातम सिंह (5) माता गौरी संस्था (6) सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था तथा सूरीनाम स्थित भारतीय राजदूतावास व भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के माध्यम से सूरीनाम में हिंदी के विकास में भारत सरकार का सहयोग भी महत्वपूर्ण हैं।

सूरीनाम में हिंदी शिक्षण का आरम्भ

सूरीनाम में हिंदी का प्रचार-प्रसार भारतीयों के प्रथम आगमन से ही प्रारम्भ हो गया था। आरंभ में धार्मिक व आध्यात्मिक ग्रंथों के माध्यम से स्वभाषा हिंदी की रक्षा की गई। इन का मौखिक पाठ नित्य प्रति चलता। लोग रामायण, गीता पुराण, सत्यनारायण कथा आदि सुनते और सुनाते।

सूरीनाम में भारतीय आप्रवासियों में साक्षरों की संख्या बहुत कम थी फिर भी जो लोग शिक्षित थे उन्होने हिंदी पढ़ाई-लिखाई की परम्परा को बनाए रखने का प्रयत्न किया और इसमें अशिक्षितों ने अपनी भावी पीढ़ी के भविष्य को ध्यान में रखते हुए पूरा सहयोग

दिया। आरम्भ में हिंदी की शिक्षा धार्मिक अनुष्ठान पूजा आदि कराने वाले पंडितों द्वारा अपने घरों या लोगों के घर जाकर दी जाती थी। गाँवों में हिंदी की पढ़ाई के लिए छोटी-छोटी पाठशालाएँ खोली गईं थी जिनमें प्रायः सायंकाल अथवा अन्य सुविधा के समय पढ़ाई होती थी।

आरम्भ में भारतीय अभिभावकों ने अपने बच्चों को डच भाषा के सरकारी स्कूल में भेजना पसंद नहीं किया। इसमें भाषागत माध्यम की कठिनाई भी थी और पाश्चात्य संस्कृति की उन्मुक्तता के प्रभाव से भावी पीढ़ी में उच्छृंखलता आ जाने का डर भी। सन 1890 में डच सरकार की ओर से केवल भारतीय बच्चों के लिए स्कूलों की स्थापना हुई जिसमें शिक्षक भी भारतीय थे। इसमें हिंदी व अन्य विषयों की भांति डच भाषा भी पढ़ाई जाती थी। इन्हें **कुली स्कूल** कहा गया। लगभग 15 वर्ष तक इस प्रकार के स्कूल चलते रहे। धीरे-धीरे भारतीयों के मन से सरकारी स्कूलों में बच्चों को भेजने की झिझक दूर हो गई और इन विशिष्ट कुली स्कूलों को 1906 में समाप्त कर दिया गया। इसके बाद भी सन 1929 तक सरकारी स्कूलों में हिंदी की शिक्षा दी जाती रही।

इस शिक्षा का रूप यह था कि हिंदी भाषा एक विषय के रूप में पाठयक्रम का अंग नहीं थी। विद्यालय का समय पूरा होने से पहले अन्तिम घण्टों में अथवा विद्यालय समय के बाद हिंदी पढ़ाई जाती थी किन्तु यह छात्रों के लिए स्वैच्छिक थी, अनिवार्य नहीं। परीक्षा की बाध्यता न होने तथा छुट्टी के समय हिंदी की पढ़ाई के कार्यक्रम को किशोर-मन किस प्रकार ग्रहण करता, यह सभी जानते हैं। भारत से नए श्रमिकों का आना 1916 में बन्द हो गया था और विधिक रूप में करार की अवधि भी समाप्त हो चुकी थी। चौथे दशक तक सरकारी स्कूलों से हिंदी शिक्षण की सुविधा भी समाप्त कर दी गई।

अतः स्पष्ट हैं कि सन 1873 से 1928 ई तक प्रायः 56 वर्षों तक किसी न किसी रूप में हिंदी के अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था सरकारी विद्यालयों तथा स्वैच्छिक संस्थानों में चलती रही। सन 1929 से सरकारी विद्यालयों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन बंद हो गया और सरकारी स्कूलों से नाम मात्र उक्त सुविधा से भी वंचित हो जाने पर भारतीय मूल के लोगों को चिन्ता हुई और तब कुछ संस्थाएं आगे आई जिनमें आर्य समाज की विचार धारा वाली स्थानीय संस्था आर्य दिवाकर और सनातम धर्म तथा शांति दल प्रमुख थीं। बहुत से उत्साही नौजवान भी आगे आए और स्थानीय सहयोग और निजी प्रेरणा से मंदिरों और सार्वजनिक स्थानों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी। इसके पश्चात हिंदी शिक्षण कार्य की बागडोर पूर्ण रूप से स्वैच्छिक संस्थानों नें संभाली।

वह पढ़ाई स्वाभाविक था कि हिंदी के आरम्भिक ज्ञान अथवा केवल अक्षर पहचान तक ही सीमित रही। इस प्रकार हिंदी सीखे अनेक लोग बताते हैं कि उन दिनों हिंदी का जो पाठयक्रम अपना लिया गया था, उनमें चाणक्य नीति, रामायण और वैदिक ज्ञान प्रमुख थे। शिक्षक प्रायः चाणक्य नीति अथवा वैदिक ज्ञान के श्लोक अथवा रामायण के प्रसंगों का पाठ करते और छात्रों को उनका अर्थ समझाते। आरम्भिक अक्षर पहचान से छात्र को उन अंशों को पढ़ने व पहचानने का ज्ञान हो जाता था इस शिक्षण का अगला चरण अर्जित ज्ञान को संभाषण द्वारा प्रकट करना था जिसकी उस समय आर्य समाज व सनातन धर्म के बीच प्रायः हर स्तर पर होने वाले वाद-विवाद में उपयोगिता महसूस होती थी और इसके लिए अध्यापकों द्वारा छात्रों को निरंतर प्रोत्साहित किया जाता था। इस धार्मिक ज्ञान के अतिरिक्त भाषा ज्ञान के लिए भारत के श्री वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई द्वारा प्रकाशित **श्री नाथू राम की हिंदी पुस्तक** जो चार भागों में हैं, सूरीनाम के हज़ारों छात्रों के लिए वर्षो तक निंरतर आरम्भिक कक्षाओं के लिए एकमात्र पुस्तक रही। लोक संगीत चौताल आदि के माध्यमों ने भी बोलचाल में हिंदी के प्रयोग को बनाए रखने में बहुत सहायता की।

सूरीनाम में हिंदी–वर्तमान स्वरूप व समस्याएँ

सूरीनाम में पहले हिंदी शिक्षण के लिए केवल नाथूराम की पुस्तकें प्रचलित थी, पहली से चौथी पुस्तक। इसके बाद सन् 1960 में, बाबू महातम सिंह सूरीनाम आए। उन्हें भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा हिंदी पढ़ाने के लिए गयाना भेजा गया था। वहाँ अपना कार्यकाल पूरा करने के बाद, आप सूरीनाम आ गए और जीवन पर्यन्त यहीं रहे। सूरीनाम में मानक हिंदी के शिक्षण का पूरा श्रेय बाबू महातम सिंह को जाता है। आज सूरीनाम के 37 प्रतिशत लोग हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं जिनमें हिंदुस्तानी मूल से इतर जातियों के लोग भी हैं। किंतु यहाँ की सरकारी पाठशालाओं में आज भी हिंदी शिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है। कुली पाठशालाओं के बंद होने के बाद, हिंदी शिक्षण की बागडोर मंदिरों ने संभाली। इन मंदिरों में सप्ताह में एक बार हिंदी की कक्षाएं लगती हैं। **सौ से अधिक** स्वैच्छिक हिंदी अध्यापक इन मंदिरों में हिंदी पढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त हिंदी को लोकप्रिय बनाने में जन संचार माध्यमों का भी अत्यधिक योगदान है। पहले रेडियो और अब रेडियो के साथ-साथ टेलीविज़न। ऐसे कई चैनल हैं जो दिन भर हिंदी के गाने और फिल्में दिखाते हैं। यहाँ के बहुत से लोगो को हिंदी के गाने याद हैं और उनमें से बहुत से लोग, हिंदी गाने बहुत अच्छी तरह गाते हैं। यहाँ धार्मिक साहित्य से भी हिंदी

के प्रचार-प्रसार में बहुत सहायता मिली है। मंदिरों के पंडित बहुत ही शुद्ध और परिष्कृत हिंदी बोलते हैं।

सन् 1977 में यहाँ सूरीनाम हिंदी परिषद् की स्थापना की गई। जिसे सूरीनाम सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। सूरीनाम हिंदी परिषद् अखिल सूरीनाम में प्रतिवर्ष हिंदी की परीक्षाएँ आयोजित करता है ये परीक्षाएँ, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार ली जाती हैं। भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र और भारत का राजदूतावास परीक्षाएँ आयोजित करने और शिक्षण सामग्री उपलब्ध करवाने में, परिषद् की पूरी-पूरी सहायता करता है। य़हाँ प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, प्रवेश, परिचय़, कोविद, रत्न स्तर की परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। परिचय परीक्षा का स्तर हाई स्कूल, कोविद का इंटरमीडिएट तथा रत्न का स्तर स्नातक के समकक्ष है। सिर्फ़ रत्न परीक्षा के प्रश्नपत्र राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा से तैयार हो कर आते हैं व उनकी जांच भी वहीं होती है।

कोविद पाठय़क्रम में जयशंकर प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी, संक्षिप्त गबन तथा राष्ट्रभाषा रत्न में दिनकर की रश्मिरथी, जयशंकर प्रसाद की अजातशत्रु, भगवतीशरण वर्मा कृत चित्रलेखा, आधुनिक काव्य संग्रह, हिंदी साहित्य का इतिहास, राष्ट्रभाषा और लिपि, हिंदी भाषा सिद्धांत और अध्ययन आदि शामिल हैं। कठिन पाठय़क्रम के रहते भी छात्रों की रुचि बने रहना दर्शाता है कि यहां के लोग हिंदी के गहन पठन-पाठन में भी रुचि रखते हैं।

हिंदी-शिक्षण में आधुनिक भाषा शिक्षण तकनीक को सम्मिलित करने के लिए और इसे रूचिकर बनाने के लिए, भारत के राजदूतावास ने, स्थानीय विद्वानों की सहायता से, स्थानीय आवश्यताओं के अनुकूल, रंगीन एवं आकर्षक पाठय़-पुस्तकें तैयार की हैं, ये पुस्तकें राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) पर आधारित हैं, जिनमें शिक्षकों को भी बताया गया है कि भाषा कैसे पढ़ाई जाए। अभी तक प्रारंभिक तीन स्तरों की पुस्तकें तैयार की गई हैं, जिन्हें तत्काल अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। चूँकि इन पुस्तकों को पढ़ाने का तरीका, पुराने तरीके से काफी भिन्न है, इसलिए भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र, प्रत्येक माह हिंदी शिक्षकों के लिए कार्यशाला आयोजित करता है। भारत के राजदूतावास की पहल पर तैयार की गई ये पुस्तकें, अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इसके साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र और भारत के राजदूतावास द्वारा विश्व हिंदी दिवस और अन्य अवसरों पर स्थानीय हिंदी प्रेमियों, हिंदी अध्यापकों एवं छात्रों को

सम्मिलित करके किए जाने वाले कार्यक्रमों से भी हिंदी के प्रति लोगों का उत्साह काफी बढ़ा है। इस वर्ष हिंदी की परीक्षा देने वाले छात्रों की संख्या पिछले वर्ष से दोगुनी हो गई है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान की ओर से पात्र व्यक्तियों को दो छात्रवृतियां प्रदान की जाती हैं और उन्हें आठ माह भारत में रहकर हिंदी का उच्चतर अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया जाता है। भारत सरकार छात्रवृत्ति के अतिरिक्त आने-जाने का खर्च भी वहन करती है। अब तक यहां के काफी छात्र केंद्रीय हिंदी संस्थान से हिंदी शिक्षा ग्रहण कर के वापस आ चुके हैं और उस अध्ययन का लाभ उठाकर अपने देश में हिंदी शिक्षण व प्रचार-प्रसार कर रहे हैं और ऩिरंतर साहित्य रचना भी कर रहे हैं।

सूरीनाम में हिंदी ज्ञान आज प्रतिष्ठा का प्रतीक हैं। यहाँ आपस में सरनामी हिंदी बोलने में किसी प्रकार का संकोच अनुभव नहीं किया जाता। इतना सब होने के बाद भी हिंदी शिक्षण में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसका मुख्य कारण है यहाँ की बहुभाषिक स्थिति। सात-आठ वर्ष का होते-होते यहां का हर बच्चा कम से कम चार-पाँच भाषाओं के संपर्क में आता है। ऱाजभाषा व संपूर्ण शिक्षा प्रणाली डच में होने के कारण घर पर भी डच छा जाती है और यहाँ इसके प्रति वही मानसिकता है जो भारत में अँग्रेज़ी के प्रति है कि डच ज्ञान के बिना अच्छी नौकरी मिलना संभव नहीं है। उनका मानना है कि हिंदी पढ़ने से कोई आर्थिक लाभ नहीं होता। इसके अतिरिक्त अनेक छात्रों की समस्या समयाभाव भी है। स्कूल व कॉलेज की पढ़ाई के साथ हिंदी कक्षाओं में उपस्थित होना कठिन लगता है और वे पहले या दूसरे स्तर के बाद कक्षा में आना बंद कर देते हैं। हिंदी पढ़ने से यहाँ के लोगों को कोई व्यावसायिक या आर्थिक लाभ नहीं होता है। बस उन्हें आत्म-संतुष्टि मिलती है। इन सब बातों के रहते भी सूरीनाम में हिंदी छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि न सिर्फ़ हर्ष का विषय है अपितु यह भी दर्शाती है कि भाषा व संस्कृति प्रेम के समक्ष सभी समस्याएँ गौण हो जाती हैं आज सूरीनाम का हर हिंदुस्तानी हिंदी को अपनी अस्मिता का प्रतीक मानता है।

इन सफलताओं को देखते हुए लगता है कि हिंदी को विश्व भाषा बनाने के लिए सृजनात्मक दृष्टिकोण और ईमानदार प्रयास की आवश्यकता है। साथ ही यहाँ के हिंदुस्तानी मूल के नेताओं और महत्वपूर्ण व्यक्तियों को सरकारी स्कूलों में हिंदी शिक्षण को स्थान दिलाने का सच्चा प्रयास करना होगा।

सूरीनाम में हिंदी की साहित्यिक परिधि

सूरीनाम का हिंदुस्तानी समाज आरंभ से अपनी भाषा व संस्कृति के प्रति सजग रहा और विषम परिस्थितियों के बावजूद अपनी भाषा की ज्योति को जलाए रखा। अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए वह अपनी ही भाषा का प्रयोग करना चाहता हैं।

सूरीनाम में हिंदी साहित्य रचना कब से प्रारंभ हुई यह निश्चित रूप से कह पाना कठिन हैं। सन 1873 में जब भारतीय श्रमिकों को यहां लाया गया तो उनके पास लिखने पढ़ने की कोई सुविधा नहीं थी। दिन भर के कठिन परिश्रम के पश्चात वे संध्या को आपस में बैठते व किस्से कहानियां, गीत तथा बच्चों को लोरियां सुनाते, महाभारत, रामायण, पंचतंत्र, हितोपदेश, बीरबल और अकबर की कहानियाँ सुनते सुनाते, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द और महर्षि दयानंद के विचारों की चर्चा करते। इस तरह मौखिक साहित्य जीवित रहा।

धीरे धीरे उनके अपने अनुभव, दिन भर की कठिनाइयां और जीवन का दर्द शब्दों में उभर कर आने लगा। और जैसे विलयम वर्डस्वर्थ ने कहा है–कि काव्य हृदय की तीव्रतम अनुभूतियो की सहज अभिव्यक्ति है, तो अनुभूतियां अभिव्यक्त होने लगीं और काव्य रचना आरंभ हुई किंतु यह मौखिक था। दिन भर के श्रांतक्लांत श्रमिक अपने अनुभवों को पद्य (दोहा, चौपाई, आल्हा, गीत, भजन, इत्यादि) में प्रकट करते। कुछ लोगों ने लिखना भी आंरभ किया लेकिन अधिकांश उत्पीड़ित वर्ग के पास कोई साधन न था।

सूरीनाम के साहित्य का इतिहास जानने के लिए पंडित सहतू का शोध कार्य महत्वपूर्ण हैं उन्होंने अपनी पुस्तक सूरीनाम में हिंदी भाषा और साहित्य का विकास में सूरीनाम के लिखित साहित्य को दो भागें में बाँटा हैं–(1) सन 1918 से 1960 तक (2) सन 1960 से 1975 तक व आगे।

इनके शोधकार्य से पता चलता हैं कि मुंशी रहमान खान के सूरीनाम के पहले कवि होने की आमधारणा सर्वथा सत्य नहीं हैं। मुंशी रहमान खान तथा पंडित चंद्रमोहन सिंह से पहले अनेक लोगों ने हिंदी में लिखा किंतु साधन सुलभ न होने के कारण इनके कार्य प्रकाशित नहीं हो पाए थे। कुछ पांडुलिपियां प्राप्त भी हुई हैं तथा अन्य की खोज जारी हैं।

आरंभ में ये रचनाएं धार्मिक सत्संग में भाग लेने वाले प्रचारकों द्वारा हस्तलिखित पर्चों के रूप में वितरित की जाती फिर टंकित व साइक्लोस्टाइल करके पुस्तकें निकाली जाने लगीं।

सूरीनाम में प्रवासी भारतीयों की रचनाएं संभवतः शिल्प की दृष्टि से विद्वानों को आकर्षित न कर सकें, उनमें भाषागत अशुद्धियां तथा छंद संबंधी व्यतिक्रम भी मिलें किंतु भारत से दूर इन प्रवासी भारतीयों की भावाभिव्यक्ति अवश्य मिलेगी।

इनमें सुख-दु:ख की सहज अभिव्यक्ति हैं। इन कविताओं को कई सम्मेंलनों में अत्यंत भाव विह्वल होकर सुनाया जा चुका हैं जैसे डॉक्टर जीत नरायन की कविता–

मर गइली,
धंस गइली
मट्टी में मिट गइली
देश की तागत टूट गइल
फाट गे करेजा
भकुवान हैं हम
सोचिला का होई।

तथा अमर सिंह रमण की कविता–

वही दिनवा जब याद आवेला आंखिया में भरेला पानी रे
हिंदुस्तान से भागकर अइली यही हैं अपनी कहानी रे
भाई छूटा बाप छूटा और छूटी महातारी रे
अरकटिया खूब भरमवली से कहैं पैसे कमैब भर भर थाली रे।

इसे जब श्रीमती रमण गिरमिटिया वेश में भावोद्धिग्न हो कर सुनाती थी तो श्रोता अपनी आंखों के अश्रु रोक नहीं पाते थे।

सूरीनाम के साहित्यकारों के लिए हिंदी में लिखना भारत से जुड़ने जैसा रहा। पंडित लक्ष्मी प्रसाद बलदेव (बग्गा), श्री मंगल प्रसाद, मुंशी रहमान खान, बाबू चंद्रमोहन रणजीत सिंह, महादेव खुनखुन, अमर सिंह रमण, डॉक्टर जीत नराइन, सुरजन परोही, पं. हरिदेव सहतू, रामनारायण झाव, रामदेव रघुबीर, जनसुरजनाराइनसिंह सुभाग, प्रेमानंद भोंदू सूरीनाम के प्रमुख कवि और लेखक रहे। सुशीला बलदेव मल्हू, संध्या भग्गू, तेजप्रसाद खेदू, सुशीला सुक्खू, देवानंद शिवराज, धीरज कंधई, रामदेव महाबीर भी सक्रियता से लिखते रहे। 1975 में सूरीनाम की स्वतंत्रता के बाद सूरीनाम के कई लेखक हॉलैंड जा बसे किंतु उन्होंने भी हिंदी/सरनामी साहित्य को काफी स्मृद्ध किया। पंडित सूर्यप्रसाद बीरे, रबीन सतनाराइनसिंह बलदेवसिंह, राजमोहन, सुश्री चाँदनी, चित्रा गयादीन, मार्तिन

हरिदत्त लछमन श्रीनिवासी, राज रामदास हालैंड में रहकर भी हिंदी व सरनामी के लिए सक्रिय रहे।

कुछ और लोगों ने समय-समय पर लिखा, जैसे पंडित हलधर मथुराप्रसाद, बलराम शिवनाथ, संझरी द्वारकासिंह-जेठू, बिहारी लाल कल्लू, तर्क शास्त्री लेखराम केवल, शिवरतन रामदुखी, कमला जगमोहन, रामचरण आर्य, किसुनदयाल रामदास, संतोखी सुरेंद्र, रबीन बलदेवसिंह, सुशीला बलदेव-मल्हू, संध्या भग्गू, सुशीला सुक्खु, धीरज कंधई, देवानंद शिवराज, तेजप्रसाद खेदू, अमित अयोध्या, रामदेव महाबीर, वीना अयोध्या, विकास समोधी, कारमेन जगलाल, कृष्ण कुमारी भिखारी, संध्या लल्कु, तारावती बद्री, लीलावती कल्लू, सुमित्रादेवी बलदेव। ये सभी कवि और लेखक मुख्यतः मानक हिंदी में ही लिखते रहे हैं।

सूरीनाम में हिंदी पत्र पत्रिका और जन संचार

पत्र-पत्रिकाएं

सूरीनाम में सर्वप्रथम सन 1964 में आर्य दिवाकर नाम से एक पत्र आर्य समाज द्वारा प्रकाशित किया गया। यह पत्र कई वर्ष तक अविरल प्रकाशित होता रहा है। इसमें आर्य समाज से संबंधित सामाजिक सामग्री के साथ-साथ हिंदी की विश्वजनीनता पर लेख लिखे जाते हैं। कुछ समय पंड़ित शिवरतन जी के संपादन में सरस्वती मासिक पत्र का प्रकाशन हुआ। यह एक साहित्यिक पत्र था तथा वहाँ स्थापित सरस्वती प्रेस से इसका प्रकाशन होता। उस समय सूरीनाम में यही एक मात्र हिंदी प्रेस थी। सरस्वती ने लघु पत्र होते हुए भी अपनी सही भूमिका निभाई। सूरीनाम के निकेरी शहर से दूसरा भारतोदय नाम का पत्र निकला गया और भारतोदय प्रेस की स्थापना भी हुई किन्तु आर्थिक कठिनाई के कारण प्रेस और पत्रिका दोनो को अकाल ही काल के गाल में जाना पड़ा। निकेरी में प्रवासी भारतीयों की संख्या सर्वाधिक है। सन 1975 में डॉक्टर ज्ञान हंस अधीन के संपादन में **धर्म प्रकाश** और पंड़ित शिवरतन जी के संपादन में **वैदिक संदेश** का एक साथ प्रकाशन हुआ किन्तु ये पत्र भी अधिक दिन तक नहीं चल सके। डॉक्टर अधीन ने हिंदी-डच कोश भी लिखा है। इन्होंने बनारस से हिंदी की शिक्षा प्राप्त की। इनके अथक प्रयास के बाद भी पत्रिका का प्रकाशन जारी न रह सका। इसके बाद एक अन्य हिंदी सेवी भक्त श्री कालपू जी ने अपने व्यय से हिंदी शिक्षण रिकार्ड बनवाया और इसके माध्यम

से हिंदी के प्रचार को योग दिया। फलतः हिंदी एक संचार साधन के रूप में विकसित हुई जिसका लोगो ने अतिशय स्वागत किया किन्तु कालांतर में यह प्रयोग भी असफल हुआ।

श्री प्रेमानंद के संपादन में **प्रेम संदेश** मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसमें साहित्य की प्रायः सभी विधाओं को स्थान मिलता था। इसका प्रकाशन साइक्लोस्टाइल पद्धति से होता था। किन्तु दो-तीन वर्षों तक हिंदी की सेवा कर इसका भी प्रकाशन बन्द हो गया। इसी प्रकार श्री महातम सिंह के संपादन में **शांतिदूत** मासिक पत्र का प्रकाशन हुआ। श्री सिंह ने इसकी रक्षा के लिए भरपूर साहस और लगन से कार्य किया किन्तु यह भी अंततः बंद हो गया। इसका मुद्रण भी साइक्लोस्टाइल विधि से होता था। कुछ दिनो तक यह सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। गांधी सांस्कृतिक भवन के शांतिदल द्वारा **प्रकाश** नाम का साप्ताहिक पत्र निकल रहा था। इसी के साथ एक अन्य पत्र **विकास** का भी प्रकाशन हो रहा था। सूरिनाम हिंदी परिषद् से वर्ष 1998 से **सूरीनाम दर्पण** नामक द्विमासिक पत्रिका आरंभ की गई किंतु कुछ वर्ष पश्चात यह भी बंद हो गई। वर्ष 2004 से सूरीनाम हिंदी परिषद् के अंतर्गत विद्यानिवास सूरिनाम साहित्य संस्थान से **हिंदीनामा** नामक मासिक अख़बार का प्रकाशन आरंभ किया गया किंतु यह भी सतत रूप से प्रकाशित नहीं हो पाता। पंडित हरिदेव सहतू के निर्देशन में गठित सूरिनाम साहित्य मित्र संस्था द्वारा जनवरी 2003 से चतुर्मासिक पत्रिका **शब्द शक्ति** का प्रकाशन आरंभ किया गया। आज सूरीनाम में यही एकमात्र हिंदी पत्रिका है।

हिंदी प्रेस व साधनों के अभाव में, अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी 1964 से आज तक सूरीनाम में हिंदी पत्रों का दीप जलता रहा है।

रेडियो केंद्रों द्वारा हिंदी का प्रयोग

सूरीनाम के रेडियो केन्द्रों तथा सिनेमाघरों ने हिंदी के प्रति विश्वास जगाने में महत्वपूर्ण कार्य किया हैं। हिंदी कार्यक्रमों के प्रसारण द्वारा सूरीनाम के समाज में हिंदी के प्रति आकर्षण पैदा हुआ हैं। देश भर में छह रेडियो केन्द्रों से हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं, यह छह रेडियो केन्द्र हैं रेडियो राधिका, रेडियो पारामारीबो, रेडियो एपिंती, संगीतमाला, रेडियो त्रिशूल, ये पाँच केन्द्र सूरीनाम की राजधानी पारामारीबो में स्थित हैं तथा एक केन्द्र रेडियो रानी पारामारीबो से 235 कि.मी. की दूरी पर निकेरी में स्थित है। इनमें भी रेडियो राधिका, संगीतमाला तथा रेडियो रानी के सभी कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित होते हैं। इन कार्यक्रमों में मुख्य प्रसारण हैं–फिल्मी गीत, फरमाइशी फिल्मी गीत, चौताल,

कजरी बैठकी, समाचार, इण्टरव्यू, मृत्यु सूचनाएँ, नारी कार्यक्रम- औरतों की दुनिया, धार्मिक प्रवचन, मजदूरों के लिए विशेष कार्यक्रम वॉयस आफ़ अमेरिका जिसमें मजदूरों की समस्याएँ, बीमारी व उनके उपचार पर चर्चा होती है, देहात की आवाज़, नौजवानों के लिए विशेष स्वर लहरी, दीन-दुखियों के लिए कार्यक्रम, मंदिरों में होने वाले कार्यक्रमों का सीधा प्रसारण।

रेडियो राधिका पर बच्चों का कार्यक्रम चंदामामा लगातार तीस वर्ष तक चलता रहा और अत्यंत लोकप्रिय रहा। इसमें कहानियों, कविताओं, पहेलियों, जिन्हें यहाँ बुझौनियाँ कहा जाता है के माध्यम से बच्चों को हिंदी भाषा व संस्कृति से जोड़ने का प्रयास किया गया। रेडियो राधिका का ट्रांसमीटर इतना सशक्त हैं कि यह गयाना तथा त्रिनिनाद तक भी सुनाई देता है।

रेडियो रानी निकेरी क्षेत्र के लोगों में काफी लोकप्रिय हैं। तथा रेडियो पारामारीबो से हिंदी के फिल्मी गीतों के अतिरिक्त गजलें, कव्वाली, चौताल, फगुवा, कजरी, बैठकी आदि के कार्यक्रम भी प्रसारित होते हैं। ये रेडियो केन्द्र व्यक्तिगत और व्यावसायिक हैं। सरकार का इन पर कोई वित्तीय नियत्रण नहीं है। शुल्क दे कर किसी भी रेडियो से आप स्वय बोल सकते हैं और दूसरो के लिए सूचनाएं व बधाई आदि प्रसारित करवा सकते हैं। ये सभी रेडियो केन्द्र सूरीनाम के भारतवंशी हिंदी भाषी जनता के प्राण हैं।

सूरीनाम के रेडियो केन्द्रों से हिंदी कार्यक्रम सुन कर जो चैन मिलता है उस आनन्द को व्यक्त नहीं किया जा सकता। भले ही कार्यक्रम का स्तर बहुत ऊँचा न हो, भाषा तो हिंदी होती है। रेडियो केन्द्रों से हिंदी के फिल्मी गीतों का प्रसारण सबसे अधिक हैं,। इन फिल्मी गीतो की सरल भाषा सुन कर भी सूरीनाम के भारतवंशी हिंदी सीखते हैं। इन लोगों में हिंदी भजन, लोकगीत, फिल्मी गीतों के अच्छे-अच्छे गायक हैं जो जन्मदिन, विवाहोत्सव, पर्वो-त्योहारों पर सभाओं में गीतों के माध्यम से जनसमूह तक हिंदी भाषा प्रचारित करते हैं।

टेलीविजन

टेलीविजन सूरीनाम सरकार के नियंत्रण में हैं, इसलिए कार्यक्रम मुख्यतः राजभाषा डच में ही प्रस्तुत किए जाते हैं। किंतु पारामारीबो तथा निकेरी शहरों के टेलीविजन केंद्रों से हिंदी की फिल्मों का नियमित प्रदर्शन होता है। कहा जाता हैं कि नई फिल्में दिल्ली

में विलम्ब से देखने को मिलती हैं जबकि सूरीनाम में वे पहले ही प्रदर्शित हो जाती हैं। फिल्मों को देखकर भी सूरीनाम के भारतवंशी हिंदी सीखते हैं। कई व्यक्ति ऐसे भी मिले जो अपेक्षाकृत काफी शुद्ध हिंदी बोलते हैं और उन्होंने सिर्फ़ फिल्में देखकर ही हिंदी सीखी है।

रंगमंच

रंगमंच के क्षेत्र में श्री अमरसिंह रमण, श्री रामदेव रघुवीर और श्री सुरजन परोही जाने-माने नाम थे। अपने समय में इनकी पीढ़ी ने *धरती के लाल, पंचवटी और महालक्ष्मी* आदि नाटकों का प्रदर्शन किया और वे सब लोकप्रिय हुए। श्री रमण ने अवसरानुकूल कई छोटे- छोटे नाटक भी लिखे।

हिंदी नाटक लेखन, अभिनय और निर्देशन में श्री रामदेव रघुवीर को सूरीनाम के भारतवंशी समाज में विशेष ख्याति मिली। इन्होंने हालैण्ड से नाट्यकला का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। भारत सरकार द्वारा सूरीनाम में नियुक्त हिंदी प्राध्यापक श्री महातम सिंह ने भी इस क्षेत्र में काफी कार्य किया।

रंगमंच के माध्यम से हिदी भाषा का काफी प्रसार हुआ किंतु आज इस परंपरा को आगे बढ़ाने वाले बहुत कम लोग हैं और यह कला धीरे-धीरे खोती जा रही है। फिर भी रामलीला का मंचन बहुत उल्लास के साथ किया जाता है और उसमें नई तकनीक का प्रयोग किया जाता है। रामलीला को उच्च स्तर प्रदान करने के लिए माता गौरी संस्थान ने 1977 व 1982 में रामलीला उत्सव आयोजित किए

कहना न होगा कि इन्ही माध्यमों के बल पर सूरीनाम के भारतवंशी अपनी भाषा और संस्कृति को बचाए हुए हैं।

सरनामी हिंदी

सरनामी हिंदी प्रायः एक नई भाषा मानी जा सकती हैं भारतीय भाषाओं की अन्य विदेशी भाषिक शैलियों के ही समान सरनामी का उद्भव भारतीय श्रमिकों के प्रवास के पश्चात हुआ। इस भाषा का आधार कई भारतीय भाषा भाषियों का संपर्क में आना है।

कहा जा सकता है कि सरनामी भोजपुरी, अवधी, मगही, मैथली, ब्रज तथा अन्य बोलियों की मिश्रित भाषा है जिसमें कालांतर में डच, स्रनांग तोंगो, जावानीज व अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का समावेश हुआ है। कुछ लोगों का मानना है कि यह भोजपुरी के सबसे

करीब है तो कुछ अवधि का अधिक समावेश मानते हैं। इस क्षेत्र में भाषावैज्ञानिक शोध अपेक्षित हैं। सरनामी हिंदी की मुख्य विशेषताएं निम्नानुसार हैं–

1. इसमें कई भारतीय भाषाओं की भाषिक प्रवृत्तियां हैं।
2. इसमें किसी भी एक भारतीय भाषा की व्याकरणिक विशेषताएं नहीं हैं।
3. आंतरिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप कई व्याकरणिक रूप सामने आए हैं जिन पर अन्य सूरीनामी भाषाओं का भी प्रभाव है।

स्रनांग तोंगो का प्रभाव

सरनामी संबंधी यह आंदोलन सन 1970 व 80 के दशक में चरम पर था किन्तु सन 1990 तक आते आते इसकी तीव्रता कम होने लगी। इस दौरान सूरीनाम में 1986 में सूरीनामी मंत्री परिषद् ने निर्णय लिया कि सरनामी हिंदी रोमन लिपी में छपेगी। (यह सूरीनाम के सरकारी राजपत्र में संकल्प सॅख्या 4562 में पारित हुआ। 1983 से 1992 के बीच **भाषा** नामक पत्रिका छपी जिसमें सरनामी हिंदी पर लेख छपे। 2009-2010 में इसके ई-संस्करण भी निकले लेकिन तब हिंदी का अंश बहुत कम रहा, आलेख डच में तो थे किंतु हिंदी सीखने को प्रोत्साहित करते थे।

वर्तमान स्थिति

बहुभाषिकता सूरीनाम के समाज की एक अंतर्निहित विशेषता है। सूरीनाम के घरों और स्कूलों में कई भाषाओं का इस्तेमाल किया जाता है। विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के संबंध में शहरी केंद्रों में सबसे अधिक विविधता है।

इस समय स्कूलों में सहायक भाषाओं के रूप में औकन, स्रानान या सरनामी का उपयोग करने में कई सीमाएँ हैं। इनमें विभिन्न क्षेत्रों और स्कूलों में विभिन्न भाषा पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों की व्यापक रूप से बिखरी प्रकृति, योग्य शिक्षकों की कमी और इन भाषाओं में शिक्षण सामग्री की उपलब्धता शामिल है। एक और महत्वपूर्ण मुद्दा इन भाषाओं (अधिकांश) का सीमित शैक्षणिक विकास है, जिसके कारण शिक्षण/सीखने की प्रक्रियाओं को व्यवस्थित करने के लिए आवश्यक वैज्ञानिक और शिक्षाप्रद शब्दावली और अवधारणाओं की कमी होती है।

आज सूरीनामी हिंदुस्तानी सरनामी हिंदी को अपनी मातृभाषा तो मानते हैं किन्तु उसका प्रयोग मुख्यतः घर के भीतर तक ही सीमित है। कार्यालयों, सार्वजनिक स्थानों

आदि पर डच व्यवहार में लाई जाती हैं तथा औपचारिक स्थानों, पूजा स्थलों आदि में मानक हिंदी का प्रयोग किया जाता है। यहाँ हिंदी को बहुत सम्मान और आदर तो दिया जाता है किंतु व्यवसाय की दृष्टि से अवसर सिर्फ़ रेडियो केंद्रों में ही उपलब्ध हैं वह भी हिंदी सीखने वालों की संख्या के अनुपात में नगण्य हैं।

वर्ष 2010 में सूरीनाम में भाषा के मानकीकरण के लिए एक भाषा आयोग गठित किया गया। हिंदुस्तानी वर्ग के दो प्रतिनिधि सूरीनाम हिंदी परिषद् के पूर्व अध्यक्ष श्री भोलानाथ नारायण जी व भाषाविद् श्रीमती लीला गोबरधन इस भाषा आयोग में शामिल थे। उन्होंने सरनामी को मान्यता दिलाने के लिए हिंदुस्तानी वर्ग के साथ मिलकर काफी सक्रियता से कार्य किया किंतु किसी ठोस परिणाम पर नहीं पहुँच पाए।

सूरीनाम में हिंदी की यह यात्रा जारी है और निरंतर हिंदी को समृद्ध कर रही है इसका जीता जागता प्रमाण है कुछ समय पहले प्रकाशित नव लेखिका शर्मिला रामरतन की पुस्तक *इस घाट को छोड़कर उस घाट गए* और प्रतिष्ठित कवि डॉ. जीत नाराइन का कविता संग्रह ***रहन*।** रहन की कविताओं का चक्र सूरीनाम में जिए गए जीवन पर एक शोध है। कवि अपने पुरखों के अनुभवों को गहनता से अपने भीतर उतारकर महसूस करता है और आगे बढ़ने की कोशिश करता है: स्थिति क्या है, क्या हुआ, परिणाम क्या हैं, लोग क्या महसूस करते हैं, वे किस तरह का रवैया अपनाकर नई स्थिति का सामना कर सकते हैं, ठीक वैसे ही जैसे सरनामी नई स्थितियों का सामना करती रही है।

संदर्भ सामग्री

1. Theo Damsteegt, Sarnami a living language in Language Transplanted, the Development of Overseas Hindi, edt by, Richard K. Barz and Jeff Siegel; published by Otto handrassowitz Wiesbadden, pp. 120
2. Erik Roosken, Caught between Christianization, assimilation and religious independency–The Hindustani community in Suriname.
3. Theo Damsteegt, Sarnami as anI mmigrant Koine in Atlas of the Languages, edtd by Eithne B. Carlin Arendz, published by KITLV Press, RoyalI nstitute of Linguistics and Antropology, 2002, pp 345.
4. ABS, 2005, *Suriname Census 2004, VolumeI , Demografische en Sociale Karakteristieken,* Suriname in Cijfers no. 213-2005/02, Paramaribo, Algemeen Bureau voor de Statistiek Censuskantoor.
5. हरिदेव सहतू; सूरीनाम की भाषाओं के संदर्भ में हिंदी की स्थिति; शोधाध्ययन, 1986, pp. 76

6. Tim Van Der Avoird, Determining Language Vitality; Tilburg University; 2001
7. डॉ. जीत नाराइन, रहन, 2017
8. Badri Narayan, Culture and Emotional Economy of Migration, 2017, Routledge Taylor and Francis group, pp188
9. मित्रा, एफ.एम., सूरीनाम–द लैंड ऑफ़ सेवन पीपल्स, 1979
10. महातम सिंह, भारतीय साँस्कृतिक दूत, माता गौरी संस्थान, 2003
11. हरिदेव सहतू, सूरीनाम में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास, सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था, 2006

भावना सक्सैना *भारत सरकार के राजभाषा विभाग में सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत हैं, प्रवासी भारतीय भाषा और साहित्य विशेषज्ञ हैं तथा सूरीनाम स्थित भारतीय उच्चायोग में अताशे के पद पर कार्यरत रही हैं। संपर्क: bhawnasaxenactb@gmail.com*

खंड - तीन
हिंदी: विविध प्रसंग

हिंदी प्रचार-प्रसार का वैश्विक मंच विश्व हिंदी सचिवालय

शुभंकर मिश्र

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी अपनी कई प्रकार्यात्मक भूमिकाओं में है। भावात्मक और राष्ट्रीय एकता की इस अलौकिक आभा से उद्दीप्त, हिंदी संप्रति भारत की राजभाषा है, प्रयोजनमूलक व संपर्क-भाषा है तथा सर्वोपरि जन-जन की भाषा बनते हुए हर जन-मन की अभिलाषा है।

वैश्विक स्तर पर हिंदी की पहुँच और इसकी उपलब्धता प्रवासी भारतीय समाज के माध्यम से संभव हुई, जो विभिन्न कारणों से देश की सीमा लाँघकर विदेशों में अनिच्छा या स्वेच्छावश गए। भारत से बाहर इन प्रवासियों का एक बड़ा संसार है, जो हिंदी को अपने पूर्वजों की भाषा और संस्कृति व संस्कार की भाषा मानते हुए इसे स्पृहणीय और वंदनीय मानता है। इसके पीछे का मनोविज्ञान–'भाषा गई तो संस्कृति गई' का रहा है। यही वजह है कि इन देशों में, चाहे वे गिरमिटिया देश हों या इनसे इतर, हिंदी लोक-व्यवहार, सृजन और शिक्षा-शिक्षण की भाषा बन सकी।

सुखद है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी एक महत्वपूर्ण भाषा बनती जा रही है। इसने राष्ट्रीय सीमाओं से परे नेपाल, फ़ीजी, मॉरीशस, सूरीनाम और गुयाना जैसे पड़ोसी देशों में अपनी मज़बूत उपस्थिति के साथ लोकप्रियता हासिल की है। यहाँ हिंदी एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित हुई है। गिरमिटिया प्रवासी भारतीय देशों के अलावा हिंदी रूस, चीन, जापान, इंग्लैंड, अमरीका, कनाडा, जर्मनी, इटली, फ़्रांस, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, बुल्गारिया, पोलैंड, हंगरी, ऑस्ट्रिया आदि देशों में भी खूब फल-फूल रही है। ध्यातव्य है कि दुनिया भर में 200 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पठन-पाठन और

शोध के अवसर उपलब्ध हैं। यह वैश्विक स्तर पर हिंदी की व्यापक अभिस्वीकृति का एक स्पष्ट संकेत है।

संयुक्त राष्ट्र की 'विश्व प्रवासन रिपोर्ट', 2022 के अनुसार, सन 2020 में दुनिया भर में सबसे बड़ी प्रवासी आबादी भारतीयों की थी। मैक्सिको, रूस और चीन का स्थान इसके बाद आता है। भारत के बाहर रहने वाली इस उभरती भारतीय 'सॉफ्ट पावर' के साथ, हिंदी में लोगों को परस्पर जोड़ने और इनके मध्य सांस्कृतिक अंतराल को पाटने की पर्याप्त क्षमता है।

वैश्विक स्तर पर हिंदी को बढ़ावा देने के लिए, भारत सरकार का विदेश मंत्रालय कटिबद्ध है। विदेशों में भारतीय सांस्कृतिक केंद्रों का एक विशाल नेटवर्क और चयनित मिशनों में तैनात द्वितीय सचिव और अताशे (हिंदी और संस्कृति) भाषा की पहुँच एवं उपलब्धता को बढ़ाने की दिशा में कार्य करते हैं। भारत सरकार का विदेश मंत्रालय, इस हेतु प्रतिष्ठित विश्व हिंदी सम्मेलनों और प्रवासी भारतीय दिवसों का भी आयोजन करता है। इस दिशा में मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम है। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए विश्व हिंदी सचिवालय, दोनों गणराज्यों की एक ऐसी द्विपक्षीय संस्था है, जो अटूट मैत्री और साझे प्रयत्नों के साथ दुनिया भर में हिंदी भाषा और संस्कृति को आगे बढ़ाने की दिशा में प्रयत्नशील है।

पृष्ठभूमि के रूप में उल्लेखनीय है कि सन् 1999 में एक समझौता ज्ञापन के तहत, मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हुई। अपेक्षानुसार, हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाओं में शामिल करवाने तथा वैश्विक मंचों पर उसकी प्रतिष्ठानुकूल उपस्थिति सुनिश्चित करने का दायित्व विश्व हिंदी सचिवालय को सौंपा गया।

उल्लेखनीय है कि इस संस्था के गठन का प्रस्ताव 10 जनवरी, 1975 को नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान, मॉरीशस के पहले प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम द्वारा लाया गया था। इस ऐतिहासिक प्रस्ताव को औपचारिक रूप देने के लिए दोनों गणराज्यों के बीच एक समझौता ज्ञापन (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए गए। एक वैश्विक मंच के माध्यम से अपने साझे प्रयत्नों से हिंदी के प्रचार-प्रसार की दिशा में यह एक ऐतिहासिक कदम था, जिसने हिंदी को वैश्विक भाषा के रूप में बढ़ावा देने हेतु भारत के नेतृत्व को प्रदर्शित किया। सचिवालय का विजन (दृष्टि) हिंदी का अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रचार तथा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए एक वैश्विक मंच तैयार करना है।

हिंदी की वैश्विक व्याप्ति और लोकप्रियता के लिए विश्व हिंदी सचिवालय, विभिन्न स्तरों पर भाषिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, अकादमिक, प्रौद्योगिकीय, शोधात्मक तथा अन्य महत्वपूर्ण योजनाओं तथा गतिविधियों का संचालन करता है। हिंदी को आधिकारिक तौर पर संयुक्त राष्ट्र (यूएन) की भाषा के रूप में मान्यता मिले, इस दिशा में स्पष्ट दृष्टि के साथ योजनाबद्ध रूप से आगे बढ़ने के लिए, विश्व हिंदी सचिवालय के मिशन और कतिपय स्ट्रेटेजिक लक्ष्य संक्षेप में क्रमशः यहाँ उद्धृत हैं :

मिशन

- नवीन दृष्टिकोणों के माध्यम से हिंदी के क्षेत्र, स्तर और गुणवत्ता के विस्तार के लिए सरकार तथा संस्थानों को सहयोग प्रदान करना।
- ऐसी नीतियों तथा व्यवस्था का प्रसार करना जिससे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी शिक्षण को सुविधाजनक बनाया जा सके।
- प्रतिष्ठित विद्वानों तथा हिंदी शिक्षण और अधिगम में संलग्न उच्च ख्यातिलब्ध अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ संपर्क रखना।
- प्रकाशनों तथा आई.सी.टी. नेटवर्क द्वारा विश्व भर में हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबद्ध जानकारियों का प्रसार करना।

सामरिक लक्ष्य

- हिंदी साक्षरता, हिंदी पठन-पाठन और आजीवन शिक्षण को प्रोत्साहित तथा सहायता प्रदान करने हेतु परियोजनाएँ तथा कार्यक्रमों को विकासशील बनाने के लिए, वैश्विक स्तर पर देशों तथा पुस्तकालयों को सहयोग प्रदान करना।
- अनुसंधान का निरीक्षण तथा प्रचार करना, तदोपरांत अनुसंधान के परिणामों को वैश्विक स्तर पर हिंदी के क्षेत्र में प्रसारित करना।
- दैनिक जीवन में संचार माध्यम के रूप में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहित करना।
- विश्व भर में प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर हिंदी पठन-पाठन का प्रसार करना।
- हिंदी भाषा के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए लगातार केंद्रित और समर्पित गतिविधियों का आयोजन करना।

- हिंदी लेखकों, प्रकाशनों, संस्थानों तथा अन्य सहयोगियों का एक डेटाबैंक स्थापित करना और उसे अद्यतन रखना।
- विश्व भर में हिंदी बोलने वाले समुदायों के बीच एक नेटवर्क स्थापित करना।
- हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा भाषा में गहन अनुसंधान करने के लिए समीचीन पुस्तकों, पत्रिकाओं और मल्टीमीडिया सुविधाओं से युक्त एक संसाधन केंद्र की स्थापना।
- विशेषज्ञता के हब के रूप में कार्य करना, जिससे हिंदी विशेषज्ञों का संचालन सुविधाजनक बने।
- हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा भाषा में गहन अनुसंधान करने के लिए समीचीन पुस्तकों, पत्रिकाओं और मल्टीमीडिया सुविधाओं से युक्त एक संसाधन केंद्र की स्थापना।

कहना नहीं होगा कि विश्व हिंदी सचिवालय अपने मिशन और स्ट्रेटेजिक लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में कृतसंकल्प है और इस दिशा में कई अभिनव योजनाओं को मूर्त रूप दे रहा है। इस दिशा में कतिपय भागीरथ प्रयत्नों में विश्व हिंदी डेटाबेस का निर्माण एक महत्वपूर्ण कदम है, जो सच्चे अर्थों में हिंदी शिक्षण में संलग्न देशी-विदेशी विद्वानों तथा संस्थाओं के असाधारण योगदानों को रेखांकित करता है। गौरतलब है कि विश्व हिंदी डेटाबेस का मूलभूत उद्देश्य हिंदी भाषा-साहित्य के अर्जन-शिक्षण-प्रशिक्षण, प्रचार-प्रसार, शोध-संदर्भ एवं उनके अनुप्रयोगों आदि में संलग्न भाषा-अध्येताओं के लिए आवश्यकतानुसार प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराना है। यह जानना भी यहाँ प्रासंगिक हो सकता है कि 'विश्व हिंदी डेटाबेस' की अभिकल्पना दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में आयोजित नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन (2012) में की गई थी। विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा विकसित निरंतर अद्यतनित आभासी मंच 'विश्व हिंदी डेटाबेस' हिंदी को वैश्विक दृष्टि से देखने, इसकी ज्ञान-विविधता का रसास्वादन करने तथा सम-विषम परिस्थिति व पृष्ठभूमि में हिंदी को आगे बढ़ाने में संलग्न विश्व समुदाय के संकल्प को एक मुखर स्वर प्रदान करता है। साथ-ही-साथ, ज्ञान और संवाद की सशक्त परंपरा को निरंतर आगे बढ़ाने में यह हम भाषा-अभियानियों की भरसक मदद करता है।

इसके अतिरिक्त विश्व हिंदी सचिवालय भाषा और साहित्य को समर्पित वार्षिक आवृत्ति वाली दो शोध पत्रिकाओं–'विश्व हिंदी पत्रिका' एवं 'विश्व हिंदी साहित्य' तथा

भाषाई तथा साहित्यिक गतिविधियों से वैश्विक समाज को अवगत कराने वाला एक त्रैमासिक पत्र 'विश्व हिंदी समाचार' का प्रकाशन भी करता है।

अपने निहित शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में सचिवालय के अन्यतम कार्यों में प्रयोजनमूलकता के आधार पर कतिपय ऑफ़लाइन और ऑनलाइन कार्यशालाओं और संकल्पमूलक विविध दिवसों का आयोजन, यथा–विश्व हिंदी दिवस, कार्यारंभ दिवस, हिंदी दिवस, विश्व संगीत दिवस, पुस्तक पठन दिवस आदि-आदि उल्लेखनीय हैं। हिंदी के विकास एवं प्रचार-प्रसार से संबंधित योजनाओं तथा रणनीतियों के निर्माण तथा क्रियान्वयन में ऐसे प्रयासों की उपादेयता निस्संदेह असंदिग्ध है।

हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बने, इस दिशा में किए गए भारतीय प्रयत्नों का एक लंबा इतिहास है। गौरतलब है कि हिंदी की गूँज संयुक्त राष्ट्र महासभा में 4 अक्टूबर 1977 को तब सुनाई पड़ी थी, जब तत्कालीन विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इसकी 32वीं आम बैठक में "मैं भारत से संदेश लाया हूँ..." कहते हुए पहली बार हिंदी में संबोधित किया। उस वैश्विक मंच पर ‹वसुधैव कुटुम्बुकम्› का सिद्धांत दोहराते हुए तत्कालीन विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पूरी दृढ़ता से भारत का पक्ष हिंदी में रखा। कहना नहीं होगा कि तब से लेकर अब तक संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी की धमक अनेक बार सुनाई पड़ी।

गौरतलब है कि हिंदी को वैश्विक भाषा के रूप में बढ़ावा देने और संयुक्त राष्ट्र में आधिकारिक भाषा के रूप में इसकी सार्वभौमिक स्वीकृति और मान्यता के क्रम में संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा हासिल करने के लिए कूटनीतिक स्तर पर भारत को 193 सदस्यीय संयुक्त राष्ट्र महासभा (यूएनजीए) में दो-तिहाई सदस्यों के समर्थन की आवश्यकता है। इस हेतु भारत संयुक्त राष्ट्र में कम से कम 129 वोट हासिल करने हेतु विभिन्न देशों से समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। इस दिशा में हमें अब तक कई आशातीत सफलताएँ मिल चुकी हैं। बहुविध स्तर पर इस दिशा में अनेक शासकीय प्रयत्न किए जा रहे हैं।

भारत द्वारा सह-प्रायोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा (यूएनजीए) में बहुभाषावाद के लिए लाए गए प्रस्ताव से हिंदी भाषा को ऐतिहासिक स्वीकृति मिली है। 10 जून, 2022 को सर्वसम्मति से अपनाया गया यह प्रस्ताव, आधिकारिक और गैर-आधिकारिक भाषाओं, जिनमें हिंदी भी शामिल है, में महत्वपूर्ण जानकारी और संदेशों के प्रसार के महत्व पर ज़ोर देता है।

भारत सरकार के प्रयत्नों से संयुक्त राष्ट्र ने हिंदी भाषा और संस्कृति को बढ़ावा देने की दिशा में कई कदम उठाए हैं। सन् 2018 में, संयुक्त राष्ट्र के भीतर हिंदी को दो वर्षों के लिए बढ़ावा देने हेतु, संयुक्त राष्ट्र और भारत सरकार के बीच एक 'स्वैच्छिक वित्तीय योगदान समझौते' पर हस्ताक्षर किए गए थे। इसे सन् 2019 में अगले पाँच वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया और वर्तमान में यह मार्च 2025 तक लागू है। इस समझौते के तहत, संयुक्त राष्ट्र ने फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम पर हिंदी सोशल मीडिया अकाउंट और यूएन न्यूज़ के लिए एक हिंदी वेबसाइट लॉन्च की है। इनके अलावा, संयुक्त राष्ट्र, 'संयुक्त राष्ट्र रेडियो वेबसाइट' पर हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित करता है, 'साउंड क्लाउड' पर एक साप्ताहिक हिंदी समाचार बुलेटिन जारी करता है तथा हिंदी में एक संयुक्त राष्ट्र ब्लॉग प्रकाशित करता है। इनके साथ ही एंड्रॉइड और आईओएस के लिए 'यूएन समाचार मोबाइल' ऐप का 'हिंदी-विस्तार' भी अब उपलब्ध है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा सन 2022 से 2032 तक स्वदेशी भाषाओं के 'अंतरराष्ट्रीय दशक' की घोषणा के साथ, स्वदेशी भाषाओं को स्वीकारना और संरक्षित करना अब और भी महत्वपूर्ण हो गया है।

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि आज की तेजी से बदलती दुनिया में निरंतर आगे बढ़ते रहने के लिए कौशल उन्नयन और पुनर्कौशलों का विकास अति-महत्वपूर्ण है। हालाँकि, औपचारिक शिक्षा आवश्यक है, परंतु निरंतर अपनी सफलता सुनिश्चित करने के लिए अनौपचारिक शिक्षा भी तथैव महत्वपूर्ण है। आज हम जिस वैश्वीकृत समाज में रह रहे हैं, उसमें हिंदी सीखना एक 'गेम-चेंजर' साबित हो रहा है।

कहना नहीं होगा कि डिजिटल युग के आगमन के साथ, हिंदी एक लोकप्रिय भाषा बन गई है और डिजिटल क्षेत्र में इसकी महत्वपूर्ण उपस्थिति है। हालाँकि हिंदी प्रचार-प्रसार के मौजूदा परिदृश्य में ‹डिजिटल भाषा विभाजन› अब भी एक चुनौती है, पर विभिन्न उन्नत तकनीकों के माध्यम से हिंदी को जनसुलभ बनाने के लिए विश्व हिंदी सचिवालय विशेष प्रयत्नशील है। इस दिशा में इप्सित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए डिजिटलीकरण की प्रक्रिया को अपनाने पर ज़ोर दिया जा रहा है ताकि हम हिंदी शिक्षुओं और भाषा-प्रेमियों में 21वीं सदी के आवश्यक कौशल, जैसे जीवनोपयोगी-कौशल, संचार कौशल, रचनात्मकता, डिजिटल साक्षरता, सांस्कृतिक जागरूकता आदि-आदि का समुचित विकास कर सकें और पारंपरिक तथा आधुनिक, दोनों ही वर्गों के विशाल समूह तक पहुँचने में सफल हो सकें।

हिंदी हमारे सपने और संवाद की भाषा है और मौलिक सोच की भाषा है। निर्विवादतः यह अखिल भारत एवं वैश्विक स्तर पर हमें एकजुट करती है। यह हमारी समृद्ध विरासत और संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। हमें इसे संरक्षित-परिवर्धित करने की दिशा में हरसंभव कार्य करने की ज़रूरत है। इस दिशा में भारत और मॉरीशस गणराज्य की द्विपक्षीय संस्था विश्व हिंदी सचिवालय अहर्निश प्रयत्नशील है और वैश्विक समाज से इसके विभिन्न सरोकारों से जुड़ने का आह्वान करती है। तो फिर देर किस बात की–शुभस्य शीघ्रम्। आइए, हम सब इस भाषा के बारे में जागरूकता बढ़ाने और इसे अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और समृद्धि के प्रतीक के रूप में संपोषित करने का संकल्प लें। हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करने और वैश्विक स्तर पर इसकी पहुँच एवं उपलब्धता सुनिश्चित करना हमारा हरसंभव लक्ष्य होना चाहिए। हिंदी का आकाश और इसके अभिनव क्षितिज का विकास हम सबका सरोकार और कर्तव्य है।

शुभंकर मिश्र *विश्व हिंदी सचिवालय.मॉरीशस में भारत सरकार द्वारा प्रतिनियुक्त उप महासचिव हैं।*
संपर्क: directordaemoe@gmail.com

रामचरितमानस की विश्व व्याप्ति

विभा नायक

भारत ही नहीं, समग्र विश्व साहित्य में रामचरितमानस का महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसे कालजयी ग्रंथ की रचना गोस्वामी तुलसीदास ने विक्रमी संवत 1631 में अवधी भाषा में रामनवमी के दिन अयोध्या में आरंभ की थी। उसे पूरा करने में उन्हें 2 वर्ष 7 माह और 26 दिन का समय लगा था। संवत् 1633 में मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-जानकी विवाह के दिन इसे उन्होंने पूरा किया था। अपनी इस रचना में उन्होंने भक्ति, ज्ञान और लोक कल्याण की भावना के अद्भुत समन्वय को संस्कृत, अवधी, अरबी, फारसी और तुर्की के शब्दों का प्रयोग कर एक अन्यतम अनुकरणीय ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया। इस ग्रंथ का महत्व कितना है, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि भक्ति, जीवन दृष्टि, साहित्य, दर्शन, लोकोन्मुखता और भाषा, रस, लालित्य, कलात्मकता आदि सभी दृष्टियों से यह ग्रंथ आज भी प्रासंगिक है और विश्व साहित्य में अपनी जगह बनाए हुए है। हिंदी भाषा के विद्वान और बहुचर्चित पुस्तक 'लोकवादी तुलसीदास' के रचयिता डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार–

> "रामचरितमानस के महत्व, लोकप्रियता और प्रासंगिकता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विश्व में सर्वाधिक शोध रामचरितमानस पर हुए हैं और विश्व की विविध भाषाओं में इस ग्रंथ का अनुवाद हुआ है।"[1]

यह सत्य है कि देश-विदेश की अनेक भाषाओं में रामचरित मानस पर शोध और अनुवाद दोनों हुए हैं। असल में मानस का जिसने भी अध्ययन किया वह उससे प्रभावित हुए बिना न रह सका। यही कारण है कि विश्व भर के विद्वानों ने अपनी अपनी भाषाओं में इसका अनुवाद किया। फ्रेडरिक सालमन ग्राउस जिन्होंने सर्वप्रथम रामचरितमानस का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। एटकिंस ने भी अंग्रेज़ी में रामचरितमानस का पद्यानुवाद किया।

उर्दू में नूरुल हसन नकवी ने रामचरितमानस का अनुवाद किया। फ्रांसीसी विद्वान और 'द ला लितरेतूर एंदुई एनदुस्तानी' के लेखक 'गारसां द तासी' ने सुंदरकांड का अनुवाद किया, फ्रांसीसी लेखिका शारतोल वादवेली ने भी फ्रेंच भाषा में रामचरित मानस का अनुवाद किया। रूसी विद्वान वरान्निकोव द्वारा किया गया रामचरितमानस का पद्यानुवाद भी बहुत चर्चित रहा। इसी प्रकार जे एम मैंक्फी ने जब रामचरितमानस का अनुवाद किया तो मानस की लोकप्रियता को देखते हुए उन्होंने इसे उत्तर भारत की बाइबिल कहा। उनके अनुसार-

> "हमें यह स्वीकार करना होगा कि यह उत्तर भारत की बाइबिल है और यह आपको हर गाँव में मिलेगी। इतना ही नहीं जिस घर में यह पुस्तक होती है, उसके स्वामी का आदर पूरे गाँव में होता है, जब वह इसे पढ़ता है।"[2]

ये सब इसी बात के प्रमाण हैं कि रामचरितमानस की ख्याति केवल भारत तक ही सीमित न रही, बल्कि विश्व भर में इस पुस्तक का मान है। हाल ही में मंगोलिया के **उलानबटार** में **'मेमोरी ऑफ़ द वर्ल्ड कमेटी फ़ॉर एशिया एंड द पैसिफ़िक'** की दसवीं आम बैठक में रामचरितमानस को दो अन्य भारतीय ग्रंथों 'सहृदय लोकन' और 'पंचतंत्र' के साथ यूनेस्को **के 'मेमोरी ऑफ़ द वर्ल्ड एशिया-पैसिफ़िक रीजनल रजिस्टर'** में सम्मिलित किया गया है। इस संबंध में संस्कृति मंत्रालय के एक बयान के अनुसार–

> "इन साहित्यिक उत्कृष्ट कृतियों का सम्मान करके समाज न केवल उनके रचनाकारों की रचनात्मक प्रतिभा को श्रद्धांजलि देता है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि उनकी गहन बुद्धि और कालातीत शिक्षाएँ भावी पीढ़ियों को प्रेरित करती रहें।"[3]

वास्तव में रामचरित मानस के रूप में गोस्वामी तुलसीदास ने भारतीय संस्कृति का एक ऐसा विश्वकोश प्रस्तुत किया है, जिसमें भारतीय मनीषा की श्रेष्ठता और सौम्यता का साक्षात्कार होता है। यहाँ एक ओर पाठक रामचरित रूपी मानसरोवर में अवगाहन करता है, भक्ति के माध्यम से जीवन दर्शन, करणीय-अकरणीय और विविध जीवन-स्थितियों में व्यावहारिक संतुलन की सीख लेता है तो वहीं दूसरी ओर मानस के अद्भुत विधान से भी रोमांचित होता है।

इस संबंध में रामचरित मानस के **रूसी अनुवादक विद्वान वरान्निकोव** ने अपनी पुस्तक **मानस की रूसी भूमिका** में लिखा है–

"तुलसीदास की समस्त कृतियों में सबसे अधिक लोकप्रिय रामचरितमानस या रामायण प्रतीत होती है। मध्ययुगीन भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में तुलसीदास का सम्मान इस कृति के आधार पर ही आधारित है। इस कारण तुलसीदास की यह कृति रूसी भाषा में अनुवाद के लिए चुनी गई है। इसके अध्ययन से हम केवल इस कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा से ही परिचित नहीं होते, प्रत्युत सामान्यतया भारतीय क्लासिकल साहित्य की विशिष्टताओं से भी परिचित होते हैं।"[4]

ये वरान्निकोव ही हैं जो रामचरित मानस में प्रतिपादित शाश्वत भारतीय जीवन मूल्यों से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने रूसी जनता को भी उससे परिचित कराने के लिए इस ग्रंथ के अनुवाद का निश्चय किया और अपने अनुवाद के द्वारा रामचरितमानस को रूस में भी लोकप्रिय बनाया। इनके द्वारा किया गया रामचरितमानस का पद्यानुवाद 1948 में प्रकाशित हुआ था जिसके लिए वरान्निकोव को सोवियत संघ के सर्वोच्च पुरस्कार **ऑर्डर ऑफ़ लेनिन** से भी सम्मानित किया गया था।

'रामकथा उत्पत्ति और विकास' के लेखक फ़ादर कामिल बुल्के ने भी रामचरितमानस की महत्ता को रेखांकित किया है। बेल्जियम में जन्मे इस विद्वान ने अपनी उक्त पुस्तक में पृष्ठ संख्या 250 में डॉ रामकुमार वर्मा को उद्धृत करते हुए कहा है–

"हिंदी रामकथा साहित्य में तुलसीदास का एक प्रकार से एकाधिकार है। तुलसी की प्रतिभा और काव्यकला इतनी उत्कृष्ट प्रमाणित हुई कि उनके बाद किसी भी कवि की रामचरित संबंधी रचना उनके मानस की समानता में प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकी, मानस के सामने कोई भी प्रबंधकाव्य आदर की दृष्टि से न देखा गया।"[5]

यह वास्तविकता है कि जो प्रभाव रामचरितमानस का रहा, अन्य रामकथाओं और राम आख्यानों में कोई भी उसकी समता न कर सका। यही कारण है कि विश्व भर में रामचरित मानस का प्रचार और प्रसार हुआ। रामचरित मानस की दार्शनिकता, रसात्मकता, भाषा-सौष्ठव, भाव-पक्ष निरूपण की सरल, सौम्य और कलात्मक शैली, भक्ति भावना और लोक संग्रह का भाव इसे अपढ़ से अपढ़ और ज्ञानी से ज्ञानी, सभी के लिए एक समान प्रिय बना देता है। इसी कारण भारत और भारत वंशियों में रामचरितमानस को पूजा भाव के साथ पढ़ा जाता है और इसकी एक-एक पंक्ति को मंत्र के समान माना जाता है। राम चरितमानस के बालकांड में तुलसीदास स्वयं कहते हैं–

"मंत्र महामनि बिषय ब्याल के, मेटत कठिन कुअंक भाल के

(विषय रूपी सांप का विष उतारने के लिए मंत्र और महामणि हैं। ये ललाट पर लिखे हुए कठिनता से मिटने वाले बुरे लेखों (दुर्भाग्य) को मिटा देने वाले हैं)"[6]

रामचरितमानस की एक-एक पंक्ति मंत्र के समान इसी कारण प्रभावकारी है क्योंकि इसमें विशुद्ध चित्त से समग्र जगत को ही 'सियाराम मय' मानकर अपने भक्तिमय उद्गारों के साथ प्रणाम निवेदित किया गया है। साथ ही तुलसी का यह भी मानना है कि **'कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहँ हित होई'।** कीर्ति, साहित्य और ऐश्वर्य गंगा के समान सबका हितकारी होना ही चाहिए। रामचरितमानस में आद्यंत यही भाव व्याप्त है। यही लोकमंगल रामकथा और रामचरित मानस का सार है। यही कारण है कि मानस में आम आदमी अपनी सभी समस्याओं का समाधान पाता है। गाँव का एक अनपढ़ किसान और मजदूर भी बात-बात में मानस की चौपाइयों का उदाहरण देता है। विश्व भर के मानस मर्मज्ञ भी इसे अपने ह्रदय के निकट पाते हैं। इसकी एक-एक पंक्ति जैसे उनकी जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर देती है।

इस संबंध में **जगद्गुरु रामभद्राचार्य** कहते हैं कि–

"रामायण तो बहुत लिखी गईं हैं, लेकिन तुलसीदास ने जो रामायण लिखी है, उससे ऐसा लगता है जैसे राष्ट्र की समस्याओं को ध्यान में रखकर ही रामायण लिखी गई है। रामचरितमानस भारतवर्ष की समस्त ज्वलंत समस्याओं के समाधान का शोध स्रोत है।"[7]

आचार्य **रामचंद्र शुक्ल** ने रामचरितमानस में व्याप्त लोकमंगल और रचयिता की विशेषता को बताते हुए, अपने इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के अंतर्गत भक्ति काल प्रकरण चार में कहा है कि–

"इनकी भक्ति रस भरी वाणी जैसी मंगल कारिणी मानी गई है वैसी और किसी की नहीं। तुलसी की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है सर्वांगपूर्णता। भक्ति की चरम सीमा पर पहुँचकर भी उन्होंने लोक पक्ष को नहीं छोड़ा, लोक संग्रह उनकी भक्ति का एक अंग था।"[8]

भक्ति की यही सर्वांगपूर्णता और लोकनिष्ठा रामचरितमानस में सतत् प्रवहमान है जो उसे एक श्रेष्ठ ग्रंथ सिद्ध करती है। तुलसी के राम अत्यंत सरल और सौम्य हैं। वे शील,

शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय हैं। नकारात्मकता उन्हें छू तक नहीं गई है। यही कारण है कि वे सबके प्रिय हैं और सबके अपने हैं। इतने अपने हैं कि उनके राजा न बन पाने और वनवास की सूचना मात्र से अयोध्या के सभी निवासी व्याकुल हो जाते हैं। रथ के घोड़े तक आँसू बहाते हैं। यह हैं राम। राजा बनते-बनते जिसे 14 वर्ष का वनवास मिल जाए, वो भला प्रसन्न कैसे हो सकता है? उसके हृदय में खिन्नता भला कैसे न होगी? पर राम के मन में किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं क्योंकि वे राम हैं। अयोध्याकाण्ड के आरंभ में गोस्वामी तुलसीदास अपने आराध्य राम की स्तुति करते हुए कहते हैं–

"प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा।।"[9]

राम तो हर स्थिति में सहज प्रसन्न रहने वाले हैं, वनवास उनके लिए दुःखकारक नहीं है। अतः वे अपने पिता दशरथ को ढाँढ़स बँधाते हुए कहते हैं-

"आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई। ।
बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहिं बहुरि पग लागी।।

(आपकी आज्ञा पालन करके और जन्म का फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा। अतः कृपया आज्ञा दीजिए। माता से विदा माँग आता हूँ फिर आपके पैर लगकर वन को चलूँगा।)"[10]

जब हृदय में विषाद और खिन्नता नहीं तो फिर किसे के प्रति वैर का भी प्रश्न नहीं पैदा होता। इसीलिए भरत के प्रति उनके हृदय में किसी भी प्रकार से स्नेह कम नहीं होता, साथ ही माता कैकेयी के प्रति भी उनके हृदय में सम्मान और प्रेम कम नहीं होता। भरत जब तीनों माताओं सहित राम को लौटाने वन को जाते हैं तो राम तीनों माताओं में सबसे पहले माता कैकेयी से ही मिलते हैं। वन में भी राम सबके हृदय के राजा हैं। राम के वन आगमन के विषय में जानकर वन निवासी कोल-किरात ऐसे प्रसन्न हो जाते हैं मानो उन्हें नवनिधि प्राप्त हो गई हो। ऐसा इसलिए है क्योंकि राम राजा राम हैं। वे लोक के हृदय के राजा हैं। लोक हृदय ही उनकी वास्तविक अयोध्या है। इसीलिए अयोध्याकाण्ड में जब लक्ष्मण माता सुमित्रा से वन-गमन की अनुमति के लिए आते हैं, तो वे उन्हें राम जानकी को माता पिता जान साथ जाने की अनुमति देती हैं और सीख भी देती हैं कि-

"अवध तहाँ जहँ राम निवासू।"[11]

वस्तुतः राजा वही होता है जिसका चरित्र सात्विक और सरल हो, जिसके हृदय में सदैव ही लोक और लोक के प्रति प्रेम बसता हो। यही अथाह प्रेम राम का वैशिष्ट्य है जो सबको आकर्षित करता है और त्वरित भाव से अपना बना लेता है। यही लोक नायकत्व है, जो राजा राम को सबका प्रिय, सबके हृदय का राजा बनाता है। इसीलिए तुलसीदास कहते हैं-

"रामहि केवल प्रेमु पिआरा, जानि लेउ जो जाननिहारा"[12]

राम श्रेष्ठ नायक हैं। उन्हें उनके जीवनकाल में ही लोग ईश्वर का अवतार मानने लगे थे। इस लोकमान्यता के बाद भी वे विनम्र हैं। कुछ भी निर्णय करने से पहले वे नीति निपुण राजा की भाँति सबकी सम्मति लेते हैं। जहाँ रावण अप्रिय सलाह पर सलाह देने वाले का उपहास करके उन्हें अपमानित करता है, वहीं राम विभीषण की समुद्र से विनती करने की और सुग्रीव की विभीषण को बंधक बनाने की अनुपयुक्त सलाह को भी सम्मान देते हैं। वे किसी का उपहास नहीं करते, बल्कि सबका मान रखते हैं। रामचरितमानस का पूरा कथ्य इसी प्रकार के अद्भुत प्रसंगों से भरा हुआ है। मानस के सभी पात्र अनूठे हैं। कथा का मुख्य खलनायक रावण भी राम से इसीलिए उलझता है क्योंकि कहीं न कहीं उसे भी राम के ईश्वरत्व का आभास है।

"सुर रंजन भंजन महि भारा, जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ, प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।"[13]

राम के चरित्र का यही औदात्य इस ग्रंथ को विशिष्ट बनाता है और इसी ने उसे विश्व भर में लोकप्रियता प्रदान की है। इसी ने रामचरित मानस की चौपाइयों को अनपढ़ ग्रामीणों का कंठहार बनाया और इसी के प्रभाव के विषय में हिंदी साहित्य के इतिहास 'लिंगविसटिक सर्वे ऑफ़ इंडिया' के लेखक जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने रामचरित मानस को करोड़ों लोगों की बाइबिल कहा था।

रामचरित मानस की वैश्विकता के संबंध में इसके अंग्रेज़ी अनुवादक **एवर्ट ग्राउस** द्वारा मानस के अनुवाद का उल्लेख करना भी आवश्यक है। ग्राउस के अंग्रेज़ी अनुवाद की प्रस्तावना एशियाटिक सोसायटी जर्नल में 1876 में प्रकाशित हुई तथा 1877 में पश्चिमोत्तर शासन के सरकारी प्रेस से इसके पहले खंड बालकांड का प्रकाशन हुआ। 1880 तक मानस का पूरा अनुवाद छपते ही वह लोकप्रिय हो गया था। किसी भी भारतीय और मानस प्रेमी के लिए निश्चित तौर से यह गर्व की बात थी। श्रीधर पाठक ने उनके विषय में लिखा था–

"संस्कृत हिंदी रसिक विविध विद्यागुन मंडित
निज वानी में कीन्हीं तुलसीकृत रामायन
जासु अमी रस पियत आज अंग्रेज़ी बुधगन"[14]

उन्हीं ग्राउस ने अपनी पुस्तक **द रामायण ऑफ़ तुलसीदास** में लिखा है-

"तुलसीदास मिल्टन की तरह एक कवि मात्र नहीं थे, वह एक कानून निर्माता एवं मुक्तिदाता थे। जब देश मुस्लिम आतताइयों के अत्याचारों से पीड़ित था और हिंदुओं पर न जाने कैसे-कैसे अत्याचार हो रहे थे, तो यह तुलसी ही थे जो आशा और मुक्ति लाए थे।"[15]

जब एक बड़ा लेखक लिखता है तो, वह अपने समय को भी अपनी लेखनी के माध्यम से शब्दबद्ध करता है। रामचरितमानस में भी वह युग उतर आया है, जिसमें संघर्ष था, पीड़ा थी, असह्य वेदना थी। इस सबके भोक्ता थे तुलसीदास और लोक में रमा हुआ उनका भक्त चित्त। अंग्रेज़ी विद्वान ग्राउस ने मानस के अध्ययन में उसी रमे हुए चित्त को समझा और व्यापक लोक को उससे जोड़ने के लिए मानस का अनुवाद किया।

तुलसी ने भी जब राम रामचरितमानस को लिखा तो लोक कल्याण, भक्ति की सर्वजन सुलभता और भक्ति का वास्तविक अर्थ समझाना उनका मन्तव्य था। वे धर्म, नीति, भक्ति से सम्बद्ध व्यापक विभ्रमों को समाज से दूर करना चाहते थे। यही कारण है कि मानस लिख भर देना ही उनका उद्देश्य नहीं था। अतः उन्होंने रामलीला के माध्यम से इसे लोक-मानस के हृदय में उतारने का भी काम किया। इसी सब का प्रभाव था कि रामचरितमानस से प्रभावित होकर बहुत से ग्रंथ लिखे गए, विविध बोलियों में भी मानस के आधार पर लोकगीत और आख्यान रचे गए। यहाँ तक कि संतान के जन्म, विवाह आदि शुभ अवसरों पर घरों की दीवारों को मानस की चौपाइयाँ लिखकर सजाया जाने लगा। अखंड मानस पाठ, सुंदरकांड का पाठ, मानस अंताक्षरी और इन सबके माध्यम से लोक की जुबान पर राम, लोकभाषा में राम और लोक के मुहावरों में राम रमते चले गए।

तुलसी ने रामचरित मानस के माध्यम से लोक को श्रद्धा और विश्वास से भी जोड़ा और भक्ति का सही अर्थ समझाया। इस संबंध में मानस के बालकांड का दूसरा छंद जो कि मानस में वर्णित 7 अनुष्टुप छंदों में से एक है, उल्लेखनीय है, जिसके अनुसार श्रद्धा और विश्वास ही शिव और पार्वती हैं। जब तक हृदय में श्रद्धा-विश्वास रूपी भवानी-शंकर की कृपा नहीं होती, तब तक सिद्ध महात्मा लोग भी अपने अंदर स्थित परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार नहीं कर पाते।–

"भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा: स्वांतः स्थमीश्वरम"[16]

इसी सब का प्रभाव रहा कि किसी भी प्रकार के अनिष्ट से बचाव और शुभ की प्राप्ति के लिए अथवा किसी भी मंगल आयोजन के अवसर पर रामचरितमानस के अखंड पाठ की परंपरा चल पड़ी। अखंड मानस पाठ के लिए मंडलियाँ भी बनीं। यह सिलसिला रुका नहीं बल्कि निरंतर आगे बढ़ता गया। इस प्रकार केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के कई देशों में रामलीला और अखंड मानस पाठ की परंपरा पहुंची। फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिटाड, इंडोनेशिया, जमैका, मलेशिया गुयामा आदि देशों में गिरमिटिया मज़दूरों के रूप में गए हज़ारों श्रमिकों के लिए विदेशी भूमि पर और आततायी शासन में रामचरितमानस की यह पोथी ही उनकी संजीवनी बनी रही। गिरमिटियों के लिए राम और रामचरितमानस का क्या महत्व है, इस संबंध में विदेश में अंग्रेज़ी समेत विभिन्न विदेशी भाषाओं में रामकथा कहने वाले 'संत ब्रह्मदेव उपाध्याय' का यह कथन उल्लेखनीय है–

> "अंग्रेज समुद्री टापुओं पर उपनिवेशों में मुफ़्त की मजदूरी के लिए भारतीयों को गुलाम बनाकर पानी के जहाज़ से ले गए। वे अपनी मातृभूमि छोड़ते वक्त जो सबसे कीमती वस्तु थी, उसे सीने से लगाकर ले गए और वह थी श्री रामचरितमानस या रामायण।"[17]

इस संबंध में मॉरीशस में प्रधानमंत्री के सलाहकार रहे श्री सुरेश रामवर्ण का कथन भी उल्लेखनीय है–

> "दादा जी तो अब नहीं रहे लेकिन वह अपने बचपन की बात बताया करते थे। वे लोग खेत में काम कर रहे थे, तभी अंग्रेज़ गाड़ियों से आए और खेतों में काम करने वालों को रस्सी से बांध दिया। जबरन उनको उनके खेत, घर, गाँव देश से सुदूर ले जाने की प्रक्रिया आरंभ हुई तो हड़बड़ी में जो मिला, ले लिया। ज़्यादातर लोगों ने अपने हाथ में रामचरित मानस की पोथी उठाई और पानी के जहाज़ में बैठा दिए गए... अपनी मातृभूमि, अपने तीर्थ ओझल होते गए लेकिन हमने अपने आराध्य, अपनी परंपराओं और संस्कृति को अपने सीने से लगाए रखा।"[18]

इस प्रकार भी मानस की विश्व यात्रा जारी रही। अब आज की स्थिति में देखें तो विदेशों में व्यापक स्तर पर रामचरित मानस पर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर की गोष्ठियाँ होती हैं। वहाँ कई मंडलियाँ भी हैं जो विभिन्न अवसरों पर रामचरितमानस का

पाठ करती हैं। रामलीलाओं का आयोजन भी वहाँ बहुत ही भव्य ढंग से किया जाता है। मानस के प्रति प्रवासी भारतीयों का लगाव और पूजा भाव इतना है कि निरंतर इस पर शोध कार्य और रामचरित मानस को आधार बनाकर कुछ न कुछ करने का भाव उनमें रहता है। भारतीय मूल के एक अंग्रेज़ी विद्वान जिनका नाम प्रोफ़ेसर शिवप्रकाश अग्रवाल है, उन्होंने रामचरित मानस की शब्द अनुक्रमणिका तैयार की है। इस इंडेक्स में उन्होंने रामचरितमानस के प्रत्येक शब्द का सुलभ एवं विस्तृत संदर्भ दिया है। इस पुस्तक में लेखक ने ऐसी अनूठी पद्धति का प्रयोग किया है, जिससे मानस के किसी भी संस्करण में शब्दों को आसानी से खोजा जा सके।[19]

इस प्रकार के कई रचनात्मक कार्य रामचरितमानस को आधार बनाकर किए जा रहे हैं।

ऐसा माना जाता है कि तुलसी के रामचरितमानस की पांडुलिपि को नष्ट करने का भी प्रयास किया गया था। यह तो सर्वविदित ही है कि तुलसी को अपने समय में बहुत विरोध सहना पड़ा था। तो पांडुलिपि को नष्ट करने के प्रयास की बात अविश्वसनीय नहीं लगती। इस संबंध में भारत के पूर्व राजनयिक और भारतीय समाज और संस्कृति के गहन अध्येता श्री पवन कुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'द ग्रेटेस्ट 'ऑड टु लॉर्ड राम :तुलसीदास राम चरितमानस' में लिखा है–

> "तुलसीदास ने रामचरित मानस की पांडुलिपि की एक कॉपी अकबर के दरबार में नवरत्नों में से एक और वित्त मंत्री टोडरमल को दे दी थी ताकि वह सुरक्षित रहे। काशी के पंडे इस बात से नाराज थे कि तुलसीदास राम को देवभाषा संस्कृत से अलग क्यों कर रहे हैं। तुलसीदास का जीवन सफर एक अनाथ और आम रामबोला से गोस्वामी तुलसीदास बनने का है।"[20]

सीधी सी बात है कि तुलसीदास को बहुत विरोध भी सहन करना पड़ा किन्तु मानस में व्याप्त लोकमंगल और भक्ति साधना का जो मार्ग उन्होंने प्रशस्त किया, उसने मानस के महत्व को कम नहीं होने दिया बल्कि इसकी लोकप्रियता को वैश्विक आधार प्रदान किया और यही भाव मानस प्रेमियों में भी निरंतर व्यापता रहा। यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य है कि यह वैश्विक आधार यूँ ही नहीं है। राम विश्वरूप हैं। तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम के विश्वरूप की ही परिकल्पना प्रस्तुत की है। राम सम्पूर्ण चराचर विश्वरूप है। **लंका कांड** में मंदोदरी राम के विषय में कहती है–

"पद पाताल सीस अज धामा,
अपर लोक अंग अंग बिश्रामा..."[21]

स्वयं राम भी अपने अनन्य भक्त की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि–

"सो अनन्य जाकें अस मति न टरई हनुमंत,
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत"[22]

कहने का तात्पर्य यही है कि जब कथा नायक स्वयं परमात्म तत्त्व 'रामाख्यम् जगदीश्वरम्' हैं तो उनकी कथा राम चरितमानस की विश्वव्याप्ति भी स्वयं सिद्ध और स्वाभाविक ही है।

संदर्भ :

1 https://Amarujala.com Gorakhpur updated wed, 14 august 2013

2 https://www.hindupost.in

3 https://Naiduniya.com, published : wed, 15 may 2024

4 मानस की रूसी भूमिका, लेखक–प्रोफ़ेसर वरान्निकोव द्वारा रामचरितमानस के रूसी रूपांतर की भूमिका-भाग का हिंदी अनुवाद, मूल लेखक ए.पी. वरान्निकोव, अनुवादक : डॉ. केसरी नारायण शुक्ल, प्रकाशक : विद्यामन्दिर, रानीकटरा, लखनऊ, वर्ष- 27/7/1965

5 राम कथा : उत्पत्ति और विकास, फ़ादर क़ामिल बुल्के, हिंदी परिषद् प्रकाशन

6 दोहा 31, चौपाई- 5, बालकांड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

7 https://www.livehindustan.com, Newswrap,

8 हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल,

9 मंगलाचरण, श्लोक 2, अयोध्याकाण्ड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

10 दोहा 45, चौपाई-2, अयोध्याकाण्ड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

11 दोहा 73, चौपाई-2, अयोध्याकाण्ड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

12 दोहा-136, चौपाई-1, अयोध्याकाण्ड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

13 दोहा 22, चौपाई 2, अरण्यकाण्ड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

14 https://www.livehindustan.com, Newswrap,

15 https://hindupost.in,

16 मंगलाचरण, अनुष्टुप छंद 2, बालकाण्ड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

17 https://www.patrika.com

18 https://www.patrika.com

19 https://www.amarujala.com

20 https://bbc.com

21 दोहा-14, चौपाई-1, लंकाकाण्ड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

22 दोहा-3, किष्किन्धाकाण्ड, तुलसीदास कृत रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर

विभा नायक *श्यामा प्रसाद मुखर्जी कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) में हिंदी भाषा और साहित्य की प्राध्यापिका हैं। संपर्क: shephalika.naik@gmail.com*

भारत में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण: स्थिति और चुनौतियाँ

बीना शर्मा

एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ़ भारत की पहचान है बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कारों और संस्कृति की संप्रेषक और संवाहक भी है। और हो भी क्यों न, भाषा संप्रेषण का प्रभावशाली माध्यम है। इसके माध्यम से मानव अपने विचारों और भावों को संप्रेषित करता है। भाषा ही समस्त मानसिक व्यापारों, मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन है। अतः भाषा शिक्षण किसी भी राष्ट्र के समुचित विकास के लिए बहुत आवश्यक है। भाषा का परिप्रेक्ष्य अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है क्योंकि यह सूचना, ज्ञान, अनुभव, संवेदना, कौशल और संप्रेषण व्यक्तित्व के इन ज़रूरी और विविध आयामों से संबंद्ध होती है। भाषा मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। यह केवल व्याकरण ही नहीं है अपितु संस्कृति की संवाहिका भी है। सिर्फ़ भाषिक तथ्यों का ज्ञान करा देना किसी भी अध्येता के लिए उस भाषा का संपूर्ण ज्ञान नहीं हुआ करता, उसके लिए भाषा के सांस्कृतिक पक्ष से संबद्ध होना, उसका ज्ञान लेना बहुत ज़रूरी है। जब तक भाषा की सांस्कृतिक शब्दावली से परिचित नहीं हुआ जाता तब तक उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा में कृत्रिमता ही झलकती रहेगी। भाषा सामाजिक व्यवहार का प्रमुख घटक है। नियमों की आबद्धता के साथ-साथ उसके सांस्कृतिक और प्रायोगिक पक्ष का ज्ञान भी ज़रूरी है।

विदेशों में हिंदी के पठन-पाठन की बात की जाए तो हिंदी विश्व के 30 से अधिक देशों में पढ़ी-पढ़ाई जाती है। अनेक विश्वविद्यालयों में उसके लिए अध्ययन केंद्र खुले हुए हैं। गिरमिटिया देशों में भारत मूल के निवासियों की संख्या अधिक होने के कारण हिंदी के प्रति स्नेह स्वतः प्रसारित है। विश्व के सभी प्रमुख देशों में भारत के दूतावास हैं। किसी भी

देश में भाषा शिक्षण की स्थिति मातृभाषा/अन्य भाषा या विदेशी भाषा के रूप में होती है। विदेशियों का भारत आकर विश्वविद्यालयों अथवा संस्थानों में प्रत्यक्ष रूप से हिंदी सीखना और अपने ही देश में भारतीय अध्यापकों अथवा अपने देश के भाषा विशेषज्ञों द्वारा अन्य भाषा को विदेशी भाषा के रूप में सीखा जाना दो अलग-अलग संदर्भ है।

इस आलेख में भारत में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण को प्राथमिकता दी गई है। भारत में विदेशियों को हिंदी सिखाने के लिए विश्वविद्यालयों के भाषा अध्ययन विभाग हैं, अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा है। प्रमुख रूप से केंद्रीय हिंदी संस्थान है जिसमें सर्वाधिक संख्या में विदेशी अध्येताओं ने हिंदी सीखी है। कुछेक निजी संस्थाएं भी इस कार्य में लगी हुई हैं। लेखिका का केंद्रीय हिंदी संस्थान से चार दशक का अध्ययन-अध्यापन का संबंध है सो निश्चित रूप से अपनी बात के लिए प्रमाण और साक्ष्य बिंदु के अनुभव से संकलित हैं। साठ के दशक में स्थापित केंद्रीय हिंदी संस्थान अन्य भाषा और विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए सुपरिचित संस्था है। अपने आठ क्षेत्रीय केंद्रों के साथ यह संस्था विश्व भर में जानी जाती है। मुख्यालय आगरा में विदेशों में हिंदी प्रचार-प्रसार योजना (पी.एच.ए.) के तहत विभिन्न देशों के 150 विद्यार्थी (एक वर्ष पूर्व तक 100) हिंदी सीखने के लिए अपने अपने दूतावासों के माध्यम से प्रवेश लेते हैं, स्तर निर्धारण परीक्षण के आधार पर हिंदी दक्षता प्रमाण-पत्र (100), हिंदी दक्षता डिप्लोमा (200), हिंदी उच्च दक्षता डिप्लोमा (300) और हिंदी स्नातकोत्तर डिप्लोमा (400) में प्रवेश लेते हैं और आठ-नौ माह के एक सत्र में हिंदी भाषाई कौशलों में दक्ष होकर, हिंदी साहित्य से परिचित होते हैं और विविध सांस्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षिक पर्यटन, भारतीय कलाओं यथा गायन, वादन, नृत्य और योग के माध्यम से भारत का सांस्कृतिक परिचय प्राप्त करते हैं और भारत के सांस्कृतिक राजदूत बनकर अपने अपने देशों में हिंदी की सुगंध को प्रसारित करते हैं। क्षेत्रीय केंद्र दिल्ली में स्ववित्त पोषित और सांस्कृतिक आदान-प्रदान योजना के अंतर्गत प्रथम तीन कक्षाओं में विदेशी हिंदी सीखते हैं। ये विदेशी हिंदी अध्येता हिंदी कौशलों में दक्ष हो जाते हैं क्योंकि उनके सामने लक्ष्य स्पष्ट होता है कि उन्हें हिंदी क्यों सीखनी है, हिंदी सीखकर वे जीवन में इसका प्रयोग किस तरह कर पायेंगे। किसी भी भाषा का सफल शिक्षण इस बात पर निर्भर करता है कि उसे किन परिस्थितियों में सीखा जा रहा है, उसे सीखने के पीछे क्या उद्देश्य है। उसका कितना प्रयोग आगामी जीवन में किया जा सकेगा। व्यक्तिगत जीवन में निखार आ पायेगा, आर्थिक आधार पर मजबूत होगा, सामाजिक, सांस्कृतिक संबंधों में प्रगाढ़ता आयेगी, दो देशों के सामाजिक, सांस्कृतिक संबंध मजबूत होंगे। इन बातों का सीधा सादा तात्पर्य है कि कोई

भी भाषा केवल सीखने के लिए ही नहीं सीखी जाती, उसके पीछे सोची-समझी योजना होती है और उसके भावी प्रयोग की योजना की अनेक संभावनाएं होती हैं। ये अनायास नहीं है। पाँच हज़ार से ऊपर संख्या में केंद्रीय हिंदी संस्थान के दीक्षित ये विदेशी विद्यार्थी आगामी अध्ययन के लिए संस्थान आना चाहते हैं, संस्थान की यादों में रहना चाहते हैं, यहाँ की संस्कृति में रच बस जाना चाहते हैं और अपने साथियों इष्ट मित्रों को भारत जाकर हिंदी सीखने के लिए प्रेरित करते हैं। हिंदी केवल किताबों को पढ़ने और अध्यापकों के व्याख्यान मात्र से नहीं सीखी जाती, केवल तय पाठ्यक्रम के पाठों को याद कर रट कर परीक्षा में लिख कर आने से अच्छे अंक प्राप्त कर डिप्लोमा प्रमाण पत्र लेने से नहीं आती। इस सबके लिए चाहिए होता है एक पैशन, एक जुनून, एक चाहत। जितना ये सब विद्यार्थी के लिए आवश्यक है उससे अधिक ज़रूरी है उसके लिए जो हिंदी सिखाने में लगे पड़े हैं और भाषा विज्ञानों के सिद्धांतों को समझाने में द्रविड़ प्राणायाम कर रहे हैं। उन्हें सिद्धांत रटायें न रटायें पर उन्हें हिंदी प्रयोग सिखाना बहुत ज़रूरी है। हिंदी के समुद्र में कूदना ज़रूरी है, उसमें गोता लगाना ज़रूरी है। हाथ-पैर चलाना ज़रूरी है। खुद रास्ते खोजना ज़रूरी है, गलत-सलत ही क्यों न हो, बोलना और लिखना ज़रूरी है। जो हिंदी सिखाते हैं विदेशियों को, उन्हें लेखिका की निम्न काव्य पंक्तियों को मुट्ठी में बाँधना ज़रूरी है—

मैं विदेशियों को हिंदी सिखाती हूँ पढ़ाती हूँ
और लोग सोचते हैं
कि तुम तो ककहरा सिखाती फिरती हो
अरे तुम उन्हें हिंदी नहीं पढ़ाती
तुम प्राथमिक शिक्षक का काम करती हो
मसलन शब्द प्रयोग प्रश्न उत्तर
और मैं कहती हूँ कि
मैं हिंदी पढ़ाती हूँ। पढ़ाती क्या हूँ
उनके अंदर प्रवेश करती हूँ
उन्हें समझती हूँ, और प्रेम से
उन्हें वह सिखा देती हूँ
जो कुछ उनकी मांग होती है।

जिन देशों से ये विद्यार्थी हिंदी सीखने आते हैं, वहाँ हिंदी की स्थिति से परिचित होना भी ज़रूरी है। गिरमिटिया देशों में हिंदी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रयुक्त होती है

तो करैबियन देशों में हिंदी सिनेमा के गीतों और संवाद से पहुँचती है। जहाँ औपचारिक हिंदी शिक्षण की व्यवस्था नहीं है वहाँ निजी प्रयासों से हिंदी अपनी दखलंदाजी बना रही है। केंद्रीय हिंदी संस्थान में विश्व के कोने-कोने से विद्यार्थी जिस पृष्ठ भूमि से आते हों, एक बात निश्चित है कि वे हिंदी सीखने में रुचि लेते हैं और यह रुचि अधिक व्यापक इसलिए हो जाती है, परवान इसलिए चढ़ जाती है कि वे न केवल कक्षा में हिंदी सीखते हैं, सुनते, बोलते, लिखते हैं बल्कि कक्ष से बाहर, संस्थान परिसर में, छात्रावास में, अपनी दैनिक ज़रूरतों की खरीद के लिए बाजारों में रिक्शा, टैक्सी, ऑटो, बस, रेल में सवारी करते, विभागाध्यक्ष से अवकाश की मांग करते आवेदन लिखते हैं। भारत के विभिन्न भाषा भाषियों और विश्व के हिंदी अध्येताओं के मध्य संपर्क की भाषा केवल हिंदी और हिंदी ही रह जाती है। शुरूआती दौर में भले वे भाषा प्रयोग में शून्य होते हैँ पर दीक्षांत तक वे अपने भावों को मंच से प्रकट करना सीख जाते हैं, विद्यार्थी पत्रिका में लिख कर अपने अनुभव बाँटते हैं। वे न केवल बोलने, लिखने, पढ़ने में दक्ष होते हैं वरन् गाकर, बजाकर, नृत्य कर, कविता, संस्मरण सुनाकर अपने को बखूबी अभिव्यक्त भी कर पाते हैं। जो विद्यार्थी प्रारंभ में एक नये परिवेश में स्वयं को नया और एकाकी महसूस करते हैं वे ही सात-आठ महीने के अल्प समय में विश्व भर के विद्यार्थियों से इतना घुलमिल जाते हैं कि उनमें अलग होने की स्थिति की कल्पना मात्र से ही विचलित हो जाते हैं। प्रश्न तो उठता है आखिर इन विदेशी विद्यार्थियों को हिंदी सिखाई इस तरह जाती है कि ये इतने दक्ष हो जाते हैं, संस्थान की यादों में बने रहना चाहते हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान निकट भविष्य में विशिष्ट श्रेणी के तहत मानद विश्वविद्यालय बनने की राह पर है। बहुत जल्द प्रमाण पत्र और डिप्लोमा के अतिरिक्त वैश्विक विद्यार्थी हिंदी में चार वर्षीय स्नातक (ऑनर्स) और एक वर्षीय स्नातकोत्तर उपाधि से भी लाभान्वित हो सकेंगे। साथ ही भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय कला और संस्कृति में भी स्नातकोत्तर के पाठ्यक्रम लागू किये जाने की योजना है। विश्वभर से हिंदी के एक मानक पाठ्यक्रम और हिंदी के सर्वमान्य परीक्षण के संदर्भ में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पहल सराहनीय है।

भारत में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण की स्थिति और इसकी चुनौतियों पर विचार करें तो कुछ आवश्यक बिंदु हैं जिन्हें इस आलेख में साझा करना ज़रूरी है।

1. हिंदी शिक्षण के पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या का निर्माण प्रत्येक देश के शिक्षण स्तर–हिंदी प्रशिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्चा इतनी स्पष्ट हो कि शिक्षक और अध्येता को उचित

मार्गदर्शन मिल सके। इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि केंद्रीय हिंदी संस्थान मानक हिंदी पाठ्यक्रम तैयार कर चुका है।

2. विदेशों में हिंदी शिक्षण करने वाले शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण नवीकरण कार्यक्रमों का आयोजन, हिंदी प्रशिक्षकों को प्रोत्साहित करना। उनके विशेष प्रयासों के लिए सम्मानित किये जाने का कार्य बहुत ज़रूरी है। केंद्रीय हिंदी संस्थान विदेशों में हिंदी प्रशिक्षकों के लिए नवीकरण प्रशिक्षण का काम उन देशों की मांग पर करता आ रहा है।

3. शिक्षण सामग्री स्तरानुकूल और अभिक्रमित होनी चाहिए पर अभी तक कोई विधिवत पाठ्य सामग्री तय नहीं है। प्रत्येक शिक्षक अपने अपने स्तर से पाठ्य सामग्री का चयन और निर्माण करता है जिससे सबसे बड़ी हानि यह है कि इस सामग्री में हिंदी मातृभाषा के रूप में उपलब्ध शिक्षण सामग्री से ही चयनित कर लिया जाता है। न तो शब्दावली और न वाक्य ही उनके परिवेश, आयु और स्तर के अनुकूल होते हैं।

4. भाषाई कौशलों के आधार पर शिक्षण सामग्री का निर्माण पहली आवश्यकता है और सामग्री भी ऐसी भी हो जिससे कक्षा में पूर्ण उत्साह और रुचि बनी रहे।

5. विदेशी अध्येताओं के भाषा सीखने के उद्देश्य और लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही आधारभूत शब्दावली का निर्माण हो और शिक्षण के दौरान उदाहरण उनके आस-पास के जीवन और वातावरण लिए जाए।

6. इन अध्येताओं के लिए वास्तविक भाषा व्यवहार को आधार बनाकर व्यावहारिक हिंदी संरचना, ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि में अनुप्रयोगात्मक पाठों का निर्माण किया जाए। संपूर्ण पाठ्य सामग्री के निर्माण में शिक्षार्थी के अधिगम की पुष्टि के लिए विभिन्न अभ्यास रखे जाएं।

7. हिंदी में ऐसे पोर्टल विकसित हों जिससे कोई भी विदेशी अध्येता हिंदी से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सके। हिंदी को हिंदी माध्यम से ही पढ़ाएं। सामान्य धारणा है कि विदेशी हैं तो उन्हें अंग्रेज़ी माध्यम से ही पढ़ाना होगा।

8. विदेशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों का प्रकाशन विश्व भाषाओं से संबंधित द्विभाषी त्रिभाषी बहुभाषी शब्दकोशों और विश्वकोशों के प्रकाशन/संपादन में भी गति लाना ज़रूरी है।

9. विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार को गति देने के लिए विदेश मंत्रालय में हिंदी एवं संस्कृत विभाग हैं। जिसके द्वारा विभिन्न गतिविधियाँ संयोजित की जाती है। विदेश में स्थित दूतावासों के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार में जुटी संस्थानों को हिंदी कक्षाएं आयोजित करने के लिए अनुदान देता है साथ ही विदेशों में अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलनों का आयोजन करता है।

10. हिंदी शिक्षण के समय मुख्य संदर्भ शब्द की अर्थ व्याप्ति और विस्तार का है। रामलला के मंदिर बनने का संदर्भ अभी नया ही है। विदेशी विद्यार्थियों के इस जीवंत प्रसारण कार्यक्रमों को देखते सबसे अधिक जिज्ञासा रामलला शब्द को लेकर थी। राम तक को ठीक है पर लला के मायने समझाने में लाला-लला-लाल का अर्थ बताना आवश्यक हो गया कि उत्तर भारत में छोटे बच्चों को लाला, मोड़ा, छोरा से संबोधित किया जाता है। लाला ही प्यार में लला है। लाल पुत्र के लिए है यह एक रंग भी है और 'ऐसे क्या तुममें लाल जड़े हैं' वाक्य बहुमूल्य रत्न का संदर्भ भी देता है। भाई भैया से प्रारंभ होकर छुटभैय्ये का संदर्भ विदेशी अध्येताओं को समझाना सहज नहीं है। कक्षा के अंदर सीखा भाई भैया शब्द भा जाये भाई, मौसेरे, तयेरे, चचेरे, फुफुरे भाई की सीमा तोड़ कब बस/ऑटो/दुकान वाले भैया तक पहुँच जाता है और इससे भी आगे अपने क्षेत्र का ताकतवर व्यक्ति भाई में बदल जाता है, इसकी अर्थ व्याप्ति विदेशी अध्येताओं को स्पष्ट करना ज़रूरी है।

11. पानी केवल जल के अर्थ में ही प्रयुक्त नहीं होता, उसे पीकर केवल प्यास ही नहीं बुझाई जाती बल्कि शर्म से पानी-पानी हुआ जाता है, आँखों का पानी मर जाता है और किसी के पीटने पर व्यक्ति पानी भी मांग सकता है। संदर्भित श्रवण को समझना और उसके योग्य बनाने का कार्य अध्यापन का है।

12. भाषिक कौशलों की सामग्री का प्रश्न जटिल है। इस सामग्री में निश्चितता और प्रतिमान तय करना ज़रूरी है। कैसे सिखाएं कि हिंदी व्यवहार का विषय बन जाएं। संभवतः नीचे लिखे उपाय कारगर हैं। ये अनुभूत और अनुस्यूत प्रयोग हैं। (1) कक्षा में भाषिक क्रियाओं पर बल, (2) भाषिक खेलों का आयोजन, (3) पठन और लेखन संबंधी प्रतियोगिताएं, (4) आशु भाषण, वाद-विवाद, भाषण, सुलेख, अनुलेख, श्रुतलेख, (5) वाक्य रूपान्तर, (6) शब्दों से वाक्य निर्माण अभ्यास,

शब्दों का वाक्यों में प्रयोग, (7) वाक्य रूपांतरण, संवाद, (8) विशेष ध्वनियों का श्रव्य, (9) शैक्षिक संदर्शन के दौरान विद्यार्थियों को घटना स्थल का वर्णन करने का निर्देश, अतिरिक्त कक्षा की व्यवस्था, (10) कक्षा के बाहर हिंदी प्रयोग की बाध्यता, हिंदी और हिंदीतर भाषियों के साथ वार्तालाप, (11) हिंदी फिल्मों के संवाद, हिंदी गीत सुनने के अवसर देना, (12) देश भक्ति की कविता सुनने/सुनाने और कंठस्थ कराना, (13) कहानी का नाट्य रूपान्तरण कर उसे प्रस्तुत करना, (14) हिंदी का अधिकाधिक व्यवहार करने वाले को पुरस्कृत करना जैसी क्रियाएं हिंदी शिक्षण में सहायक होती हैं। आप जो मर्जी सिखाएं, पढ़ाएं शुरूआत तो शब्दों और वाक्यों से ही करते हैं न तो आपका चयन भारतीय संस्कृति और परिवेश से होना चाहिए।

13. भाषा के चारों कौशलों में दक्ष होने के बाद भाषा की सांस्कृतिक कौशल की जानकारी न केवल आवश्यक है बल्कि भाषा के व्यावहारिक प्रयोग के लिए पहला सोपान है। कुछ उदाहरणों से अपनी बात स्पष्ट करना चाहती हूँ।

भाषा समाज के बीच विकसित और पल्लवित होती है। प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। भाषिक प्रयोगों के पीछे विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर होती है जो भाषा के प्रवाह में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपी जाती है। कबीर, रहीम, तुलसी को पढ़ते न जाने कितने कितने संदर्भ है जिनकी अंतर्कथा जाने बिना भाव स्पष्ट नहीं किया जा सकता। 'जाके प्रिय न राम वैदेही पद' में विभीषण, भरत, बलि, ब्रज कविता के संदर्भ को समझे बिना उसका अर्थ ग्रहण ही नहीं होता। जब एक विदेशी पाठ में भीष्म प्रतिज्ञा, चीर हरण, लक्ष्मण रेखा, अंगद का पैर, भगीरथ प्रयास, ध्रुव सत्य, दुर्वासा से क्रोधी, कुंभकरणी नींद, भीमकाय शरीर, नारदमुनि, श्रवण कुमार, झाँसी की रानी, कंस मामा, शकुनि जैसे चरित्र और पात्रों के नाम सुनता है तो उनका इतिहास भी बताना होता है। कहावतों/मुहावरों की दुनिया इतनी अजीबोगरीब है कि कई-कई बार ये पहेली सी बन जाती है। विदेशी अध्येता के लिए बीरबल की खिचड़ी, मन चंगा तो कठौती में गंगा, गाज गिरना, तीन लोक से मथुरा न्यारी, क्षेत्र दिल्ली, रामलीला कृष्ण लीला, मेला तमाशा, आरती उतारना, पिंड दान, दीपक बुझाना जैसे न जाने कितने कितने संदर्भ है जो हिंदी के प्राण हैं और जिनसे परिचित कराये बिना हिंदी शिक्षण का कार्य अधूरा ही रह जाता है।

एक विदेशी का हिंदी सीखना केवल भाषाई कौशलों के शिक्षा और साहित्य की जानकारी तक ही सीमित नहीं है उससे कहीं आगे जाकर लोकोक्ति, मुहावरे और कहावतों को जानने की मांग करता है। बगुला भगत, हंस सा नीर क्षीर विवेकी, बकरी सा मिमियाना, कुंए का मेंढक, चीते की फुर्ती, गिद्ध सी दृष्टि जाने कितने-कितने ऐसे संदर्भ है जो सब विदेशियों की हिंदी सीखने-सिखाने की सीमा में समा जाते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में गणों, कलावा, तिलक, मंगल कलश, स्वस्तिक, गंगाजल, तुलसी, पीपल, वट, अशोक, आम्रपल्लव, नारियल फोड़ना, गोदान, आरती दीपक, ध्वजा, जपकीर्तन, यज्ञ, हवन, अग्नि, श्री, ओम, रोली, हल्दी, चंदन, अक्षत, अर्घ्य, प्रद्क्षिणा, दण्डवत प्रणाम जैसे कितने-कितने संदर्भ हैं जो किसी भी कार्यक्रम के प्रारंभ होने पर समझाने की मांग करते हैं। ये सब हिंदी सिखाने की विषय वस्तु के ही अंग-उपांग है। बस इतना तय करना ज़रूरी है कि इन्हें किस क्रम में रखा जाएं। पाठ पढ़ाते ही इतने इतने संदर्भ आ जाते हैं जब एक शब्द की व्याख्या में ही एक अंतर बीत जाता है। खीर और खीरा का अंतर केवल एक मात्रा का अंतर नहीं है। एक मधुर पदार्थ है तो दूसरी फल/सब्जी/सलाद की श्रेणी में आता है।

कुल मिलाकर भारत में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण की चुनौतियों बहुत व्यापक है। सब कुछ एक लेख में नहीं समेटा जा सकता पर इतना जरूर कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा सिखाने के तरीके अनुभव की पाठशाला में सीखे जाते हैं। आप जितना मर्ज़ी विषयों के ज्ञाता हैं। जितनी मर्जी उपाधि ले रखी हैं पर कक्षा में जाने से पूर्व आपको नया सीखने-जानने की गुंजायश सदैव बनी रहती है। ज्ञान का संसार इतना व्यापक और विशाल है। अपनी क्षमता और पात्रता के अनुसार उसमें से कुछ कुछ ही ग्रहण किया जाता है और सीखने की गुंजायश सदैव बनी रहती है। इसलिए अध्यापक स्वयं को सदैव अध्येता और शोधार्थी ही मानता है और जो इस भाव से जीते हैं, वे सदैव सीखने की प्रक्रिया में लगे रहते हैं।

एक शिक्षक के रूप में मेरा अनुभव है कि किताबों से अधिक आपको स्थिति, परिस्थितियाँ, विद्यार्थियों की जिज्ञासा और प्रश्न युक्त चेहरे, उनकी सदैव कुछ नया जानने की प्रवृत्ति अधिक प्रेरित करती है। जितना अधिक आप कक्षा में डिज़ाल्व होते हैं, उतना ही अधिक सीखने की प्रक्रिया में होते हैं। प्रत्येक वर्ष आपकी कक्षा के विद्यार्थी बदलते हैं ढेरों सवाल और जिज्ञासा के साथ उपस्थित होते हैं, आपके पिछले वर्ष का ज्ञान, नोट्स

सब बौना हो जाता है। आपको अपने को अद्यतन करना होता है। हर वर्ष अपनी शिक्षण विधियों में कुछ नया जोड़ना होता है, आप सिखाने की नई-नई विधि ईजाद करते है, अपनी बात को अच्छी तरह से कहने-समझने की कला सीखते है, शिक्षण सूत्रों की शरण में जाते हैं, नई जुगत भिड़ाते हैं, कैसे भी हो अपनी बात विद्यार्थी तक इस रूप में पहुँचाने के लिए कटिबद्ध होते है कि उसे सब समझ आ जाए। और इसके लिए कभी निर्देश की भाषा बदलते हैं तो कभी कहने का अंदाज, कभी सुर का पिच बदलते है तो कभी आवाज़ के वोल्यूम को अपडाउन करते हैं। कुछ भी करके आप स्वयं का संप्रेषित कर ही देते हैं। बस यही हिंदी शिक्षण का लक्ष्य है और सारी चुनौतियों को प्रकट करने का सेतु है।

बीना शर्मा *केन्द्रीय हिंदी संस्थान की पूर्व निदेशक, विदेशी भाषा शिक्षण विभाग की अध्यक्ष तथा 'प्रवासी जगत' पत्रिका की सम्पादक हैं। संपर्क: dr.beenasharma@gmail.com*

हिंदी शिक्षण-अधिगम की वैश्विक चुनौतियाँ और संभावनाएँ

नूतन पाण्डेय

हिंदी आज विश्व के सबसे वृहद् और महान लोकतान्त्रिक देश भारत की संपर्क भाषा या राजभाषा मात्र नहीं है बल्कि विश्व भाषा के रूप में भी स्थापित हो चुकी है। भारत का विश्व की आर्थिक महाशक्तियों में अपना स्थान मजबूत करना और विकासशील देश से एक विकसित राष्ट्र बनने की ओर बढ़ना हिंदी के वैश्विक वैस्तार्य की अनंत संभावनाओं का एक बड़ा कारण है। बॉलीवुड फिल्मों की वैश्विक लोकप्रियता, भारतीय डायस्पोरा की विश्व में सर्वत्र व्यापकता, अतुलनीय पर्यटन स्थलों का आकर्षण और भारत से बाहर विश्व के लगभग दो सौ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में किसी न किसी रूप में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन आदि तथ्य हिंदी के अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप को स्वतः सिद्ध करता है। विश्व भाषा डेटाबेस ऍथनोलॉग (2023, 26वां संस्करण) की रिपोर्ट के अनुसार 610 मिलियन प्रयोक्ताओं के साथ हिंदी विश्व की तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। भूमंडलीकरण और उन्नत संचार माध्यमों के युग में अपनी प्राचीन ऐतिहासिक परंपरा, समावेशी स्वरूप, लिपि की वैज्ञानिकता और वर्तमान वैश्विक सामर्थ्य के अनूठे संयोजन से युक्त हिंदी आज अपनी पहचान और प्रतिष्ठा के साथ भारत की सॉफ़्ट डिप्लोमेसी में भी महती भूमिका निभा रही है।

विश्व अर्थव्यवस्था में अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने और भारत के साथ सांस्कृतिक/कूटनीतिक संबंध विकसित करने हेतु विश्व भर के देशों में हिंदी की लोकप्रियता उसे सीखने की अनिवार्यता और उसमें दक्षता की बढ़ती माँग के कारण हिंदी विश्व के प्रतिष्ठित अकादमिक परिसरों में उपस्थित हो चुकी है। आज अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, चीन, जापान, जर्मनी, बेल्जियम, स्वीडन, मॉरिशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम, गयाना

और विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों में विभिन्न प्रयोजनों हेतु हिंदी शिक्षण किया जा रहा है। अपने-अपने देशों में हिंदी सीखने वाले विद्यार्थियों के अतिरिक्त विद्यार्थियों का एक बड़ा वर्ग ऐसा भी है जो भारत आकर हिंदी सीखने के लिए प्रयासरत है। विश्व में चहुँ ओर हिंदी सीखने के इच्छुक लोगों की दिन-प्रतिदिन बढ़ती संख्या हिंदी के भविष्य के लिए जहाँ शुभ संकेत है वहीं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण को प्रभावी बनाना भाषाविद् और शिक्षकों के लिए एक चुनौती भी है। इस चुनौती को शिक्षण सिद्धांतों के समग्र परिप्रेक्ष्य में आंकलित करके देखें तो इसके कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार करना अपेक्षित हो जाता है।

विदेशी भाषा शिक्षण की समस्त प्रक्रिया या कहें शिक्षण की सफलता मूलतः किसे? क्यों? और क्या? के सिद्धांत पर आश्रित होती है अर्थात् भाषा-ज्ञान किसे कराया जा रहा है, अध्येता का भाषा सीखने का उद्देश्य क्या है और इस उद्देश्य की प्राप्ति में किस प्रकार की शिक्षण-सामग्री का प्रयोग किया जा रहा है। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के संदर्भ में इन तीन बिंदुओं का गहन विश्लेषण जहाँ शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकता है वहीँ इनके प्रति असावधानी व्याघातकारक भी सिद्ध हो सकती है। भारत से बाहर पढ़ाई जाने वाली हिंदी का स्वरूप और उसके शिक्षण बिंदुओं में पर्याप्त भिन्नता होना स्वाभाविक है क्योंकि हिंदी का प्रयोक्ता-संसार विविधतापूर्ण है। विश्व में भारतीय लोगों के प्रवास की स्थितियों को केंद्र में रखकर देखें तो हिंदी अध्येताओं की हिंदी सीखने के प्रति रुचि, उनका भाषाई कौशल और संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। हिंदी अध्येताओं के परिवेश, हिंदी सीखने के अवसर और परिस्थितियाँ भी एक दूसरे से बहुत अलग हैं।

हिंदी अध्येताओं के प्रथम वर्ग में भारतीय मूल के वे लोग आते हैं जिनके पूर्वज लगभग 200 वर्ष पूर्व गिरमिटिया प्रथा के अंतर्गत जबरन सामूहिक प्रवास में मॉरीशस, गयाना, सूरीनाम, त्रिनिडाड, फ़ीजी आदि देशों को ले जाए गए थे। ये लोग भारत को अपने पूर्वजों का देश मानते हैं और मातृभूमि से दूर रहकर भी भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, परंपराओं, रीति-रिवाजों को संरक्षित करते हुए उसे नई पीढ़ियों को स्थानांतरित भी कर रहे हैं। इन देशों के भारतीयों की संतानें कर्तव्यबोध, भावबोध और सौन्दर्यबोध के लिए हिंदी पढ़ना चाहती हैं। ये भारतवंशी अपने देश के प्रति गौरव, सम्मान व अपनेपन का भाव लेकर जीते हैं और इसी भावना से हिंदी सीखकर देश के प्रति आत्मिक लगाव को अभिव्यक्त करते हैं। हिंदी के ध्रुवीकृत देश मॉरीशस में सन 1937 से हिंदी प्रचार-प्रसार में संलग्न हिंदी प्रचारिणी सभा का ध्येय वाक्य–‘भाषा गई तो संस्कृति भी गई’ इसी भावना

को परिपुष्ट करता है। मॉरीशस में बैठकाओं से विश्वविद्यालय तक पहुंची हिंदी की यात्रा मानव जिजीविषा और अस्मिता के लिए किए गए संघर्ष का प्रेरणादायक उदाहरण है। फ़ीजी, त्रिनिदाद, गयाना और सूरीनाम आदि अन्य गिरमिटिया देशों में भी कमोवेश हिंदी के प्रति इसी तरह के भाव देखने को मिलते हैं।

हिंदी का दूसरा अध्येता वर्ग पड़ोसी देशों-पाकिस्तान, भूटान, नेपाल, बर्मा, बांग्लादेश आदि देशों में रहने वाले लोगों का है जो भौगोलिक निकटता के कारण भारत से जुड़े हैं और परस्पर व्यापार, सहज आवागमन, संबंध-रिश्तेदारी, संस्कृतियों के आदान-प्रदान आदि कारणों से हिंदी सीखते हैं और बहुलता से हिंदी में व्यवहार भी करते हैं।

इन दो वर्गों के अतिरिक्त एक बहुत बड़ा वर्ग उन प्रवासियों का है जो सुखद भविष्य हेतु अपने व्यवसाय-कौशल के बल पर विकसित और समृद्ध देशों-अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्रिटेन, जर्मनी, रूस, जापान, चीन तथा खाड़ी देशों में गए और भिन्न-भिन्न कारणोंवश वहीं के स्थाई निवासी हो गए। इस वर्ग में अधिकतर तकनीकी क्षेत्र से जुड़े लोग आते हैं जो अपनी नई पीढ़ी को जड़ों से जोड़े रखने के लिए हिंदी सिखाने के इच्छुक हैं। इस पीढ़ी के विद्यार्थी अतुलनीय विरासत में रुचि रखने के साथ ही अपने भविष्य और करियर के प्रति सचेत हैं। यह अपने-आप में एक विशिष्ट तरह का शैक्षिक वातावरण है जिसमें विद्यार्थियों के लिए सांस्कृतिक तत्वों के समावेशन के साथ-साथ अख़बार, फिल्म, मीडिया, इतिहास, बाजार की शब्दावली और उससे संबंधित पाठ्यक्रम बनाए जाना ज़रूरी है जिससे हिंदी शिक्षण उनके लिए व्यवसायोन्मुखी भी हो सके।

उपर्युक्त वर्ग के देशों के अध्येता वर्ग को उपकोटिकृत करने पर एक ऐसा वर्ग भी देखने को मिलता है जो भारतीय मूल का न होने पर भी हिंदी सीखता है। इस वर्ग के अधिकाँश छात्र वे हैं जिन्हें हिंदी बिल्कुल नहीं आती, वे कभी भारत नहीं गए और उनकी पृष्ठभूमि तथा सांस्कृतिक परिवेश भारत से बिलकुल भिन्न है। इस वर्ग का हिंदी सीखने का मुख्य उद्देश्य भारत में व्यवसाय, नौकरी और अंतरराष्ट्रीय संबंध निर्माण हेतु भाषिक व्याकरण और संस्कृति को जानना है। अतः इन विद्यार्थियों को एक खास भाषिक वातावरण उपलब्ध कराना अपेक्षित है। हिंदी अध्येताओं की प्रवृत्तिगत भिन्नताओं को देखते हुए ही अमरीका और कनाडा आदि देशों के विद्यालयों में भारतीय मूल के विद्यार्थियों को हेरिटेज लर्नर और उनसे इतर विद्यार्थियों को नॉन हेरिटेज लर्नर की श्रेणी में रखा जा रहा है और उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण सामग्री तैयार की जा रही है। अमरीका, कनाडा, लन्दन आदि देशों के इस द्विआयामी भाषिक

परिवेश में 'कम्युनिकेटिव लैंग्वेज टीचिंग' सहायक सिद्ध हो सकती है जिसे छात्र केंद्रित (पर्सनलाइज्ड लैंग्वेज लर्निंग मेथड) विधि के प्रयोग से और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। इस प्रकार का शिक्षण पूरी तरह से शिक्षक की कुशलता पर निर्भर है क्योंकि हर छात्र के व्यक्तिगत उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम को पुनर्मूल्यांकित और संशोधित करते हुए पाठ्यक्रम के सतत् नवीनीकरण के साथ उसे विद्यार्थी की रुचि और उद्देश्य आधारित बनाना आवश्यक है। यह श्रम साध्य और समय साध्य कठिन प्रक्रिया है जिसकी सफलता शिक्षक के अनुभव, उसकी विशेषज्ञता और शैक्षणिक गतिविधियों के सामंजस्य पर निर्भर होगी। आज विश्व के सभी देशों में हिंदी पढ़ाने के लिए ऐसा कोई पाठ्यक्रम नहीं दिखाई पड़ता जो स्थिर, मानक, सर्व निर्धारित और सर्वमान्य हो पाठ्यक्रम का अभाव है। साथ ही भाषा का मानकीकृत रूप, जैसे वर्णमाला, व्याकरणिक नियम, मानक वर्तनी और मानक कोश आदि शिक्षण सामग्री का उपलब्ध होना भी अति आवश्यक है। देखने में आता है कि प्रत्येक शिक्षण संस्थान में शिक्षक अपने ज्ञान के आधार पर शिक्षण सामग्री का चयन करता है, जिस कारण औपचारिकता और समरूपता का अभाव देखा जाता है। इधर विगत वर्षो से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (ICCR) द्वारा विभिन्न देशों में स्थापित सांस्कृतिक केंद्रों में हिंदी सिखाने के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान और महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के संयुक्त प्रयास से निर्मित 'मानक हिंदी पाठ्यक्रम' का उपयोग किया जा रहा है जो इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है।

शिक्षार्थी के उद्देश्य को दृष्टिगत रखने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि शिक्षण का माध्यम क्या हो? शिक्षण के माध्यम की भिन्नता शिक्षण अधिगम के स्वरूप और उसकी प्रक्रिया में व्यापक फेरबदल लाने की संभावना निर्मित कर सकती है। आम धारणा है कि भारत से बाहर हिंदी पढ़ाई जाने के लिए अंग्रेज़ी माध्यम सर्वाधिक उपयुक्त है। लेकिन रूस, चीन, जापान, हंगरी, चेक, पोलैंड, इटली, कोरिया और इस्रायल आदि देशों के संदर्भ में यह अवधारणा पूर्णतया मिथ्या सिद्ध होती है क्योंकि इन देशों में मातृभाषाओं में शिक्षण को प्राथमिकता दी जाती है और भारत से आये शिक्षकों से भी अपेक्षा की जाती है कि उन्हें उनके देश की भाषा का कार्यसाधक ज्ञान हो ताकि वे विद्यार्थियों के साथ आपसी संवाद स्थापित करके सहज भाषाई परिवेश निर्मित कर सकें। स्थानीय भाषा की जानकारी के अभाव में भारतीय शिक्षकों को परस्पर विनिमय के समय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके समस्या के समाधान हेतु प्रत्युत्तर में अंग्रेज़ी के साथ –साथ अन्य भाषाओं, जैसे- रूसी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं को भी विकल्प के रूप में माध्यम

बनाया जाये जिससे अन्य भाषाओँ के माध्यम से भी हिंदी शिक्षण की व्यवस्था संभव हो सके।

विदेशी भाषा-भाषियों के लिए वैज्ञानिक और छात्र केंद्रित पाठ्यक्रम निर्धारित करते हुए भाषा वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए अनुस्तरीकरण के सिद्धांत का अनुपालन भी आवश्यक है। हिंदी भाषा सिखाते समय पाठ्य बिन्दुओं को सरल से कठिन और स्थूल से सूक्ष्म क्रम में रखते हुए भाषा शिक्षण किया जाना उपयोगी होगा। विभिन्न देशों में कार्य कर रहे शिक्षकों से बातचीत पर जानकारी मिली कि कई बार विद्यार्थियों को पूर्ण पाठ्यक्रम के संपन्न होने तक जोड़े रखना कठिन हो जाता है क्योंकि छात्रों का एक बड़ा प्रतिशत पाठ्यक्रम को बीच में ही छोड़ देता है। स्तरीयता के क्रम को ध्यान में रखने से विद्यार्थियों की सीखने के प्रति रुचि बनी रहती है। इन मूलभूत मुद्दों पर ध्यान रखने के साथ ही हिंदी पाठ्यक्रम उस देश की स्थानीयता और परिवेश से सम्बद्ध नही होते, जिससे विद्यार्थियों को विषयवस्तु को समझने और आत्मसात करने में कठिनाई होती है, अनजान परिवेश से विद्यार्थी खुद को जोड़ने में अक्षम होते हैं जिसका परिणाम सीखने में अरुचि के रूप में देखने को मिलता है। अतः उस देश के रहने वालों की मातृभाषा और संस्कृति के तत्वों को ध्यान रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाए। जापान के विश्वविद्यालयों में रामायण के माध्यम से हिंदी पढ़ाना और अमरीका के विश्व विद्यालयों में स्टार टॉक संस्था द्वारा अपनाई गई शिक्षण विधियां शिक्षा जगत में एक अनूठा प्रयोग कही जा सकती हैं। दूसरी भाषा सीखने वाले अधिकाँश विद्यार्थी चूँकि वयस्क होते हैं अतएव आयु स्तर, रूचि, सीखने की क्षमता, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और भविष्य की आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम को वैश्विक मानकों के अनुसार निर्धारित करना भी आवश्यक है। वर्तमान तकनीकी युग में शिक्षा प्रौद्योगिकी तथा विकसित तकनीकी संसाधनों का सहारा लेकर कक्षेतर गतिविधियों तथा आभासी तौर पर कृत्रिम भारतीय सांस्कृतिक वातावरण निर्मिती, वर्चुअल रियलिटी, 360 डिग्री विजुअलाईजेशन ग्रीन स्क्रीन, थ्री डी प्रिंटिंग आदि के द्वारा छात्रों की रूचि को विस्तृत किया जा सकता है और भाषा शिक्षण के माध्यम से सांस्कृतिक संदर्भों को व्याप्ति दी जा सकती है।

भाषा शिक्षण प्रक्रिया में विद्यार्थी और शिक्षक महत्वपूर्ण घटक होते हैं। सीखने के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मकता जहाँ शिक्षण को सफल बनाने में उत्तरदायी होती है वहीं यह शिक्षक की योग्यता और अनुभव पर भी निर्भर करती है। विदेशी भाषा शिक्षण में तो शिक्षक की भूमिका और भी प्रभावी हो सकती है। हिंदी के संदर्भ में यह स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं कही जा सकती। विश्वविद्यालयों के औपचारिक शिक्षण को छोड़कर

अधिकतर देशों में मंदिरों, बैठकाओं और सामाजिक/धार्मिक संस्थाओं द्वारा हिंदी का शिक्षण किया जाता है, इसलिए उनके पास शिक्षण के औपचारिक साधनों/सामग्री/स्थान और प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव होता है, जिससे अध्ययन की गंभीरता प्रभावित होती है। विदेशों में पढ़ा रहे शिक्षकों को द्वितीय या विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण का प्राय: अनुभव नहीं होता जिस कारण वे अपने शिक्षण को आधुनिक शिक्षण पद्धतियों यथा–संवाद, संस्कृति, संबंध संतुलनीयता और समुदाय आदि पांच 'स' के अनुकूल नहीं बना पाते। कई बार शिक्षकों द्वारा अज्ञानतावश मानक शिक्षण प्रविधियों का पालन नहीं किया जाता है। अतएव शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए विदेश मंत्रालय द्वारा शिक्षा मंत्रालय के सहयोग से समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाने आवश्यक हैं, ताकि शिक्षक समय के अनुसार अपनी शिक्षण विधियों में नवाचार का प्रयोग कर सके और विद्यार्थियों की आवश्यकता को समझकर तदनुसार उन्हें शिक्षित कर सके। केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय नई दिल्ली, महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, भारतीय भाषा संस्थान मैसूर और विभिन्न विश्वविद्यालय शिक्षा मंत्रालय के निर्देशन और आपसी सहयोग से विश्व में हिंदी शिक्षण को प्रभावी बनाने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। आईसीसीआर हिंदी पीठ की स्थापना के द्वारा भारत विभिन्न देशों में भारत मित्र बनाने का उल्लेखनीय कार्य करता आ रहा है 65 देश में 69 पीठ स्थापित किए गए हैं इसी के साथ केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय द्वारा वर्ष 1960 से अहिंदीभाषी क्षेत्रों के विद्यार्थियों और विदेशी छात्रों के लिए पत्राचार माध्यम से त्रिस्तरीय शिक्षा प्रदान की जा रही है। निदेशालय द्वारा विभिन्न भाषाओँ में बनाई गई शिक्षण सामग्री के साथ ही विश्व की विभिन्न भाषाओँ में वीडियो व्याख्यान, वार्तालाप पुस्तकें, स्वयं शिक्षक और कोश तैयार किए गए हैं जो विदेश में रह रहे लोगों को हिंदी सिखाने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। विदेश मंत्रालय द्वारा भारतीय उच्चायोगों के माध्यम से इस पाठ्य/पाठ्येतर शिक्षण सामग्री का प्रयोग विदेशी छात्रों के लिए किया जा सकता है। डिजिटल युग ने इंटरनेट, सोशल मीडिया और डिजिटल सामग्री के माध्यम से हिंदी की वैश्विक पहुंच को आसान बना दिया है। I CCR द्वारा केंद्रीय हिंदी निदेशालय तथा इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए हैं, जिसके तहत तीनों संस्थाओं के संयुक्त तत्वावधान में विदेशी छात्रों के लिए 60 घंटे की अवधि का पाठ्यक्रम तैयार किया गया है जो विदेशी छात्रों के मध्य अत्यंत लोकप्रिय हो रहा है।

विश्व भर में हिंदी की निरंतर बढती लोकप्रियता संकेतित करती है कि अनेकविध चुनौतियों के बावजूद भारत से बाहर हिंदी शिक्षण को प्रभावी और सतत समृद्ध बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं। विभिन्न सरकारी, गैरसरकारी संस्थाओं और व्यक्तिगत प्रयासों से हिंदी अपने लक्ष्य की ओर कदम बढ़ा रही है। इस कार्य को आगे बढाने में भारतीय विद्वानों के साथ उन असंख्य विदेशी भाषाविद् और शिक्षकों के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता जिन्होंने विभिन्न संस्कृतियों के होने बावजूद हिंदी से प्रेम किया, समर्पण भाव से हिंदी सीखकर उसे अपने जीवन में आत्मसात किया और उसकी निस्वार्थ सेवा करते हुए अपने बहुमूल्य जीवन को समर्पित कर दिया।

संदर्भ :

- सक्सेना, उषा राजे, ब्रिटेन में हिंदी: मेधा बुक्स, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष : 2006
- गंभीर, विजय, 2017, अमरीका में हिंदी शिक्षण व प्रशिक्षण, विश्व हिंदी पत्रिका, मॉरीशस
- पेन्यूली, अर्चना, 2018, विदेशों में हिंदी शिक्षण की चुनौतियाँ, बहुवचन (जुलाई-सितम्बर) महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
- गंभीर, सुरेन्द्र 2008, विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सीखना-सिखाना, हिंदी सब संसार, संपादक : सुरेश ऋतुपर्ण, गौरव प्रकाशन, दिल्ली

नूतन पाण्डेय *केन्द्रीय हिंदी निदेशालय में सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत हैं तथा निदेशालय की प्रतिष्ठित पत्रिका 'भाषा' की सम्पादक हैं। मॉरीशस स्थित भारतीय उच्चायोग में डॉ. नूतन पाण्डेय भारत सरकार की ओर से प्रतिनियुक्त द्वितीय सचिव के रूप में कार्यरत भी रही हैं। संपर्क: pandeynutan91@gmail.com*

ब्रिटेन के हिंदी सेवी डॉ. रोनल्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर और उनका हिंदी को अवदान

उषा राजे सक्सेना

स्कॉटिश मूल के डॉ. रोनल्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर को आरंभ से ही भारतीय संस्कृति और भाषा में रुचि थी। ब्रिटेन में अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने 1964 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंदी की उच्च शिक्षा ग्रहण की। तदोपरांत 1965 में उन्होंने 'लंदन स्कूल ऑफ़ अफ्रिकन एंड ओरियंटल स्टडीज़' से 'अ स्टडी ऑफ़ अर्ली ब्रज भाषा प्रोज़' विषय पर शोध कर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की, फिर वहीं विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में उनकी नियुक्ति बतौर हिंदी के अध्यापक की हुई फिर कुछ ही अर्से बाद उनकी नियुक्ति कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक के पद पर हो गई और वे कैम्ब्रिज चले गए।

डा. स्टुअर्ट मैकग्रेगर का नाम 20वीं सदी के शीर्ष विद्वानों में आता है। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं हैं। 1968 में प्रकाशित उनकी 'ओरछा के इंद्रजीत की भाषा' हिंदी साहित्य की एक प्रामाणिक महत्वपूर्ण पुस्तक है। डॉ मैकग्रेगर बताते हैं, इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लंदन में उन्हें 'इंद्रजीत ऑफ़ ओरछा' पर कई दुर्लभ टीकाएँ देखने को मिलीं, उन्हीं में से एक टीका संस्कृत में लिखे 'भर्तहरि के शतक' की भी थी जिसे ओरछा के राजा इंद्रजीत ने ब्रज भाषा गद्य में प्रस्तुत किया था। अभी तक यही मान्यता थी कि ब्रज भाषा में केवल पद्य की ही रचनाएँ हुई हैं परंतु गद्य में लिखी इस मध्यकालीन लुप्तप्राय टीका ने उन्हें अध्ययन की एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने इस टीका का गहन अध्ययन किया और अपने निष्कर्षों को अँग्रेज़ी में 'सम भर्तृहरि कमेंट्स इन अर्ली ब्रज भाषा प्रोज़' शोध-ग्रंथ एवं अन्य शोध पत्रों के साथ हिंदी साहित्य जगत के सामने रखा जो आज हिंदी साहित्य की बहुमूल्य संपदा है। उन्होंने हिंदी-व्याकरण एवं शब्द कोश पर भी उल्लेखनीय

कार्य किया। डॉ. मैकग्रेगर का लिखा 'आउटलाइन ऑफ़ हिंदी ग्रामर विद एक्सरसाइज़ेज़' भारत एवं विदेशों में हिंदी शिक्षकों एवं छात्रों द्वारा अनेक शिक्षण संस्थाओं में व्याकरण पढ़ाने के कार्य में लाया जा रहा है। पुस्तक का पहला संस्करण ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 1971-72 में प्रकाशित हुआ। अब तक उसके पाँच-छः संस्करण निकल चुके हैं। 261 पृष्ठों की इस पुस्तक में 26 अध्याय हैं। पुस्तक मूलतः अंग्रेज़ी भाषा में लिखी गई है किंतु छात्रों को हिंदी व्याकरण समझाने के लिए, सुविधा और आवश्यकतानुसार नागरी लिपि और आधुनिक हिंदी का भरपूर प्रयोग हैं। अंतिम अध्याय में हिंदी के छोटे-छोटे टुकड़े भिन्न-भिन्न अभ्यास के लिए दिये गए हैं। पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, 'पुस्तक इस सोच के साथ लिखी गई है कि छात्र को हिंदी का कोई पूर्व ज्ञान नहीं है। पाठ और अभ्यास पर कार्य करने से पूर्व छात्र को परिचय वाले भाग को पढ़ कर कार्य करने की विधि को समझ लेना चाहिए। सबसे पहले उसे हिंदी-लिपि (ककहरे) का अभ्यास करना चाहिए।'[1]

पुस्तक में दिए गए लिप्यन्तर के लिए वे लिखते हैं, "....लिप्यन्तर से उसे (छात्र को) लिपि जाने बिना भी व्याकरण समझने में आसानी होगी... साथ ही उच्चारण के अभ्यास के लिए किसी हिंदी-भाषी अथवा भाषा-प्रयोगशाला की सहायता ली जानी चाहिए।"[2] डॉ. मैकग्रेगर का मानना है कि हिंदी जैसी समृद्ध भाषा सीखना, तमिल और दुनिया की अन्य भाषाओं से कहीं आसान है। डॉ. मैकग्रेगर की बनाई 'द ऑक्स्फ़ोर्ड हिंदी-इंग्लिश डिक्शनरी' जिसे ऑक्स्फ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस- ऑक्स्फ़ोर्ड ने पहली बार 1993 में प्रकाशित किया, और जिसका इलेकट्रॉनिक वर्ज़न 2000 में कमेटी ऑफ़ इन्सटीट्यूशनल कॉपरेशन कैम्पेन, इलिनाएज़ ने निकाला। यह मानक शब्दकोश अब भारत और अन्य देशों में भी ऑक्स्फ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की अनुमति से छप रहा है। 70,000 शब्दों वाली इस डिक्शनरी में प्रति वर्ष नए शब्द जोड़े जा रहे हैं जिनमें बहुत सारे देवनागरी के शब्द भी होते हैं। इस शब्दकोश के बनाने में उन्होंने कई भारतीय और विदेशी विद्वानों की सहायता ली। डॉ. मैकग्रेगर के सहायक डॉ. जे.डी. स्मिथ ने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में ही हिंदी कम्प्यूटर की सेटिंग के साथ फाँट का चयन किया जिसका सारा व्यय वहन किया ब्रिटिश एकेडमी- यू.के. ने। 1992 में उन्होंने एक अन्य शोध ग्रंथ 'साउथ एशिया में भक्ति साहित्य' विश्व साहित्य के सम्मुख रखा। डॉ. मैकग्रेगर का लेख 'बंगाल में हिंदी का विकास–1850-89', जर्नल ऑफ़ द रॉयल सोसाइटी फ़ॉर इंडिया, पाकिस्तान और सीलोन के जनवरी 1972 अंक में प्रकाशित हुआ। 'आधुनिक हिंदी विकास', 'मानक हिंदी का उद्भव तथा हिंदी गद्य कथा साहित्य' उनके अन्य लंबे निबंध हैं। 'द फ़ॉरमेशन

ऑफ़ मॉडर्न हिंदी एज डिमॉस्ट्रेटेड इन अर्ली 'हिंदी' डिक्शनरीज़' उनकी रॉयल नीदरलैंड अकादमी ऑफ़ आर्ट एन्ड साइंस द्वारा आयोजित 'आठवां गोंडा लेक्चर्स' 23 नवंबर 2000 में दिया गया भाषण है जिसमें उन्होंने आधुनिक हिंदी के अस्तित्व में आने की प्रक्रिया का खोजपूर्ण विस्तार देते हुए प्राचीन पांडुलिपियों के फोटोग्राफ़ भी प्रस्तुत किए हैं। इस पुस्तक में उन्होंने ब्रजभाषा के नंददास की 16 वीं सदी में लिखे ब्रज भाषा के थिसॉरस 'मान मंजरी' और 'एकार्थ मंजरी', फ्रैंक्वायज़ मैरी के 1703 में लिखे 'द थिसॉरस लिंगुआना इंडियाना', जिसमे सूरत और सूरत के आस-पास के हिंदुस्तानी शब्दों का कोश है, संग्रहीत किया है। फ्रैंक्वायज़ मैरी के 'द थिसॉरस लिंगुआना इंडियाना', पुस्तक में हिंदुस्तानी शब्द देवनागरी और रोमन में लिखे गए हैं तथा शब्दार्थ ग्रीक और लैटिन में दिए गए हैं। तीसरा केटलर का 'मैनुअल ऑफ़ इनस्ट्रक्शन इन हिंदुस्तानी एंड परसियन' चौथा मुगल शहज़ादा अज़्मशाह के लिए लिखा गया 'तुहफ़ातुएल हिंद' जिसमें ब्रज भाषा के व्याकरण और काव्य शास्त्र का अध्ययन है तथा 3,000 ब्रज-भाषा और फ़ारसी शब्दों के उच्चारण, और सांस्कृतिक कमेंट्री दी गई है। (संभवतः यह पुस्तक भारतीय-मुस्लिम जाति की शिक्षा के लिए बनाई गई थी।) जिसकें अंतिम पृष्ठों पर केटलर के शब्दकोश की तरह लेक्सोग्रफ़िकल अपेंडिक्स है। यह पुस्तक हिंदी साहित्य के अध्येताओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

डॉ. मैकग्रेगर का एक अन्य व्याख्यान 'अ न्यू वायस फ़ॉर न्यू टाइम्स, डेवलपमेंट ऑफ़ मॉडर्न हिंदी लिटेरेचर' जो उन्होंने आस्ट्रेलिया की नेशनल यूनिवर्सिटी में 22 अक्तूबर 1980 को 'बाषम लेक्चर्स सेमिनार'[3] में दिया। इस महत्वपूर्ण व्याख्यान में उन्होंने कहा, 'पिछले माह 'द कैनबरा टाइम्स' के संपादकीय में विश्व में भारत का महत्व और उसकी संप्रति पर लेख छपा था। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि इस तरह के लेख और अधिक आने चाहिए, क्योंकि आधुनिक इंडिया के बारे में बहुत सी बातें या तो भुला दी गई हैं या उसे अनदेखा किया जा रहा है जैसे उसकी भौगोलिक विशालता, जनसंख्या, बढ़ती हुई आर्थिक-शक्ति, डेमोक्रेसी, प्राचीन संस्कृति का आधुनिकरण, इत्यादि। भारत के संप्रति की लिस्ट बहुत लंबी है...'[4] प्रो. बासम की पुस्तक 'द वॉन्डर, दैट इज़ इंडिया' को उद्धृत करते हुए आगे उन्होंने कहा, 'हिंदी दुनिया की तीसरी भाषा है और साउथ एशिया की बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है। हम इस भाषा को हिंदी कहें, उर्दू कहें या हिंदुस्तानी कहें कोई फ़र्क नहीं पड़ता... परंतु जब लिखने की बात होती है तो स्थिति बदल जाती है...[5]' अंत में उन्होंने कहा, 18वीं सदी और आगे जो भाषा निथर कर आई... वह दिल्ली और उसके आस-पास की भाषा थी जिसमें परशियन कम, संस्कृत और स्थानीय बोली का

समावेश अधिक था जिसे शासक, अधिकारी, मिशनरी और शिक्षकों ने भी अपनाया.... यह मिली-जुली भाषा 19वीं सदी तक चली...आगे उन्होंने कहा, यह जो नई हिंदी की शैली उभर कर आई है, उसमें एक ऐसी 'ऑरगैनिक' शक्ति है जिसमें 'इनहेरेंट प्रॉस्पेक्ट ऑफ़ ग्रोथ' है। ..वही उसे दुनिया की एक बेहद शक्तिशाली भाषा बनाती है।'[6]

'मानक हिंदी का उद्भव तथा हिंदी गद्य साहित्य' उनका एक अन्य लंबा शोध निबंध है जिसमें डॉ. मैकग्रेगर मानते है कि हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से एक है। उनका कहना है, भारत के सांस्कृतिक और भाषाई संस्कृति को समझने के लिए हिंदी का ज्ञान आवश्यक है। वर्तमान में हिंदी का महत्व और अधिक बढ़ा है, क्यों कि भारत आज शिक्षा, उद्योग और तकनीकी के हिसाब से विश्व के अग्रणी देशों में है।

तुलसी, कबीर, सूर और नंददास में उनकी गहन रुचि रही है। उन्होंने इन कवियों के पदों का अंग्रेज़ी अनुवाद किया है जिसका उद्धरण समय-समय पर उनके लेखों और भाषणों में पढने को मिलता है। अँग्रेज़ी भाषा में लिखी 'डिवोशनल लिटेरेचर इन साउथ एशिया' उनकी एक अन्य संपादित पुस्तक है जिसमें उनके कैम्ब्रिज में आयोजित कॉनफ्रेन्स 'न्यू इंडो-आर्यन लैंगुएजेज़–1985-88' पर दिए गए विभिन्न वक्ताओं के 39 भाषणों को संजोया गया है। विभिन्न लेखों में हिंदी, मराठी और संस्कृत के उद्धरण देवनागरी में और उर्दू-फ़ारसी के उद्धरण फ़ारसी लिपि में दिए गए हैं। पुस्तक के आरंभ में एक पृष्ठ पर प्रयोग में आई लंबे शब्दावलियों के संक्षिप्तिकरण की सूची दी गई है और अँत के तीन पृष्ठों 314-322 पर विषय-सूची है। इस पुस्तक को उन्होंने स्वयं संपादित किया है जिसे कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस ने छापा है।

1975 में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर, में डॉ. मैकग्रेगर मुख्य वक्ता थे जिसमें उन्होंने कहा, '18वीं शताब्दी में भारतीयों और अंग्रेजों का आपस में मिलना-जुलना शुरू हुआ और तभी से हिंदी के महत्व को हमारे देश में अनुभव किया जाने लगा। उन्होंने लंदन के 'लंदन स्कूल ऑफ़ अफ्रिकन एंड ओरियंटल स्टडीज़' में हो रहे कामों का व्योरा देते हुए कहा, हिंदी विभाग में विद्यार्थी पहले वर्ष से ही हिंदी-साहित्य पढ़ता है। सूर, तुलसी आदि की रचनाओं के साथ-साथ आधुनिक साहित्य का भी अध्ययन करवाया जाता है। हिंदी भाषा का इतिहास पढ़या जाता है। शोध और पठन सामग्री तैयार करने में भी हम प्रयत्नशील है। एक विद्यार्थी 'बीसलदेव रासो' पर काम कर रहा है। साथ ही अनुवाद का काम भी चल रहा है। इस समय तुलसीदास की कवितावली और विनय पत्रिका तथा नंदनदास की दो रचनाओं का अनुवाद अंग्रेज़ी में हो गया हैं।...' अंत में उन्होंने

कहा, 'हिंदी की एक द्रुतवाहिनी धारा हमारे देश में भी बह रही है।' 24 फरवरी 1979 में उन्हें भारत सरकार द्वारा 'विश्व हिंदी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। डा. मैकग्रेगर की महत्वपूर्ण उपस्थिति चार विश्व हिंदी सम्मेलनों में रही, नागपुर, मॉरिशस, दिल्ली और लंदन। 1999 में लंदन में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में उन्होंने नागार्जुन पर एक लंबा खोजपूर्ण लेख पढ़ा। ड़ॉ. मैकग्रेगर अब अवकाश प्राप्त हैं, इंग्लैण्ड के केम्ब्रिज शहर में रहते हैं। विश्व हिंदी साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। वे आज भी व्यस्त और अध्ययनरत हिंदी-भाषा के लिए प्रतिबद्ध हैं।

1970-80 का दशक, डॉ. मैकग्रेगर का दशक सोआस विश्वविद्यालय का स्वर्णकाल था। उन दिनों विश्वविद्यालय के पास छात्रों को आर्थिक सहायता देने के लिए ग्रांट आदि की सुविधा थी। उस समय हिंदी विभाग में 21 लोगो की नियुक्ति थी। हिंदी विभाग में कई महत्वपूर्ण कार्य और साथ में कई बदलाव भी हुए। 1987-88 में विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन के लिए, बी.ए. के कोर्स के लिए मॉड्यूल पाठक्रम बना जिसमें हिंदी, साउथ एशियन साहित्य के अध्ययन का एक हिस्सा बनी। अतः 1994-95 में हिंदी स्नातक कक्षा में पहले वर्ष में हिंदी सहायक भाषा के रूप में पढ़ायी जाने लगी।

सन्दर्भ संकेत

1. भूमिका 'आउटलाइन ऑफ़ हिंदी ग्रामर विद् एक्सरसाइज़ेज़' और पिछला पन्ना, यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्स्फ़ोर्ड 1971
2. 'आउटलाइन ऑफ़ हिंदी ग्रामर विद एक्सरसाइज़ेज़''–भूमिका और पिछला पन्ना, युनिवर्सटी प्रेस ऑक्स्फ़ोर्ड 1971
3. आर्थर, लूएलम बाशम-1965-79 आस्ट्रेलिया के नेशनल यूनिवर्सिटी के एक प्रख्यात प्राचार्य जिनके सम्मान में इस सेमिनार को यह नाम दिया गया।
4. वही व्याख्यान
5. आर्थर, लूएलम बाशम-1965-79 आस्ट्रेलिया के नेशनल यूनिवर्सिटी के एक प्रख्यात प्राचार्य जिनके सम्मान में इस सेमिनार को यह नाम दिया गया।
6. वही, बाशम सेमिनार का व्याख्यान।

उषा राजे सक्सेना *ब्रिटेन में रह रही प्रतिष्ठित वरिष्ठ हिंदी कथाकार हैं। 'ब्रिटेन में हिंदी' पुस्तक की लेखिका भी हैं। संपर्क: usharajesaxena@gmail.com*

विदेशी हिंदी पत्रकारिता : स्थिति, संभावनाएं और चुनौतियां

जवाहर कर्नावट

भारत की हिंदी पत्रकारिता की तरह ही विदेशों में भी हिंदी पत्रिका का गौरवशाली इतिहास रहा है। विश्व के अनेक देशों में हिंदी पत्रकारिता केवल कुछ पत्र-पत्रिकाओं के छपने-बंटने तक ही सीमित नहीं रही अपितु भारतवंशियों के संघर्ष की आवाज़ भी बनी। 19वीं शताब्दी में मॉरीशस, फ़ीजी, दक्षिण अफ़्रीका, गयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि देशों में गिरिमिटिया के रूप में पहुंचे इन आप्रवासी भारतीयों ने प्रारंभिक वर्षों में अनेक अत्याचार सहन किए। किंतु इन्होंने अपने परिश्रम, लगन तथा ईमानदारी से इन देशों में सुशिक्षित, प्रतिष्ठित तथा सम्मानित नागरिक का स्थान प्राप्त कर लिया। इन देशों में भारतवंशियों के लिए अपनी भाषा, संस्कृति और जीवन शैली अत्यंत महत्वपूर्ण रही। शनैः शनैः इन देशों में हिंदी, दैनिक जन-जीवन के साथ शिक्षण संस्थानों में भी स्थापित हो गई। यही कारण था कि इन देशों में हिंदी के संचार-माध्यम विकसित हो गए। भारतवंशियों को अपने संघर्ष हेतु एकजुट करने एवं प्रतिष्ठित स्थान दिलाने में भी हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसके अलावा 20वीं शताब्दी में अमरीका और यूरोप के देशों में जाकर निवास करने वाले भारतवंशी हिंदी प्रेमियों ने भी अपने-अपने देशों में हिंदी भाषा और साहित्य को जीवित रखने तथा भारतीय समाज को एक सूत्र में जोड़े रखने के लिए हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की शुरुआत की।

मॉरीशस और फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता

विश्व के जिन प्रमुख देशों में हिंदी पत्रकारिता ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया, उनमें मॉरीशस और फ़ीजी का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता

की शुरुआत गांधीजी की प्रेरणा से मणिलाल डॉक्टर ने की थी. उन्होंने 15 मार्च 1909 को 'हिंदुस्तानी' पत्रिका का प्रकाशन कर प्रवासी भारतीयों को जागृत किया. इसकी शुरुआत अंग्रेज़ी और गुजराती से की गई किंतु बाद में इसे अंग्रेज़ी और हिंदी दो भाषाओं में छापा जाने लगा. सन 2009 में मुझे मॉरिशस के पोर्ट लुई स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार में मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता के इतिहास के साक्षात दर्शन हुए। 'हिंदुस्तानी' के पश्चात मॉरीशस में चालीस से अधिक पत्र-पत्रिकाएं दैनिक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि के रूप में प्रकाशित हुईं। साधनाभाव के बावजूद मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता को प्रवासी भारतीयों ने समृद्ध किया। 1935 से 1938 के बीच हस्तलिखित 'दुर्गा' पत्रिका का प्रकाशन विशेष उल्लेखनीय है। मॉरीशस आर्य पत्रिका, मॉरीशस इंडिया टाइम्स, मॉरीशस मित्र, आर्यवीर, जागृति, जनता, जमाना, नवजीवन, अनुराग, स्वदेश आदि पत्र-पत्रिकाओं ने मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता में नए आयाम जोड़े। श्री अभिमन्यु अनत के संपादन में प्रकाशित 'वसंत' पत्रिका का हिंदी पत्रकारिता के विकास में विशेष योगदान रहा है। आज भी मॉरीशस में 'वंसत', 'सुमन' 'रिमझिम', 'आक्रोश', 'इंद्रधनुष', 'पंकज' और 'आर्योदय' हिंदी पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही है. इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रवासी भारतीयों ने अपनी संस्कृति परम्पराओं और रचनात्मकता को जीवित रखा है।

मॉरीशस के समान फ़ीजी में भी प्रवासी भारतीयों ने हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत कर इसे नई ऊँचाईयों तक पहुंचाया। यहां सन 1913 में मणिलाल डॉक्टर के संपादन में 'सेटलर' का हिंदी अनुवाद साइक्लोस्टाइल रूप में प्रकाशित हुआ। इसके बाद फ़ीजी समाचार (37-1923) साप्ताहिक निकला जो काफी लोकप्रिय हुआ। 1937 से 1950 के मध्य अनेक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित हुए। किंतु कुछ अंकों के बाद ही अदृश्य हो गए. फ़ीजी की हिंदी पत्रकारिता में पं कमला प्रसाद मिश्र और पं. विवेकानंद शर्मा का भी विशेष योगदान है। पं. मिश्र द्वारा प्रकाशित पत्र "जय फ़ीजी" अत्यंत लोकप्रिय हुआ। जय फ़ीजी ने प्रवासी भारतीयों को अपनी संस्कृति एवं भाषा से जोड़े रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया। डॉ. विवेकानंद शर्मा द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'संस्कृति' ने फ़ीजी में भारतीयता को जागृत रखा।

फ़ीजी से प्रकाशित शांतिदूत एक ऐसा पत्र था जो 85 से अधिक वर्षों से निरंतर प्रकाशित होता रहा। 11 मई 1835 को साप्ताहिक अख़बार के रूप में इसकी शुरुआत फ़ीजी टाइम्स एंड हेरल्ड नामक ब्रिटिश संस्थान द्वारा की गई। इस पत्र के संपादक का कार्यभार संभाला श्री गुरुदयाल शर्मा ने जो पेसिफ़िक प्रेस से हिंदी पत्रकारिता का अनुभव

प्राप्त कर चुके थे। प्रारम्भ में 8 पृष्ठीय शांतिदूत की 300 प्रतियां प्रकाशित हुईं जो राजधानी सुवा तथा आसपास के क्षेत्रों में तुरंत बिक गई। धीरे-धीरे यह पत्र रोचक सामग्री और प्रस्तुति के कारण अत्यंत लोकप्रिय हो गया और प्रसार संख्या बढकर 16 हज़ार तक पहुंच गई। 25 वर्ष पूरे होते-होते शांतिदूत फ़ीजी का सबसे सम्मानित पत्र बन गया। सन 1950 तक शांतिदूत हिंदी तथा अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था किंतु बाद में इसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ और केवल हिंदी में प्रकाशित होने लगा। शांतिदूत के 50 वर्ष पूर्ण होने पर विशेषांक भी प्रकाशित हुआ। शांतिदूत का दीपावली विशेषांक प्रत्येक वर्ष अत्यंत समृद्ध एवं विशिष्ट होता था। 125 से अधिक पृष्ठों के विशेषांक में आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड के लेखकों की रचनाओं का भी समावेश होता था। शांतिदूत के माध्यम से हज़ारों लोगों ने हिंदी सीखी। हिंदी विद्यार्थियों के लिए विशेष सामग्री प्रकाशित होती थी। इसके अलावा कहानी, कविता, व्यंग्य, फिल्मों की समीक्षा, कार्यक्रमों की रिपोर्ट, समसामयिक विषयों पर लेख आदि भी प्रकाशित होते थे। 11 मई 2020 को शांतिदूत के प्रकाशन के 85 वर्ष पूर्ण हुए किंतु इसके कुछ माह बाद ही शांतिदूत का प्रकाशन बंद हो गया। शांतिदूत की शुरुआत के बाद प्रकाशित हुए द इंडियन टाइम्स, जागृति, फ़ीजी संदेश वृद्धि, सरताज आदि पत्र भी कुछ वर्षों तक प्रकाशित हुए। वर्तमान में फ़ीजी सरकार द्वारा ‘फ़ीजी फ़ोकस’ का प्रकाशन होता है तथा भारत-फ़ीजी मैत्री संघ की तिमाही ई-पत्रिका जारी होती है। फ़ीजी में हिंदी को राजभाषा का साविधिक दर्जा प्राप्त है। हिंदी शिक्षण की स्थिति भी सुदृढ़ है। एक दृष्टि से हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रसार की भी पर्याप्त संभावनाएं मौजूद हैं। ऑनलाइन पत्रिकाओं के प्रकाशक और प्रसार की भी पर्याप्त संभावनाएं मौजूद हैं। ऑनलाइन पत्रिकाओं के इस युग में भी फ़ीजी से एक स्तरीय हिंदी समाचार पत्र और हिंदी पत्रिका की अपेक्षा सभी वैश्विक हिंदी प्रेमियों को है।

दक्षिण अफ़्रीका

दक्षिण अफ्रिका में भी हिंदी समाचार पत्रों ने प्रवासी भारतीयों को एकजूट करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। सन 1903 में श्री वी मदनजीत ने डरबन शहर में ‘इण्डियन ओपनियन’ नामक साप्ताहिक अख़बार हिंदी, अंग्रेज़ी, गुजराती और तमिल में निकाला. मदनजीत जी को इसमें भारी घाटा हुआ और उन्होंने अख़बार गांधीजी के हवाले कर दिया। गांधीजी इस अख़बार को डरबन से फिनिक्स स्थान पर ले गए और वहीं उनके आश्रम से अख़बार भी निकलने लगा। बाद में हिंदी और तमिल ग्राहकों का अभाव बताकर दोनों भाषाएं इण्डियन ओपिनियन से निकाल दी गई। 1913 में सत्याग्रह संग्राम के समय स्वामी भवानीदयाल सन्यासी को इसके संपादन का भार सौंपा गया तथा

हिंदी अंश भी जोड़ा गया किंतु यह अधिक समय तक नहीं चल पाया। स्वामीजी ने उस समय हिंदी और अंग्रेज़ी में साप्ताहिक धर्मवीर निकाला। सन 1922 के प्रारंभ में स्वामी भवानीदयाल ने 'हिंदी' नाम से साप्ताहिक अख़बार हिंदी-अंग्रेज़ी में निकाला। जेकब्स से प्रति शुक्रवार को प्रकाशित यह अख़बार अत्यंत लोकप्रिय हुआ. यह अख़बार मॉरीशस, फ़ीजी, ट्रिनीडाड, डेमरारा, सूरीनाम, रोडेसिया, केन्या, यूगांडा, जंजिवार, आदि उपनिवेश और भारत में भी भेजा जाता था। 1925 के अंतिम मास मे प्रवासी भारतीयों पर आयी विपत्ति के कारण स्वामीजी को भारत लौटना पड़ा और हिंदी अख़बार भी बंद हो गया। इसके पश्चात प्रवासी भारतीयों ने हिंदी अख़बार प्रकाशन के छुट-पुट प्रयास किए किंतु वे सफल नहीं रहे। आज दक्षिण अफ़्रीका से केवल हिंदी शिक्षा संघ से 'हिंदी खबर' ई-बुलेटिन जारी होता है किंतु इसमें अधिकांश सामग्री अंग्रेज़ी में होती है। संघ द्वारा संचालित रेडियो 'हिंद वाणी' अवश्य लोकप्रिय है।

सूरीनाम, गयाना एवं त्रिनिदाद

विश्व के कुछ अन्य देशों में भी, जहां भारतीय मजदूर बनकर गए हिंदी पत्रकारिता का दीप प्रज्ज्वलित हुआ। इन देशों में सूरीनाम, गयाना तथा त्रिनिदाद एवं टोबेगो प्रमुख हैं। सूरीनाम में प्रारंभिक दौर में कुछ हिंदी प्रेमियों, आर्य समाज, सनातन धर्म महासभा आदि संस्थानों ने अपनी कर्मठता और लगन से हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को रूप दिया। सन 1964 में आर्य समाज ने आर्य दिवाकर नाम से पत्रिका प्रकाशित की. इसके पश्चात पं. शिवरत्न शास्त्री, महातम सिंह आदि के प्रयासों से अनेक पत्रिकाएं प्रकाशित हुई. सूरीनाम हिंदी परिषद् ने सन 1984 में 'सूरीनाम दर्पण' प्रकाशन आरंभ किया जो प्रवासी भारतीयों की अस्मिता, स्वाभिमान एवं गौरवमयी प्रतिष्ठा की रक्षा और इनके विकास का प्रतीक था। गयाना और त्रिनिदाद एवं टोबेगो में भी हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से प्रवासी भारतीयों में अपनी भाषा और साहित्य के प्रति जागृत करने के अनेक प्रयास हुए। गयाना से प्रकाशित 'ज्ञानदा' पत्रिका ने विशेष स्थान बनाया। इस क्षेत्र में प्रो. हरिशंकर आदेश का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने त्रिनिदाद में सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित कर 'जागृति' और 'प्रगति' पत्रिका का प्रकाशन किया। श्री प्रेम जनमेजय के संपादन में 'हिंदी निधि स्वर' के तीन अंक भी प्रकाशित हुए। त्रिनिदाद के भारतीय दूतावास से 'यात्रा' पत्रिका भी हिंदी-अंग्रेज़ी में कुछ वर्षों तक प्रकाशित हुई। प्रो. आदेश के निधन के पश्चात त्रिनिदाद से कोई पत्रिका प्रकाशित नहीं हो रही है। गयाना और सूरीनाम की भी यही स्थिति है। इन देशों में डच और अंग्रेज़ी के प्रभुत्व से हिंदी की स्थिति लगातार कमज़ोर हो रही है।

संयुक्त राज्य अमरीका एवं कनाडा

अमरीका और यूरोप के देशों में भी 20वीं शताब्दी के आरंभ में ही प्रवासी भारतीयों ने हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत कर दी थी। अमरीका में भारतीय स्वतंत्रता हेतु संघर्षरत 'गदर' पार्टी ने 1913 सैनफ्रांसिस्को स्थित युगांतर आश्रम से लाला हरदयाल के नेतृत्व में 'गदर' नामक पत्र तथा देश भक्ति के प्रकाशन अन्य भाषाओं के साथ हिंदी में भी प्रकाशित किए थे। भारत के स्वतंत्र होने के बाद अमरीका में भारतीयों का जाना बढ़ता ही गया। अमरीका में विधिवत हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की शुरुआत नौंवे दशक के आरंभ में हुई जब स्व. डॉ. कुंवर चन्द्रप्रकाश की प्रेरणा से अंतराष्ट्रीय हिंदी समिति की स्थापना हुई। इस समिति की ओर से 'विश्वा' नाम की पत्रिका निकलनी रूप हुई। प्रांरभ में यह पत्रिका हस्तलिखित थी किंतु बाद में इसका प्रकाशन भी शुरू हुआ। कुंवर चंद्रप्रकाश के अलावा रामेश्वर अशांत, गुलाब कोठारी, सुरेन्द्रनाथ तिवारी, कथाकार सुषम बेदी और राम चौधरी लंबे अर्से तक इसके संपादक मंडल में रहे। 1984 में ही वेद प्रकाश वटुक के संपादन में "सीमांतिका" नामक 'साहित्यिक पत्रिका' प्रकाशित हुई किंतु यह अधिक समय तक नहीं निकल सकी। 1991 में 'सौरभ' नाम की एक और पत्रिका रूप हुई. यह पत्रिका नवगठित विश्व हिंदी समिति की ओर से बुक्रालिन, न्यूयार्क से निकलना प्रारंभ हुई। कुछ वर्ष बंद रहने के बाद इस पत्रिका का प्रकाशन पुन: शुरू हुआ है। भारत के हिंदी विद्वान डॉ . हरिसिंह पाल इस पत्रिका का संपादन कर रहे हैं।

अमरीका में हिंदी पत्रकारिता को फैलाने में विश्व हिंदी न्यास का भी विशेष योगदान है. इस न्यास की ओर से तीन पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं–हिंदी जगत, विज्ञान प्रकाश और बाल हिंदी जगत। डॉ. राम चौधरी जो पहले अंतराष्ट्रीय हिंदी समिति के अध्यक्ष एवं विश्वा के प्रबंध संपादक थे, न्यास के कार्यपालक निदेशक रहे और हिंदी जगत का संपादन भी करते रहे। वर्तमान में डॉ सुरेश ऋतुपर्ण हिंदी जगत पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। विज्ञान प्रकाश में कई ऐसे लेख भी छपे है जो शीर्षस्थ वैज्ञानिकों ने लिखे है. विज्ञान के क्रमिक विकास पर स्वयं राम चौधरी की लेखमाला इस पत्रिका की विशेषता रही. पिछले कुछ वर्षों से 'विज्ञान प्रकाश' का प्रकाशन विश्व हिंदी न्यास और लोक विज्ञान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा डॉ. ओम विकास के संपादन में हो रहा है। सन 1992 से प्रो. भूदेव शर्मा के संपादन में 'विश्व विवेक' पत्रिका की भी शुरुआत हुई जो कुछ वर्षों तक ही प्रकाशित हो पाई। यूएसए हिंदी संस्था भी अपनी तिमाही पत्रिका 'कर्मभूमि' के माध्यम से हिंदी शिक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। प्रकाशन की चुनौतियां बढ़ने के साथ ही अमरीका से ऑनलाइन पत्रिकाओं की भी शुरूआत हुई। 'सेतु', 'उदगार', 'हिंदी कौस्तुभ्य' और

'अनन्य' पत्रिकाओं के माध्यम से अमरीका के अलावा अनेक देशों के रचनाकारों की रचनाएं भी इन पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं।

कनाडा में भी प्रवासी भारतीयों ने हिंदी पत्रिकाओं के माध्यम से अपनी भाषा साहित्य और संस्कृति को संजोए रखा है। टोरंटो शहर से सन 1975 में प्रारंभ मासिक पत्र 'भारती', 1980 में ओटावा से 'अंकुर', 1982 में 'जीवन ज्योति' पत्रिका, 1985 से 'हिंदी संवाद' का प्रकाशन कई वर्षों तक हुआ। हिंदी प्रचारिणी सभा कनाडा त्रैमासिक अंतरराष्ट्रीय साहित्य पत्रिका 'हिंदी चेतना' का प्रकाशन पिछले 24 वर्षों से निरंतर कर रही है। श्री श्याम त्रिपाठी के संपादन में इस पत्रिका के अनेक विशेषांक भी प्रकाशित हो चुके हैं। अमरीका, चीन, ब्रिटेन, भारत, नार्वे, फ्रांस, मॉरीशस आदि अनेक देशों के लेखक इस पत्रिका से जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार टोरंटो शहर से ही 2004 से 'वसुधा' पत्रिका का प्रकाशन स्नेह ठाकुर के संपादन में निजी प्रयासों से हो रहा है। सन 1999 से 2010 तक श्री सरन घई के सम्पादन में 'नमस्ते कनाडा 'पाक्षिक समाचार पत्र तथा 2009 से 2014 तक साप्ताहिक समाचार पत्र 'हिंदी टाइम्स' भी प्रकाशित हुआ। 64 पृष्ठों के इस समाचार पत्र में 32 पृष्ठ साहित्य के लिए होते थे। आज कनाडा से दो हिंदी साप्ताहिक समाचार पत्र–'हिंदी एब्रॉड' और 'हिंदुस्तान टाइम्स' भी प्रकाशित हो रहे हैं। हिंदी की ऑनलाइन पत्रिकाएं 'साहित्यकुंज', 'प्रयास' और पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल भी जारी हो रहे हैं।

यूरोप के देशों में हिंदी पत्रकारिता

इंग्लैंड

यूरोप के देशों में भी भारत की स्वतंत्रता के पश्चात गए प्रवासी भारतीयों ने हिंदी पत्रकारिता का अलख जगाया। यूरोप के देशों में इंग्लैंड का भारत के संदर्भ में विशेष महत्व है। इंग्लैंड में हिंदी पत्रिकारिता की शुरुआत सन 1883 में हो गई थी। उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद की एक देशी रियासत कालाकाकर के राजा रामपाल सिंह ने हिन्दोस्थान का त्रैमासिक प्रकाशन अंग्रेज़ी-हिंदी में लंदन से सन 1883 में किया था। इंग्लैंड में इस त्रैमासिक का प्रकाशन दो वर्ष यानी सन 1883 से 1885 तक हुआ। इस पत्र के द्वारा राजा रामपाल सिंह ने ब्रिटिश संसद में भारतीयों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने की पुरजोर वकालत की। परिणामस्वरूप सन 1886 में ब्रिटिश संसद में सर सैयद अहमद को सदस्यता प्राप्त हुई। सन 2006 में अपनी लंदन यात्रा के दौरान मुझे ब्रिटिश लाइब्रेरी के एशियन सेक्शन में यू.के. एवं अन्य कई देशों के पुराने हिंदी समाचार-पत्रों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई।

सन 1915 में लंदन से प्रकाशित तस्वीरी अख़बार अपने विवरण हिंदी में प्रकाशित करता था। इसके पश्चात यू. के. के आर्य समाज ने वैदिक पब्लिकेशन का प्रकाशन आरंभ किया। फिर अमरदीप साप्ताहिक का प्रकाशन श्री जे.एस. कौशल के संपादन में रूप हुआ। सन 1964 में धर्मेंद्र गौतम के संपादन में हिंदी प्रचार परिषद् ने 'प्रवासिनी' त्रैमासिक पत्रिका की शुरुआत की। प्रारंभ में यह पत्रिका हस्तलिखित रूप में प्रसारित हुई और बाद में यह मुद्रित स्वरूप में सामने आई। इसके अलावा यू.के. से 'चेतक', 'मिलाप', 'नवीन वीकली' और 'हिंदी' पत्र-पत्रिकाएं भी प्रकाशित हुए। किंतु ये पत्रिकाएं समय के अंतराल के साथ काल कवलित हो गई। इंग्लैंड में हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में इस समय क्रांतिकारी बदलाव आया, जब डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी इग्लैंड में भारतीय उच्चायुक्त बने। उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति समर्पित प्रवासी भारतीयों को संगठित किया है और यू.के. हिंदी समिति की स्थापना करवाई। इसी समिति के तत्वाधान में श्री पद्मेश गुप्त के संपादन में सन 1997 में पुरवाई त्रैमासिक हिंदी पत्रिका शुरुआत हुई। इस पत्रिका में इग्लैंड भारत एवं अन्य प्रमुख देशों के हिंदी लेखकों के लेख, कविताएं, कहानियां, संस्मरण आदि प्रकाशित होते है। इग्लैंड के प्रमुख हिंदी रचनाकारों में गौतम सचदेव, दिव्या माथुर, उषाराजे सक्सेना, मोहन राणा, सत्येंन्द्र श्रीवास्तव, उषा वर्मा, सिंहन राही, राकेश माथुर, के.जी. खंडेलवाल, प्राण शर्मा, देवी नागरानी की रचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। कुछ वर्षों से 'पुरवाई' ई-पत्रिका के रूप में लंदन के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री तेजेंद्र शर्मा के संपादन में जारी हो रही है। भारत से प्रकाशित 'आधुनिक साहित्य' पत्रिका का यू.के. संस्करण श्री आशीष कंधवे के संपादन में जारी हो रहा है। ब्रिटेन की लेखिका श्रीमती शैल अग्रवाल के संपादन में 'लेखनी' ई पत्रिका भी जारी हो रही है।

नार्वे

नार्वे में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत 1979 के दौरान 'परिचय' हिंदी मासिक से हुई जिसमें पंजाबी और अंग्रेज़ी भाषा के भी कुछ पृष्ठ होते थे। सन 1980 में इस पत्रिका का संपादन का दायित्व भारत से नार्वे आए श्री सुरेश चंद्र शुक्ल को सौंप दिया गया। उन्होंने पांच वर्षों तक इस पत्रिका का संपादन किया। इसके अलावा नार्वे से पहचान, सनातन मंच एवं त्रिवेणी पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हुआ। 1988 से स्पाइल दर्पण का संपादन श्री सुरेश चन्द्र शुक्ल ही कर रहे है. यह पत्रिका हिंदी और नार्वेजीयन भाषा में प्रकाशित होती है। 1990 में श्री अमित जोशी के संपादन में 'शांतिदूत' पत्रिका प्रकाशित हुई। शांतिदूत पत्रिका ने भी यहां हिंदी पत्रकारिता को आगे बढ़ाया। नार्वे से एक द्विभाषिक पत्र 'आप्रवासी टाइम्स' की शुरुआत भी श्री सिद्धार्थ जोशी के संपादन में हुई है। मुझे इसके

वर्ष 2004 के कुछ अंकों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। वर्तमान में केवल स्पाइल दर्पण का प्रकाशन नार्वे से हो रहा है।

नीदरलैंड

नीदरलैंड के प्रवासी भारतीयों और सूरीनाम से यहां आए भारतवंशियों ने हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन हिंदी, सरनामी और डच भाषा में किया। 80 के दशक में सरनामी नाम से 20 पृष्ठों की पत्रिका प्रकाशित होती थी। वर्ष 1983 से 1992 के बीच 'भाषा' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसमें सरनामी हिंदी पर लेख छपे। इस पत्रिका में सरनामी के साथ ही डच भाषा में भी अनुवाद प्रकाशित होता था। नीदरलैंड के आर्य समाज ने 1985 से 'आसन संदेश' नाम से पत्रिका का प्रकाशन किया। हिंदी-डच में प्रकाशित 28 पृष्ठीय इस लघु पत्रिका में 10-12 पृष्ठ हिंदी के होते हैं। हिंदी परिषद् नीदरलैंड से 'हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन 1983 में प्रारंभ हुआ और हिंदी के प्रचार प्रसार हेतु कई वर्षों तक प्रकाशित हुई। 'विश्वज्योति' नाम से हिंदी और डच भाषा में पत्रिका का प्रकाशन हिंदी परिषद्, देनहाग हिंदी संस्थान नीदरलैंड द्वारा सन 1993 में किया गया। जुलाई 1997 में हिंदी प्रचार संस्था नीदरलैंड से 'हिंदी प्रचार पत्रिका' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। नीदरलैंड की हिंदी भाषा समिति द्वारा 2019 में 'हिंदी भाषा समिति पत्रिका' आरंभ हुई है। 2012 से अम्स्टेल गंगा वेब पत्रिका जारी हो रही है।

जर्मनी, हंगरी और बुल्गारिया

जर्मनी में डाइचे वेले रेडियो की हिंदी सेवा वर्षों तक लोकप्रिय रही किंतु हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन नाम मात्र का ही रहा। संघीय जर्मन गणराज्य दूतावास के बुलेटिन के रूप में सन 1966 से हिंदी में 'जर्मन समाचार' का प्रकाशन कई वर्षों तक हुआ। म्यूनिख शहर से सन 2008 में 'बसेरा' हिंदी पत्रिका का प्रकाशन कुछ वर्षों तक हो पाया। हंगरी में 1977 में हिंदी पत्रिका के प्रकाशन का श्रेय अलेक्संदरे चोमा दे कोरोश पर केंद्रित 7 भाषाओं की 'दिन' पत्रिका को जाता है। इस पत्रिका के हिंदी परिशिष्ठ का प्रकाश सन 1977 में हस्तलिखित रूप में हुआ था क्योंकि उस समय कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करने की सुविधाएं नहीं थी। इस काव्य रचना का हिंदी अनुवाद और लेखन श्रीमती एवा आरादी ने किया। मार्च 2000 में ऐतवोंश लोरांद विश्वविद्यालय, बुडापेस्ट से 'प्रयास' नामक हिंदी पत्रिका की शुरुआत भारतीय प्राध्यापक श्री प्रमोद शर्मा ने की जो इस विद्यालय में 2008 से 2011 तक अतिथि प्राध्यापक रहे। इस पत्रिका के अब तक 24 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। भारतीय राजदूतावास और सोफ़िया विश्वविद्यालय, बुल्गारिया के भारत विद्या विभाग

के संयुक्त प्रयासों से हिंदी में मासिक भित्ति पत्रिका 'मैत्री' जनवरी 2006 में जारी की गई। पत्रिका का संपादन विश्वविद्यालय में अतिथि प्राध्यापक डॉ. आनंद वर्धन शर्मा ने किया। इस पत्रिका के 6 अंक ही जारी हो पाए।

रूस

सोवियत संघ के विघटन से पूर्व हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन मुख्य रूप से सरकारी स्तर पर ही हुआ। सोवियत नारी, बाल स्पूतनिक, सोवियत संघ, सोवियत दर्पण, युवा दर्पण, सोवियत भूमि, यूनोस्त आदि पत्रिकाएं भारत में भी लोकप्रिय रहीं। सोवियत संघ के विघटन के पश्चात इन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद हो गया। फलस्वरूप प्रवासी भारतीयों ने इस दिशा में कदम बढ़ाए। सन 1993 में मास्को से 'भारत भूमि' पत्रिका का प्रकाशन सर्व श्री प्रसन्ना वर्मा, दिनेश त्रिपाठी तथा सुजीत बनर्जी ने किया। इस पत्रिका का प्रकाशन 1996 तक ही हो पाया। इसी वर्ष मास्को विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक कवि एवं लेखक श्री अनिल जनविजय के संपादन में 'भारत दर्पण' पत्रिका का प्रकाशन हिंदी-अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में हुआ। यह पत्रिका 2008 तक ही प्रकाशित हो पाई। सन 2010 में रूस भारतीय मैत्री समाज-दिशा की स्थापना हुई और नेहरू सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय दूतावास के सहयोग से इस संस्था ने 'नई दिशा' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। बाद में नई दिशा के संपादक मंडल में परिवर्तन के साथ अब यह पत्रिका 'दिशा' नाम से डॉ. रामेश्वर सिंह के संपादन में प्रकाशित हो रही है। इसके अलावा हिंदुस्तानी समाज की पत्रिका 'मैत्री' और दुर्गा पूजा समिति की पत्रिका 'आरात्रिका' का प्रकाशन भी रूस से हो रहा है।

न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया

पिछले कुछ दशकों में न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया में भी प्रवासी भारतीयों ने हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपनी भारतीयता को जीवित रखने का प्रयास किया है। न्यूजीलैंड से 1996 में हिंदी पत्रिका भारत दर्शन श्री रोहित कुमार हैप्पी के संपादन में प्रारम्भ हुई। मुद्रित संस्करण के कुछ वर्षों बाद 'भारत दर्शन' इंटरनेट पर विश्व की पहली हिंदी साहित्यिक पत्रिका थी। न्यूजीलैण्ड के प्रमुख शहर ऑकलैण्ड में दीपावली महोत्सव प्रारंभ करने का श्रेय इसी पत्रिका की टीम को जाता है। न्यूजीलैंड से 'शांति सरोवर', 'महिके वतन', 'कूक', 'अपना भारत', 'धनक', 'गुलदस्ता' आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ किंतु धीरे-धीरे इनका प्रकाशन बंद होता चला गया। वर्तमान में भारत

दर्शन ई-पत्रिका के अलावा द्विभाषी पत्र 'इंडियंज एक्स्प्रेस' और त्रिभाषी पत्रिका 'संगम' प्रकाशित हो रही है।

पश्चिमी आस्ट्रेलिया में हिंदी निकेतन संस्था द्वारा 1992 में हिंद पत्रिका ' देवनागरी' की शुरुआत हिंदी भाषा के पठन-पाठन और भारतीय संस्कृति को प्रोत्साहित करने से हुई। 32 पृष्ठीय प्रथम अंक में सभी रुचि के पाठकों के लिए रचनाओं का समावेश रहा। यह पत्रिका शीघ्र ही विक्टोरिया और मेलबर्न के हिंदी भाषी समाज में काफी लोकप्रिय हो गई। इस पत्रिका के वर्ष 1998 तक कुल 6 अंक ही प्रकाशित हो पाए। सन 1993 में सिडनी हिंदी समाज की ओर से डॉ शैलजा चतुर्वेदी के संपादन में 'चेतना' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस पत्रिका ने सिडनी के हिंदी समाज में चेतना जागृत करते हुए अनेक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया। चेतना पत्रिका के 2003 तक बारह अंक ही प्रकाशित हो पाए। 1997 में परसराम महाराज ने 'हिंदी समाचार पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। 32 पृष्ठीय मासिक पत्रिका में आस्ट्रेलिया के अलावा फ़ीजी और भारत के समाचारों को स्थान दिया जाता था। इसमें भारतीय संस्कृति, त्यौहार, बालीवुड के समाचार, राशिफल आदि के अलावा लेख आदि भी प्रकाशित होते थे। 2004 के दौरान इस पत्रिका की प्रसार संख्या 30 हज़ार तक पहुंच गई। 20 वर्षों तक प्रकाशन होने के बाद साधनाभाव के कारण इसका प्रकाशन 2016 में बंद हो गया। 2003 से विक्टोरिया प्रांत से प्रकाशित होने वाले मासिक अंग्रेज़ी अख़बार 'साउथ एशिया टाइम्स' के दो पृष्ठों में 'हिंदी पुष्प' शीर्षक से हिंदी में सामग्री प्रकाशित हो रही है। 1994 से आस्ट्रेलियन हिंदी इंडियन एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित संदेश न्यूज़ लेटर में कुछ पृष्ठ हिंदी के भी होते हैं। 2 अक्टूबर 2010 को 'हिंदी गौरव' पत्रिका की शुरुआत भी हुई जो अब केवल ई-पत्रिका के रूप में जारी होता है। पर्थ का हिंदी समाज 1996 से 'भारत-भारती' नामक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन कर रहा है।

एशिया के देशों से प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाएं

एशियाई देशों में भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ हिंदी पत्रकारिता ने अपने पैर फैलाए। 1980 में जापान से श्री योशिअकि सुजुकि के सम्पादन में 'ज्वालामुखी' पत्रिका प्रकाशित हुई। इस पत्रिका के संपादक मंडल में सभी जापानी ही थे। जापान से ही 'जापान भारती', 'सकुरा की बयार' का प्रकाशन भी हुआ। गांधीवादी मूल्यों पर प्रकाशित 'सर्वोदय पत्रिका' आज भी जापानी-हिंदी में प्रकाशित हो रही है। भारतीय साहित्य का प्रकाशन तीन भाषाओं–हिंदी, जापानी और अंग्रेज़ी में फिर से प्रारम्भ हो गया

है। पड़ोसी देश नेपाल में हिंदी के अनेक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित हो रहे हैं। 'हिमालिनी', 'द पब्लिक', 'विविध भारत', 'हिमगंगा', 'लोकमत' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने नेपाल में हिंदी पत्रकारिता को समृद्ध किया है। चीन से सचित्र चीन कई साल प्रकाशित हुआ और उसके पश्चात आज 'समन्वय हिंची', 'इंदु संचेतना' पत्रिका और चीन सरकार द्वारा प्रकाशित भारत-चीन संवाद के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता को पुनर्जीवन मिला है। सिंगापुर से 'जवान' रोमन हिंदी में प्रकाशित हुआ और वर्तमान में ऑनलाइन पत्रिका 'सिंगापुर संगम' लोकप्रिय है। श्रीलंका में भारतीय दूतावास 'श्रीलंका समाचार' प्रकाशित करता है। म्यांमार में 'विश्वदूत', 'बर्मा समाचार', 'प्राची प्रकाश', 'ब्रह्म भूमि', 'मातृभाषा' (हस्त लिखित) देवभाषा पत्रिकाओं का प्रकाशन वर्षों तक हुआ किंतु आज कोई पत्र-पत्रिका प्रकाशित नहीं हो रही है। थाइलैंड से हिंदी संदेश और थाई-भारत जर्नल का प्रकाशन हो रहा है। अबुधाबी से श्री कृष्ण बिहारी ने 'निकट' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्राम्भ किया जो आज भारत से प्रकाशित हो रही हैं। शारजाह से पूर्णिमा वर्मन की अगुवाई में वेब पत्रिकाओं–'अभिव्यक्ति' व 'अनुभूति' के साप्ताहिक प्रकाशन ने भी हिंदी की साहित्यिक वेब पत्रकारिता को नई दिशा दी किन्तु अब मुद्रित पत्रिकाओं का स्थान है 'ई' पत्रिकाओं ने ले लिया है।

विदेश में हिंदी के गढ़ माने जाने वाले मॉरीशस और फ़ीजी में भी चुनिंदा पत्रिकाओं के अलावा एक भी दैनिक या साप्ताहिक समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हो रहा। विश्व के अनेक देशों में प्रवासी भारतीयों की बढ़ती जनसंख्या के उपरांत भी हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रति रुझान कम हुआ है जबकि पंजाबी, गुजराती आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन निरन्तर हो रहा है। इन देशों से हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के बंद होने का मुख्य कारण अपनी भाषा से अलगाव, संगठनात्मक तथा आर्थिक रूप से सक्षम न हो पाना है। इन पत्र-पत्रिकाओं को भारतीय समाज से न तो विज्ञापन प्राप्त होते थे और न ही सहायता अथवा सदस्यता के रूप में पर्याप्त राशि। विदेशों से व्यक्तिगत स्तर पर हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन अब संभव दिखाई नहीं देता किन्तु संस्थागत स्तर पर प्रयास किए जाएं तो बंद हुई पत्रिकाओं को पुनर्प्रकाशन प्रारंभ हो सकता है। विदेशों में प्रवासी भारतीयों के बढ़ते प्रभाव के मद्देनज़र हिंदी पत्रकारिता के फैलाव की अपार सम्भावनाएं मौजूद हैं।

संदर्भ:

1. प्रवासी भारतीयों के लिए हिंदी की कहानी–डॉ. सुरेंद्र गंभीर
2. मॉरीशस में भारतीयों का इतिहास–के. हजारी सिंह

3. विदेश में हिंदी स्थिति और संभावनाएं–नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय दिल्ली
4. फ़ीजी में हिंदी स्वरूप और विकास: विमलेश कांति वर्मा धीरा वर्मा
5. विदेशी विद्वानों का हिंदी प्रेम–जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुंद'
6. शांतिदूत समाचार पत्र के 1935 से 2020 तक के विविध अंक
7. सूरीनाम में हिंदुस्तानी–भावना सक्सेना
8. गदर पार्टी का इतिहास प्रथम भाग–1912-917 (देशभक्त यादगार पार्टी, जालंधर)
9. अमरीका में हिंदी–एक सिंहावलोकन (लेख–सुषम बेदी कोलंबिया यूनिवर्सिटी न्यूयॉर्क) 10 . विश्व हिंदी पत्रिका–सितंबर 2008 अंक
11. न्यूजीलैंड की हिंदी पत्रकारिता का इतिहास- रोहित कुमार हैप्पी
12. ब्रिटेन में हिंदी–उषा राजे सक्सेना
13. आंचलिक पत्रकार–अगस्त 2008 अंक (माधवराव सप्रे राष्ट्रीय समाचार पत्र संग्रहालय, भोपाल)
14. विश्व हिंदी पत्रिका 2012 लेख–नार्वे में हिंदी–सुरेश चंद्र शुक्ल
15. रूस में हिंदी, लेख–ल्युदमिला खोखलावा, मास्को राजकीय विश्वविद्यालय।
16 . जापान में हिंदी शिक्षण–डॉ. सुरेश रितुपर्ण
17. विश्व हिंदी समाचार–मॉरीशस, मार्च 2012 अंक

जवाहर कर्नावट रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल के प्रवासी भारतीय साहित्य एवं संस्कृति शोध केंद्र के सलाहकार तथा अंतरराष्ट्रीय हिंदी केंद्र के निदेशक हैं। संपर्क: jkarnavat@gmail.com

हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य

विमलेश कान्ति वर्मा

भारत के विविध देशों से बढ़ते और सुधरते कूटनीतिक और सांस्कृतिक संबंधों के कारण विभिन्न देशों में लिखी जा रही साहित्यिक कृतियों के हिंदी अनुवाद को इधर तीन दशकों में प्रोत्साहन मिला है। तकनीकी सुविधाओं की सुलभता ने, बढ़ते व्यापारिक, वाणिज्यिक संबंधों ने, पर्यटन उद्योग के विस्तार ने विभिन्न संस्कृतियों को जानने और समझने की इच्छा, तथा विदेश में बढ़ते हुए भारतीय आप्रवासन ने जहाँ दूसरे देश के साहित्य के प्रति एक सुशिक्षित भारतीय के मन में आकर्षण उत्पन्न किया है वहीं दूसरे देश की साहित्यिक समृद्धि को अपनी भाषा में रूपान्तरित करने की इच्छा ने अनुवाद को नई भूमि भी दी है। आज अनुवाद दो देशों को निकट लाने में एक सेतु का कार्य कर रहा है। अनुवाद एक ऐसा खुला हुआ वातायन है जिससे हम विश्व की बहुरंगी सुन्दर छवि को देख सकते हैं और स्वच्छ, जीवनदायिनी प्राणवायु और प्रकाश को ग्रहण कर सकते हैं।

हर देश चाहे वह विकसित, विकासशील या अविकसित श्रेणी का देश हो उसकी अपनी संस्कृति, अपनी रीति-नीति और अपना दर्शन है, अपनी भाषा, अपना साहित्य है और उस देश के नागरिक को उस पर गर्व है। उसके साहित्य में उसका जीवन झलकता है क्योंकि वह उसकी आत्मिक अभिव्यक्ति है। इसलिए एक दूसरे देश के साहित्य का अध्ययन, अनुशीलन और सम्मान तथा उसके साहित्य का अनुवाद भावनात्मक लगाव की आधारशिला है।

वर्ष 1961 की भारतीय जनसंख्या गणना के अनुसार 1652 बोली जाने वाली भाषाओं के देश भारत में हिंदी केन्द्रीय महत्व की भाषा है क्योंकि वह देश में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाती हैं, संविधान स्वीकृत राजभाषा तथा विदेश में बसे हुए

विविध भाषा भाषियों के मध्य संपर्क भाषा तो है ही, वह उनके बीच भारतीय अस्मिता की प्रतीक भाषा भी है। विविध देशों में बसे हुए भारतीय हिंदी के माध्यस से परस्पर जुड़े हुए हैं इसलिए हिंदी के ही माध्यम से दूसरी भाषाओं में अनुवाद की सबसे अधिक सम्भावना है। भारत में भी विविध भारतीय भाषाओं का साहित्य भी हिंदी में ही अनूदित होकर दूसरी भाषाओं में पहुंचता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के आंकड़ों के अनुसार विश्व में आज 195 देशों की गणना है। इन 195 देशों में से उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार हिंदी में लगभग 83 देशों के रचनाकारों की रचनाओं के हिंदी में अनुवाद उपलब्ध है।

समाजशास्त्रियों का मानना है कि यदि किसी समाज को आप सही अर्थों में समझना चाहते है तो वह उस समाज के साहित्य के अध्ययन से संभव है क्योंकि साहित्य व्यक्ति की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है जिसमे उसके राग-द्वेष, संस्कार, आस्था और विश्वास सभी प्रतिबिंबित होते हैं।

भारतीय आप्रवासन आंकड़े बताते हैं कि आज विविध कारणों से भारतीय विश्व के अनेक देशों में बसे हुए हैं और उनकी संख्या ढाई करोड़ से भी अधिक है। इनके अतिरिक्त भारत में रह रहे शिक्षित भारतीय भी विश्व के अनेक देशों से किसी न किसी रूप में संपर्क में हैं और दूसरे देशों की संस्कृति के बारे में जानने की उनकी रुचि है, वे उनके साहित्य से परिचित होना चाहते है। किसी देश को समझने का सबसे आसान तरीका उस देश के साहित्य से परिचित होना है। यही कारण है कि हम किसी देश के साहित्य को पढ़कर हम उसके अनुवाद की बात सोचते हैं। विदेशी साहित्य के हिंदी में उपलब्ध अनुवाद इसी व्यक्ति विशेष की व्यक्तिगत रुचि के प्रतिफल हैं।

विदेशी साहित्य के हिंदी अनुवाद की परम्परा

हिंदी में विदेशी साहित्य के अनुवाद की परम्परा भारतेंदु काल (1850 ई.) से प्रारंभ होती है। हिंदी का भारतेंदु काल नवजागरण का काल है, साहित्य के क्षेत्र में गद्य का विकास हुआ, नई लोक काव्य शैलियाँ साहित्यिक अभिव्यक्ति का जहाँ माध्यम बनी वहीँ दूसरी ओर विदेशी साहित्य विशेषकर अंग्रेज़ी साहित्य की लोकप्रिय रचनाओं के हिंदी अनुवाद भी हुए।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) ने शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ़ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु' के नाम से अनुवाद किया जो अपने समय का बहुत अच्छा अनुवाद माना गया। भारतेंदु के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) ने

सरस्वती पत्रिका में कई अनुवाद प्रकाशित कर विदेशी साहित्य के हिंदी अनुवाद का पथ प्रशस्त किया। द्विवेदी जी ने जे. एस. मिल के 'लिबर्टी' का वर्ष 1905 में 'स्वाधीनता' नाम से अनुवाद प्रकाशित किया, बैरन के 'ब्राइडल नाईट' का 'सोहागरात' नाम से, हर्बर्ट पेंसर के 'द एजुकेशन' का 'शिक्षा' नाम से अनुवाद किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) ने जोसेफ़ एडिसन के 'प्लेज़र्स ऑफ़ इमेजिनेशन' का 'कल्पना का आनन्द', हेकेल के 'रिडिल ऑफ़ यूनिवर्स' का 'विश्व प्रपंच' तथा एड्विन आर्नोल्ड के 'लाईट ऑफ़ एशिया' का 'बुद्ध चरित' शीर्षक से अनुवाद प्रकाशित किया। श्रीधर पाठक (1858-1928) ने ओलिवर गोल्ड स्मिथ के 'द हर्मिट' का 'एकांतवासी योगी' तथा थॉमस ग्रे के 'डेज़रटेड विलेज' का 'ऊजड़ ग्राम' नाम से अनुवाद किया। कथाकार प्रेमचंद (1880-1936) ने गाल्र्सवर्दी के तीन नाटकों का 'हड़ताल', 'चांदी की डिबिया' तथा 'न्याय' नाम से अनुवाद किया। लाला सीताराम (1858) ने शेक्सपियर के 11 नाटकों के हिंदी अनुवाद हिंदी पाठकों के लिए किये। कविवर जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' (1866-1932) ने पोप के 'एसेज़ ओन क्रिटिसिज्म' का 'समलोचानादर्श' नाम से पद्यात्मक अनुवाद किया। डॉ. हरिवंश राय बच्चन (1907-2003) ने शेक्सपियर के कई नाटकों के हिंदी में अनुवाद कर अच्छे अनुवादक की ख्याति पाई। अवधेय है कि भारतेंदु काल और महावीरप्रसाद द्विवेदी काल में जो अनुवाद हुए वे मूलतः अंग्रेज़ी साहित्य की प्रमुख कृतियों के ही सामान्यतः हुए।

हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य में चिली में जन्मे स्पेनिश कवि पाब्लो नेरूदा, तुर्की के महान क्रांतिकारी कवि नाजिम हिकमत और जर्मन कवि रेनर मारिया रिल्के की रचनाओं के विभिन्न अनुवादकों ने हिंदी में अलग अलग अनुवाद किये और भारतीय पाठकों के बीच ये बहुत पसंद भी किये गये। वर्ष 1957 में डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'सीपी और शंख' तथा 'आत्मा की आँखें' पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिसमें पुर्तगाली, स्पेनी, अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रांसीसी, अमेरिकी, चीनी और पोलिश कवियों की कवितायें हिंदी पाठकों को पढ़ने को मिलीं। 1960 में धर्मवीर भारती का भारतीय ज्ञानपीठ से 'देशांतर' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जिसमें 21 देशों के 161 आधुनिक कवियों की कविताओं के हिंदी अनुवाद हैं। इसमें अमरीका के एज़रा पाउंड, अर्जेंटीना के जार्ज लुईस बोर्जे, इंग्लैंड के रूपर्ट ब्रुक और टी.एस. इलियट, चिलीके पाब्लो नेरूदा, जर्मनी की रेने मारिया रिल्के, तुर्की के नैजिम हिकमत, मेक्सिको के ओक्टाविया पाज़, स्पेन के फेडेरिको गार्सिया लोर्का तथा रूस के व्लादीमीर मायकोवस्की और बोरिस पास्तरनाक सम्मिलित थे। 1978 में नामवर सिंह के सम्पादन में 'आधुनिक रूसी कविताओं' का एक लम्बी भूमिका के साथ प्रकाशन हुआ और अनेक रूसी रचनाकारों की रचनाएँ हिंदी पाठकों को पढ़ने को मिलीं।

विदेशी साहित्य के अनुवाद के प्रति हिंदी विद्वानों की रुचि बराबर बनी रही और भीष्म साहनी, रघुबीर सहाय, राजेन्द्र यादव, विष्णु खरे आदि कितने ही हिंदी साहित्यकारों ने विदेशी भाषा साहित्य की अनेक प्रमुख रचनाओं के हिंदी अनुवाद किये। एच.जी.वेल्स, बोरिस पास्तरनाक, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, लियो टॉलस्टॉय, मैक्सिम गोर्की और दोस्तायावस्की की अनेक रचनाओं के हिंदी अनुवाद पाठकों को मिले। आज भी विदेशी साहित्य के अनुवाद में भारतीयों की रुचि है और निरन्तर अनुवाद भी हो रहे हैं। पाब्लो नेरूदा, रेने मारिया रिल्के और ओक्टोविया पाज़ की कविताओं के कई कई अनुवाद मेरे देखने में आये पर स्रोत भाषा की अज्ञानता के कारण ये अनुवाद मूल के कितने निकट पहुँच पाए हैं, इस पर बहुत विवाद है। मुझे अनुवाद के क्षेत्र में कई दशकों तक कार्य करने के बाद आज भी लगता है कि सहयोग सिद्ध अनुवाद जिसमे एक स्रोत भाषा का व्यक्ति हो और एक लक्ष्य भाषा का वहां अधिक अच्छे अनुवाद की संभावना विशेषकर विदेशी साहित्य के सन्दर्भ में है।

आज अंग्रेज़ी के अतिरिक्त फ्रांसीसी, स्पेनी, जर्मन, जापानी, बल्गारियन तथा रूसी साहित्य की कई कृतियों का भी मूल भाषा से हुआ अच्छा अनुवाद हिंदी में उपलब्ध है। ये अनुवाद मूल भाषा से हिंदी के प्रतिष्ठित विद्वानों ने किये हैं और हिंदी जगत में पर्याप्त चर्चित भी रहे हैं। डॉ.मदन लाल 'मधु', डॉ. वरयाम सिंह, डॉ.हेम चन्द्र पाण्डेय, डॉ. अनिल जन विजय के रूसी भाषा से हिंदी के अनुवाद उत्कृष्ट अनुवाद गिने जाते हैं। मोहन थपलियाल ने मूल जर्मन से, श्रीमती शरत चंद्रा ने फ्रांसीसी भाषा से, विमलेश कान्ति वर्मा और धीरा वर्मा, रश्मि जोशी और गीता विज ने मूल बल्गारियन से, डॉ. विभा मौर्य ने स्पेनी से तथा उनीता सच्चिदानंद ने मूल जापानी से हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत किये पर इनकी संख्या अभी भी बहुत थोड़ी है।

अनुवाद का माध्यम भाषा बनी अंग्रेज़ी

विदेशी साहित्य के हिंदी अनुवाद अधिकांशतः अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से किये गये अनुवाद हैं। पर पिछले तीन दशकों से कई विदेशी भाषा विशेषज्ञों की रुचि अनुवाद में बढ़ी है और ये अनुवाद स्रोत भाषा से होने के कारण मूल के अधिक निकट हैं और विदेशी साहित्य की संस्कृति और सुरभि का परिचय देते हैं।

भारतवासियों के विशिष्ट सन्दर्भ में अंतरराष्ट्रीय पटल पर अंग्रेज़ी सबसे अधिक प्रयोग में आने वाली भाषा है और विदेश जाने वाला हर भारतीय अंग्रेज़ी के माध्यम से अपना काम चला लेता है। विश्व के अधिकांश देशों का साहित्य आज अंग्रेज़ी में

उपलब्ध है। विदेश गये पढ़े-लिखे भारतीय अंग्रेज़ी का संपर्क भाषा के रूप में विदेश में प्रयोग भी करते हैं। जिन देशों की भाषा अंग्रेज़ी नहीं है वहां भी अंग्रेज़ी से उनका काम चल जाता है इसलिए जब कभी कोई अच्छी कृति उन्हें मिलती है तो वे उसे अपनी भाषा हिंदी में रूपांतरित करना चाहते हैं पर अंग्रेज़ी से इतर मूलभाषा और लिपि की अज्ञानता अनुवादकों के सम्मुख अनेक प्रकार की कठिनाइयों को जन्म देती हैं। हर भाषा की अपनी लिपि है और उसी लिपि में भाषा की ध्वनियों को ठीक से उच्चरित करना मातृभाषा भाषी सीखता है। उदाहरण के लिए फ़ीजी के मूल निवासियों की भाषा काईबीती जब रोमन लिपि में लिखी जाती हैं तो D का उच्चारण न्द (nd), B का उच्चारण म्ब (mb) के रूप में होता है और nadi को 'नांदी' और labasa को 'लम्बासा' पढ़ा जाता है। जो व्यक्ति फ़िजीयन साहित्य का हिंदी में अनुवाद करता है वह नादी और लबासा पढ़ता है इसी प्रकार C का उच्चारण D के रूप में होता है और laucala को 'लौकाला' न पढ़कर 'लौदाला' पढ़ा जाएगा। अनुवादक यदि काईबीती भाषा नहीं जानता तो वह नादी, लबासा और लौकाला पढ़ेगा। चूंकि ये व्यक्तिवाची संज्ञाएँ हैं इसलिए इनका सही लिप्यन्तरण आवश्यक है। इस कठिनाई का समाधान श्री कृष्ण कुमार भार्गव ने अपने बृहत् "विश्व उच्चारण कोश" के माध्यम से किया है। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के सन्दर्भ में ये त्रुटियाँ अनुवादक को कभी कभी परेशानी में डाल सकती हैंऔर उसकी अभिव्यक्ति को उपहासास्पद भी बना सकती हैं। रोमन लिपि की उच्चारण गत सीमाओं से हिंदी का पाठक भली भांति परिचित है जिसमे /ट/ और /त/, /ड़/ /ढ़/, ह्रस्व और दीर्घ स्वर लेखन में और अनुच्चरित ध्वनियों के लेखन में जहाँ वे व्यक्तिवाची संज्ञाओं से सम्बंधित हैं, बड़ी कठिनाई है। अगर बल्गारियन भाषा से हिंदी में अनुवाद की बात करें तो अनुवाद में अनेक कठिनाइयां अनुवादक के सामने आती हैं। बल्गारियन भाषा स्लाविक परिवार की भाषा है और सांस्कृतिक दृष्टि से अंग्रेज़ी की तुलना में हिंदी के अधिक निकट है। नाते-रिश्ते की शब्दावली को लें तो भारत के ही समान हर रिश्ते के लिए अलग शब्द हैं जो अंग्रेज़ी में नहीं हैं इसलिए यदि अंग्रेज़ी को आधार बनाकर हिंदी में अनुवाद किया गया है तो अनुवादक के लिए सही सम्बंधवाची शब्दावली का चयन कठिन कार्य है। मूल बल्गारियन भाषा से हिंदी अनुवाद करते समय यह समस्या उपस्थित नहीं होगी। यही कारण है कि बुल्गारिया के साहित्य का जो अनुवाद अंग्रेज़ी से किया गया है उसमे सही शब्द का चयन अनुवादक नहीं कर सका है। इसी प्रकार अभिवादनवाची शब्दावली है। 'दोविज़दाने' अंग्रेज़ी के गुड़ बाई का पर्याय न होकर 'फिर मिलेंगे' के अधिक निकट है। यही स्थिति 'स्बोगोम' की भी है।

अनुवाद की कठिनाइयां

अनुवाद परकाया प्रवेश विद्या के ही समान कठिन और श्रम साध्य कार्य है। दो भाषाओं पर समान अधिकार आसान नहीं। हर भाषा की अपनी अर्थ छवियाँ और अपने मुहावरे होते हैं, अपने सांस्कृतिक प्रतीक होते हैं जिनका मूल भाषा जाने बिना सही अनुवाद संभव भी नहीं है। भाषा ज्ञान केवल शब्द ज्ञान व वाक्य संरचना का ज्ञान ही नहीं है वरन भाषा प्रयोग का ज्ञान या भाषिक दक्षता भी आवश्यक है जो सामान्यतः विदेशी भाषा से अनुवाद के सन्दर्भ में और भी आवश्यक हो जाती है। विदेशी साहित्य का हिंदी में जो अनुवाद आज हो रहा है वह मूल भाषा से न होकर अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से हो रहा है। यही कारण है कि अनुवाद पढ़कर मूल साहित्यिक रचना पढ़ने का जो आनन्द है उससे अनुवाद का पाठक वंचित रह जाता है। खिर्स्तो बोतेव बल्गारियन भाषा के राष्ट्रकवि माने जाते हैं। उनकी एक कविता का तीन भारतीय कवियों ने अंग्रेज़ी के माध्यम से हिंदी में अनुवाद किया और जब एक परिचर्चा में उन तीनों अनुवादों का एक बल्गारियन साहित्य की प्रोफ़ेसर ने विश्लेषण किया तो तीनों ही अनुवादों को अपरिपक्व कहते हुए भ्रष्ट और अग्राह्य बताया। इसका कारण बल्गारियन संस्कृति से अनुवादक का अपरिचय और अंग्रेज़ी अनुवाद को आधार बनाना था। मूल भाषा और देश की संस्कृति का अच्छा ज्ञान अनुवादक के लिए अपरिहार्य है जिसके बिना अनुवाद पाठक को मूल कृति पढ़ने का आनन्द नहीं दे पाता।

विदेशी भाषा साहित्य के हिंदी अनुवाद की समस्याओं को मैं अपने अनुवाद अनुभव के सन्दर्भ में देखता हूँ। मैं बल्गारियन साहित्य की कालजयी कृतियों के अनुवाद में पिछले लगभग चालीस वर्षों से संलग्न हूँ और मूल भाषा बल्गारियन से हिंदी में अनुवाद करने वाले इने गिने भारतीय अनुवादकों में हूँ। मैने 'इस्तोरिया न बुल्गारिया' (अनूदित शीर्षक बुल्गारिया का इतिहास) का, आंतोंन दोंचेव के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'व्रेमे रस देल्नो' (अनूदित शीर्षक 'बेला विदा की'), एमिल्यान स्तानेव के उपन्यास 'क्रदेत्सत ना प्रास्कोवी' (अनूदित शीर्षक 'आडू चोर'), क्रांतिकारी कवि गेओ मिलेव की लम्बी कविता 'सेप्तेम्व्री' (अनूदित शीर्षक 'सितम्बर'), का तथा बुल्गारिया की लोककथाओं (अनूदित शीर्षक 'तुम्हें गुस्सा आ रहा है') का हिंदी में अनुवाद किया है और ये सभी ग्रन्थ भारत के प्रतिष्ठित प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित भी हैं। ये सभी अनुवाद सहयोग सिद्ध अनुवाद है और मेरे तथा श्रीमती धीरा वर्मा के साथ मिलकर संयुक्त रूप में किये गये हैं। श्रीमती धीरा वर्मा, दिल्ली विश्वविद्यालय के स्लावोनिक और फिनो-

उग्रियान विभाग में बल्गारियन भाषा पढ़ाती थीं और मेरे साथ उन्होंने बल्गारियन भाषा का सोफ़िया के प्रसिद्ध विदेशी छात्र भाषा संस्थान में तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में गहन अध्ययन किया तथा चार वर्ष बुल्गारिया में रहने के कारण देश की भाषा और संस्कृति का अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया था। चूंकि बल्गारियन साहित्य की कालजयी कृतियों का अनुवाद बल्गारियन सरकार द्वारा प्रायोजित था तथा सरकार के अनुरोध पर किया गया था इसलिए अनुवाद कार्य में बुल्गारिया के भाषा विशेषज्ञों के साथ रचनाकारों, उनके परिवार के सदस्यों का बराबर सहयोग मिलता रहा। अनुवाद की समस्याएं उभरकर मेरे सामने आईं और बुल्गारिया और भारत दोनों देशों के मेरे सहयोगियों ने मेरी अनुवाद जनित समस्याओं के समाधान में रुचि ली और मेरा मार्ग दर्शन किया। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि यदि बुल्गारिया के भाषा विशेषज्ञों और भारत में बुल्गारिया के दूतावास के अधिकारियों का पूर्ण सहयोग न मिला होता तो 'बुल्गारिया का इतिहास' और 'बेला विदा की' जैसी दुरूह कृतियों का अनुवाद मेरे लिए संभव नहीं हो पाता।

हिंदी में अनूदित विदेशी भाषा साहित्य के उपलब्ध जो आंकड़े मेरे सम्मुख हैं उनसे यह स्पष्ट है कि हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य सबसे अधिक अंग्रेज़ी साहित्य है चाहे वह अमरीका का हो, इंग्लैंड का या ऑस्ट्रेलिया का हो, उसके बाद रूसी साहित्य है। रूसी साहित्य के हिंदी मे अधिक अनुवाद होने का कारण भारत रूस मैत्री के साथ ही साथ रूस का भारतीय साहित्य के अनुवाद में सरकारी और सहकारी सहयोग है। चीन की भी हिंदी अनुवाद में रुचि रही पर वह पनप नही पाई और अर्वाचीन चीनी साहित्यिक कृतियों के अधिक अनुवाद हिंदी में नहीं हो सके। फ्रांसीसी, जर्मन तथा स्पेनी भाषाओं का अध्ययन भारतीय विश्वविद्यालयों में बड़े स्तर पर होता रहा तथा इन देशों के भारत स्थित सांस्कृतिक केन्द्रों में भी ये भाषाएँ सिखाई भी जाती रहीं पर जो छात्र ये भाषाएँ सीखते रहे उनकी रुचि वहां के साहित्य पढ़ने और उसके अनुवाद में कभी नहीं रही। इन भाषाओं के साहित्य की प्रमुख कृतियों के जो अनुवाद हुए भी वे इन भाषाओं के पढ़ाने वाले विश्वविद्यालय के अध्यापकों द्वारा ही हुए. पर इन अनुवादों की विशेषता यह रही कि ये मूल भाषा से हिंदी में अनूदित हुए और भारत के विदेशी भाषा विशेषज्ञों द्वारा हुए जिसके कारण ये अनुवाद अच्छे बन पड़े और पाठकों के मध्य लोकप्रिय भी हुए।

भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली भी विभिन्न देशों के मध्य सांस्कृतिक विनिमय योजना के अधीन विविध देशों में हिंदी भाषा शिक्षण की व्यवस्था करता है और भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों से हिंदी अध्यापक लगभग तीन वर्ष की अवधि के लिए भेजे जाते हैं। स्वाभाविक है कि इन देशों में गये हिंदी अध्यापकों की

रुचि वहां के साहित्य को पढ़ने और नए देश की संस्कृति को समझने की होती है। जिन प्राध्यापकों की रुचि अनुवाद में होती है वे उनके साहित्य को पढ़ कर अपनी हिंदी में उनका अनुवाद भी करना चाहते हैं। विडम्बना यह है कि इन हिंदी प्राध्यापकों की रुचि उस देश विशेष की भाषा के अध्ययन में नहीं होती इसलिए वे देश की भाषा से अनभिज्ञ रहते हुए अंग्रेज़ी के माध्यम से साहित्य का अनुवाद करते हैं। परिणामतः दूसरी भाषा अंग्रेज़ी से किये गये ये अनुवाद मूल या स्रोत भाषा की सुगंधि या उसके भाषा वैशिष्ट्य को रूपांतरित नहीं कर पाते।

अनुवाद की चुनौतियां

अनुवाद कर्म दो संस्कृतियों को निकट लाने और लोकनय के माध्यम से देशों के राजनीतिक और कूटनीतिक संबंधों को सुदृढ़ करने में एक सेतु का कार्य करता है। यही कारण है कि विकसित देशों में अनुवाद की एक व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठा है।

भारत में अनुवाद के सन्दर्भ में आज सबसे बड़ी चुनौती यही है कि अनुवाद को एक प्रतिष्ठित व्यवसाय के रूप में मान्यता मिले। भारत में अनुवाद को एक हॉबी के रूप में व्यक्ति लेता है और अनुवाद करता है। यही कारण है कि विदेशी भाषा साहित्य के अच्छे हिंदी अनुवादक आज भी भारत में बहुत कम है जो विदेशी भाषाओं में प्रवीण हों, भाषिक संस्कृति का जिन्हें अच्छा ज्ञान हो और विदेश में रहकर उन्होंने भाषा का अच्छा अभ्यास किया हो। बुल्गारिया जैसे छोटे देश में लम्बे समय तक रहकर मैंने देश में 'अनुवादक संघ' की प्रतिष्ठा और उसका प्रभाव देखा है जो बहुभाषा भाषी भारत के सन्दर्भ में मुझे बहुत उपयोगी दिखता है। । जब तक अनुवाद को एक व्यवसाय के रूप में देश में मान्यता नहीं मिलेगी तब तक न तो अच्छे अनुवादक होगें और न ही योजनाबद्ध ढंग से विदेशी साहित्य के अनुवाद का कार्य हो सकेगा।

सामान्यतः यह मान लिया जाता है कि अनुवाद के लिए अच्छा मानदेय न होने के कारण अच्छे अनुवाद नहीं हो पाते। मुझे लगता है कि यह अर्धसत्य है। अनुवाद एक श्रमसाध्य कार्य है, स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनों पर अच्छे अधिकार के साथ साहित्यिक अनुवाद में भाषिक संस्कृति के ज्ञान के बिना अच्छा अनुवाद संभव ही नहीं है। अच्छे अनुवादक के लिए भारत में भी अच्छा मानदेय संभव है पर योग्य और प्रशिक्षित अनुवादकों की भारत में बहुत कमी है। वस्तुतः एक साहित्यिक कृति के अनुवाद के चार चरण होते हैं–भाषांतर, पुनरीक्षण, पुनर्गठन, सम्पादन। भाषांतर से पहले भाषांतरण की अच्छी तैयारी आवश्यक है जिसका अर्थ है अनुवाद प्रारंभ करने से पहले मूल भाषा में

लिखी कृति को अच्छी तरह समझने के लिए स्रोत भाषा के बृहत् शब्दकोश. भाषा प्रयोग कोश, संस्कृति कोश, उच्चारण कोश, मुहावरा कोश आदि की उपलब्धता। खेद है कि भारतीय अनुवादक बिना पूर्व तैयारी के अनुवाद में लग जाता है और इन उपकरणों की अनुपलब्धता उसके अनुवाद कर्म को कठिन और अनुवादक को बेसहारा बना देती है। इतना ही नहीं अधिकाँश अनुवादक भाषांतर के उपरांत अपने अनुवाद का न तो पुनरीक्षण करते हैं और न ही पुनर्गठन और सम्पादन करते हैं जिससे अनुवाद पठनीय नहीं हो पाते और मूल के प्रभाव से अनुवाद का पाठक वंचित रह जाता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय स्तर पर अनुवाद की व्यावहारिक उपयोगिता को समझते हुए भारत में अनुवाद को एक महत्वपूर्ण अनुशासन के रूप में मान्यता मिले और 'राष्ट्रीय अनुवाद अकादमी' की स्थापना हो जो बहुभाषा भाषी भारत की बौद्धिक संपदा को अनुवाद के माध्यम से देश-विदेश को परिचित कराये। बहु भाषा भाषी भारत जहाँ अनुवाद के माध्यम से संगठित हो सकता है वहीँ अनुवाद भारत की विश्व बंधुत्व नीति को अधिक प्रभावी भी बना सकेगा।

साभार: स्मारिका विश्व हिंदी सम्मलेन 2023 फ़ीजी, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

विमलेश कान्ति वर्मा *पी.जी.डी.ए.वी. (दिल्ली विश्वविद्यालय) के सेवानिवृत्त हिंदी अध्यापक हैं।*
संपर्क: vimleshkanti@gmail.com

विदेशी भाषाओं में अनूदित सृजनात्मक हिंदी साहित्य

सुष्मिता पारीक व राहुल पंवार

अनुवाद किन्हीं भी दो भाषाओं के बीच एक सेतु का काम करता है। बिना अनुवाद के हम दूसरी भाषाओं के साहित्य को नहीं समझ सकते, चूँकि हर भाषा का ज्ञान हर व्यक्ति के लिए संभव नहीं है इसलिए अगर उसे किसी और भाषा में लिखे गए किसी लेख या सामग्री को समझना है, तो वहाँ अनुवाद की भूमिका स्पष्ट होती है। कोई भी अनुवाद अगर सही होता है तो वह युगों-युगों तक चलता रहता है।

हिंदी साहित्य एवं कविताएं उत्तरी भारत के विशालकाय राज्यों को जोड़ती हैं जो पश्चिम में राजस्थान से लेकर पूरब में बंगाल तक फैला है। हिंदी लगभग चालीस करोड़ लोगों की मातृभाषा है और विश्व में सबसे ज़्यादा बोले जानी वाली भाषाओं में से एक है। फिर भी वैश्विक बाज़ार में हिंदी भाषा का साहित्य बहुत सीमित मात्रा में उपलब्ध है। भारतीय लेखिका गीतांजलि श्री कि 'रेत समाधि' ने इस सीमा को तोड़ साहित्य जगत में नए आयाम स्थापित किए हैं। गीतांजलि श्री को उनके उपन्यास के अंग्रेज़ी अनुवाद 'टूंब ऑफ़ सैंड' के लिए प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिला। इस पुस्तक का अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद अमेरिकी अनुवादक डेज़ी रॉकवेल ने किया है। गीतांजलि श्री हिंदी भाषा में लिखने वाली और यह पुरस्कार जीतने वाली पहली भारतीय लेखिका बन गई हैं। इस उपन्यास की सफलता में अहम भूमिका निभाई रेत समाधि की अंग्रेज़ी भाषा अनुवादक डेज़ी रॉकवेल ने। यह मैन बुकर पुरस्कार लेखिका गीतांजलि श्री और अनुवादक डेज़ी रॉकवेल को साथ में दिया गया। इस पुरस्कार के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनुवाद और अनुवादक की महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट हो पाई। अनुवाद विशेषज्ञ वॉल्टर बेंजामिन ने

'टास्क ऑफ़ द ट्रांसलेटर'[3] में इसी संदर्भ में कहा था कि किसी साहित्य का अनुवाद उस साहित्य का पुनर्जन्म है जहां उसे रूपांतर कर नया जीवन प्रदान किया जाता है।

यदि हम हिंदी भाषा साहित्य का कालानुक्रमिक इतिहास देखे तो पता चलता है कि बीसवी सदी के आधुनिक युग का शंखनाद हिंदी सहित्य का सबसे अहम समय रहा, जब विदेशी साहित्य पढ़कर हमारे देश के लेखक प्रभावित हुए और उन्होने देश की ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सामाजिक व्यवस्था को अपना विषय चुना। भारत, भारतीयता और भारतीय भाषाओं में दिलचस्पी रखने वाले विदेशी लोगों के लिए अनुवाद एक पुल का काम करता है। भाषांतरण के माध्यम से भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं को देश के बाहर अन्य देशों में जाना और समझा जा सकता है परन्तु हिंदी साहित्य अनुवाद को अंग्रेज़ी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में कम ही प्रसारित किया गया है। इसके कितने ही कारण हो सकते हैं। इस लेख का मुख्य उद्देश्य विदेशी भाषाओं में पाए जाने वाले अनूदित हिंदी साहित्य से आपको रूबरू कराना है।

1960 से लेकर 2008 तक के ट्रांसलेशनम इन्डेक्स[1] के अनुसार हिंदी साहित्य का विदेशी भाषाओं में अनुवाद मुख्यतः भारत में किया गया है। यह देखा गया है कि 64% हिंदी साहित्य का अनुवाद विदेशी भाषाओं में हमारे ही देश में किया गया है, रूस में 8% और कुल अनूदित प्रकाशनों में 5% जर्मनी एवं 4% फ्रांस में किया गया है। यह स्थिति विदेश और भारत में होने वाले हिंदी साहित्य के प्रकाशन के अल्पमत को दर्शाती है।

अनुवाद के एक नामी विशेषज्ञ प्रोफ़ेसर माइकल क्रोनिन[2] ने भी इसी 'माइनोरटि लैंग्वेज'प्रवृति के बारे में लिखा है कि उत्तर उपनिवेशवाद आलोचक यूरोप को केवल दो भाषाओं में सीमित कर देते हैं–अंग्रेज़ी एवं फ्रेंच। यूरोप की बाकी भाषाएँ अंतरराष्ट्रीय पटल पर इसी वजह से अदृश्य हो गई। परंतु इस तर्क को यदि हिंदी भाषा के संदर्भ में देखा जाए, तो हमारी भाषा विदेशी अनूदित साहित्य में बिलकुल अदृश्य है। विश्व में अंग्रेज़ी के प्रभुत्व का ही एक नतीजा है कि हिंदी अनुवाद शोध में भी कम पढ़ा या पढ़ाया जाता है। हिंदी की बहु-सांस्कृतिक परंपराएँ एवम् सामाजिक व्यवस्थाएँ निरंतर अनुवाद की स्थिति में बड़ी ख़ूबसूरती के साथ सजीव रहती हैं। भाषाओं की सूची एवं उसमें किए गये अनुवाद कार्य पर शोध एक बड़ा विषय है। इस लेख में हमने कुछ भाषाओं में इस कार्य में होने वाली वृद्धि के बारे में विचार किया है।

ट्रांसलेशनम इंडेक्स के डेटा के अनुसार, चूँकि हिंदी से विदेशी भाषाओं में अनुवाद भारत में ही किया जा रहा है और मुख्यतः भारतीय प्रकाशन गृहों से ही प्रकाशित होता

है इसलिए सीधे हिंदी भाषा से किया गया अनुवाद वैश्विक स्तर पर सीमित मात्रा में ही मौजूद है।

नीचे दी गई इस सूची में कुछ भाषाओं का डेटा है जिसे ट्रांसलेशनम वेबसाइट से लिया गया है। यूनेस्को की इस वेबसाइट पर शायद डेटा को लगातार अपडेट नहीं किया जा रहा है, इसलिए अंतिम बार अनूदित की गई रचनाएँ काफ़ी वर्षों पुरानी हैं-

क्रम सं.	**मूल भाषा**	**अनूदित भाषा**	**कितनी रचनाएँ (लगभग)**	**अंतिम बार रचना कब अनूदित हुई**	**मुख्य रचनाएँ**
1	हिंदी	अरबी	5	2008	आर.के. नारायण की रामायण
2	हिंदी	बल्गारियन	9	1996	–
3	हिंदी	चाइनीज़	10	2007	गांधी, नेहरू
4	हिंदी	डच	20	2006	अधिकतर धार्मिक साहित्य
5	हिंदी	अंग्रेज़ी	409	–	–
6	हिंदी	फ़्रेंच	79	2009	लगभग सभी भगवानों की चालीसा
7	हिंदी	फिनिश	05	1989	प्रेमचंद की गोदान
8	हिंदी	कोरियाई	02	1997	फूलन देवी, कबीर
9	हिंदी	जापानी	32	2008	मीराबाई, महाभारत
10	हिंदी	जर्मन	115	2009	भीष्म साहनी, गांधी
11	हिंदी	पुर्तगाली	05	1994	आध्यात्मिक रचनाएँ
12	हिंदी	रूसी	69	2007	सत्य साई बाबा
13	हिंदी	रोमानी	05	2004	कबीर, प्रेमचंद
14	हिंदी	स्पेनी	33	2007	भीष्म साहनी
15	हिंदी	स्वीडिश	05	2001	कृष्णा सोबती
16	हिंदी	तुर्की	05	1979	–

सारिणी-1 हिंदी साहित्य का विदेशी भाषाओं में ट्रांसलेशनम डेटा

इस सूची से स्पष्ट होता है कि हिंदी भाषा में लिखे गए साहित्य का सबसे अधिक अनुवाद अंग्रेज़ी भाषा में किया गया है, उसके बाद जर्मन भाषा में भी अनुवाद में बढ़ोतरी होती देखी गई है। फ्रेंच और रूसी भाषाओं में भी अनुवाद कार्य अन्य भाषाओं से अधिक है।

इरा शर्मा ने हिंदी साहित्य का जर्मन भाषा में अनुवाद के अपने शोध में बताया है कि किसी हिंदी किताब या किसी भी विदेशी भाषा की किताब के लिए अनूदित पुस्तक बाजार में प्रवेश करने की मुख्य शर्त यह है कि उस भाषा के प्रकाशक को इसके बारे में पता चले। प्रकाशक को इसके बारे में पता चलने के तीन मुख्य माध्यम हो सकते हैं:

1. विदेशी प्रकाशन संस्थान से सीधे प्रस्ताव मिलते हैं (अनुरोध के आधार पर/अनचाहे तरीके से)
2. मध्यस्थों द्वारा सुझाव: साहित्यिक एजेंसियां, स्काउट्स, अनुवादक (अनुरोध के आधार पर/अनचाहे तरीके से)
3. प्रकाशन गृह के आंतरिक प्रयास

यदि इसी तरह विदेशी भाषाओं में अनुवाद कर प्रकाशन करने का कार्य भारत तक सीमित रहा तो विदेशी प्रकाशन संस्थानों, साहित्यिक एजेंसियों का ध्यान और रुचि हिंदी साहित्य की तरफ़ शायद ही बढ़ सकती है।

इतालवी में हिंदी अनुवाद की स्थिति

इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिंदी इटली में सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली आधुनिक भारतीय भाषा है और साहित्य के अध्ययन और अनुवाद के विकल्पों से भी यह स्पष्ट होता है। यदि हम "आधुनिक" कहानी के अनुवाद पर विचार करते हैं, तो हम देखते हैं कि इतालवी में सबसे अधिक अनूदित हिंदी लेखक प्रेमचंद हैं, जिन्हें सार्वभौमिक रूप से "आधुनिक हिंदी कहानी के जनक" के रूप में मान्यता प्राप्त है। हिंदी लघुकथाओं के इतालवी में अग्रणी अनुवादक स्वर्गीय लक्ष्मण प्रसाद मिश्र (वेनिस विश्वविद्यालय) ने लगभग चालीस साल पहले प्रेमचंद की कहानियों का पहला संग्रह इतालवी में संपादित किया था। उनके बाद के अन्य विद्वानों में ये नाम प्रमुख हैं: डोनाटेला डोलसिनी (मिलान विश्वविद्यालय) और मारिओला ऑफ्रेडी (वेनिस विश्वविद्यालय)[3]। इन्होंने प्रेमचंद की

रचनाओं पर विचार किया, लेकिन उनके अनुवाद आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। दरअसल, अंग्रेज़ी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं के अनुवादों की एक ख़ासियत यह है कि वे लगभग हमेशा अकादमिक माहौल तक ही सीमित रहते हैं।

अगर हम देखते हैं कि 19वीं, 20वीं और 21वीं शताब्दी के किन लेखकों का हिंदी से इतालवी में अनुवाद किया गया है, तो इसकी स्थिति काफी अलग दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, अज्ञेय, राजकमल चौधरी, धूमिल, कमलेश्वर, मुक्तिबोध, कुँवर नारायण, निराला, मोहन राकेश, राही मासूम रज़ा, फणीश्वरनाथ "रेणु", रघुवीर सहाय, रुद्र, केदारनाथ सिंह, शमशेर बहादुर सिंह, विनोद कुमार शुक्ल, निर्मल वर्मा: इन प्रसिद्ध लेखकों का अनुवाद मुख्य रूप से वेनिस विश्वविद्यालय से जुड़े विद्वानों (कॉसियो, ऑफ्रेडी, मिंगियार्डी, रूपिल और अन्य) द्वारा किया गया है। पिनुचिया कैराची और स्टेफ़ानो पियानो (ट्यूरिन विश्वविद्यालय) ने हिंदी लघुकथाओं के एक संकलन को संपादित किया, पिछली शताब्दी की हिंदी कथाओं पर यह सर्वेक्षण एक लंबे उपदेशात्मक अनुभव का परिणाम है। इसके मुख्य लेखक हैं: भीष्म साहनी, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, कमलेश्वर, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, जयशंकर प्रसाद, बद्रीनाथ सुदर्शन, पांडे बेचन शर्मा उग्र, इलाचंद्र जोशी, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, भगवती प्रसाद वाजपेयी, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी।

जिन शब्दों का इतालवी में कोई सटीक समकक्ष नहीं होता, उन्हें अक्सर मूल रूप में छोड़ दिया जाता है और फ़ुटनोट या शब्दावली में समझाया जाता है। यह इतालवी शब्दों के उपयोग से बचने का एक बहुत ही प्रभावी तरीका है जो भ्रामक हो सकता है और मूल शब्द के साथ आने वाली सांस्कृतिक विरासत को धोखा दे सकता है। जहां तक भारतीय संस्कृति का सवाल है, इटली में भारतीय संस्कृति के बारे में अज्ञानता है। जहां एक ओर यहाँ अंग्रेज़ी वर्तनी को बनाए रखने की प्रवृत्ति है जो किसी भी तरह से उचित नहीं है और जिसका इतालवी पाठकों द्वारा गलत तरीके से उच्चारण किया जाता है। वहीं दूसरी ओर, किसी इतालवी पाठ में हिंदी शब्दों का अत्यधिक प्रयोग उतना ही भयानक लगता है जितना कि कुछ भारतीय लेखकों की विदेशिता, जो अपनी रचनाओं को विदेशी शब्दों से भर देते हैं।

अंततः हम कह सकते हैं कि इटालियन वाणिज्यिक प्रकाशन बाज़ार में हिंदी साहित्य लगभग कहीं नहीं पाया जाता है। लेकिन एक उल्लेखनीय अपवाद है। कुछ

साल पहले, पहली बार किसी हिंदी उपन्यास, अलका सरावगी द्वारा रचित 'कलिकथा: वाया बाइपास' ने किताबों की दुकानों में अपनी जगह बनाई। इस उपन्यास को मारियोला ऑफ़्रेडी द्वारा अनूदित किया गया। यह उपन्यास अनेक भारतीय भाषाओं के अलावा इटालियन, फ़्रेंच, जर्मन, स्पैनिश भाषाओं में अनूदित हुआ और भारत एवं कैम्ब्रिज, ट्यूरिन, नेपल्स के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी शामिल है। अलका सरावगी के तीन उपन्यासों के इतालवी भाषा में प्रकाशित होने पर उन्हें इटली की सरकार द्वारा 'ऑर्डर ऑफ़ द स्टार ऑफ़ इटली-कैवेलियर' का सम्मान दिया गया।

जर्मन में हिंदी अनुवाद की स्थिति

हिंदी से जर्मन में अनूदित शीर्षकों के चयन पर नज़र डालने पर एक विकृत तस्वीर सामने आती है जो किसी भी तरह से हिंदी साहित्यिक परिदृश्य का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। अनुवादक हॉवर्ड गोल्डब्लाट ने तर्क दिया है[4], अनुवादक और संपादक–जो अनुवाद के लिए पुस्तकों का चयन करते हैं, वे "कैनन निर्माता" हैं और इस प्रकार वे काफी ज़िम्मेदारी निभाते हैं। हालाँकि, "हिंदी साहित्यिक कैनन" जैसा कि यह खुद को जर्मन अनुवाद में प्रस्तुत करता है, उस पर हिंदी के एक ही लेखक, निर्मल वर्मा का प्रभुत्व है, जिसका प्रतिनिधित्व 9 पुस्तकों (कुल 33 में से) द्वारा किया गया है। निस्संदेह, निर्मल वर्मा एक महत्वपूर्ण समकालीन भारतीय बुद्धिजीवी और प्रमुख हिंदी लेखकों में से एक थे–फिर भी, यह विचारणीय है कि क्या उनकी स्थिति इस तथ्य को सही ठहराती है कि उनके काम हिंदी के सभी अनुवादों का लगभग तीस प्रतिशत हिस्सा हैं जो कभी जर्मन में प्रकाशित हुए हैं। काफी अंतराल के बाद, लेखक अज्ञेय और प्रेमचंद, दोनों प्रतिष्ठित साहित्यकारों के काम सामने आते हैं, जिनमें से प्रत्येक की चार पुस्तकों का जर्मन भाषा में अनुवाद किया गया है।

जापान में हिंदी अनुवाद की स्थिति

भारत और जापान के संबंधों की जड़ें बहुत गहरी हैं जिनको जापान में बौद्ध धर्म की व्यापक स्तर पर मान्यता और गहरी कर देती हैं। इसी कारण जापान में भारतीय भाषाओं से अनुवाद का अधिक हिस्सा बौद्ध धर्म के साहित्य से जुड़ा हुआ है। 1911 में जब जापान में टोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय स्थापित किया गया तभी से हिंदी

साहित्य पर अध्ययन और अनुवाद में शोध में रुचि बढ़ने लगी। हिंदी साहित्य के दिग्गज लेखक जैसे- प्रेमचंद, अज्ञेय, निराला, हरिप्रसाद द्विवेदी, दिनकर, सुमित्रानंदन त्रिपाठी आदि को जापानी भाषा में अनुवाद किया गया है। इसके अलावा भारत के रीति-रिवाज, इतिहास को समझना भी महत्वपूर्ण माना गया जिसके चलते कबीर, तुलसीदास से लेकर मोहन राकेश, काशीनाथ सिंह के कार्यों का अध्ययन और अनुवाद भी जापानी भाषा में किया गया है।

बल्गारियन में अनूदित हिंदी साहित्य

बल्गारियन यूरोप के एक छोटे से देश बुल्गारिया में बोली जाने वाली भाषा है। बल्गारियन तथा हिंदी, दोनों भाषाओं की शब्दावली में भी अद्भुत समानता पाई जाती है। भारत और बुल्गारिया के पुरातन संबंध हैं जो अनेक पुरातत्वीय साक्ष्यों के माध्यम से भी स्पष्ट होता है। भारत के जाने-माने भाषाविद्, प्रतिष्ठित अनुवादक और हिंदी और बल्गारियन भाषा पर एक समान पकड़ रखने वाले प्रोफ़ेसर डॉक्टर विमलेश कांति वर्मा के अनुसार, हिंदी साहित्य का बल्गारियन में अनुवाद मूलतः भारतीय संस्कृति एवम् धार्मिक परंपराओं को गहराई से समझने के लिए किया गया है। बुल्गारिया के सोफ़िया विश्वविद्यालय में स्थापित इंडोलॉजी विभाग की शुरुआत प्रोफ़ेसर डॉक्टर विमलेश कांति वर्मा ने 1974 में की थी और वहीँ से हिंदी साहित्य के बल्गारियन भाषा में अनुवाद का श्रीगणेश होता है।[5] डॉक्टर वर्मा के शिष्य श्री कोलचो कोवाचेव ने सर्वप्रथम मूलभाषा हिंदी से प्रेमचन्द के 'गोदान' का बल्गारियन भाषा में अनुवाद किया जो बहुत चर्चित रहा। तदुपरांत कोल्चो कोवाचेव ने कृष्ण चंदर के उपन्यास 'दादर पुल के बच्चे' का बल्गारियन भाषा में अनुवाद किया। हिंदी प्रोफ़ेसर डोंका एलेक्जेंड्रोवा ने बताया कि भारत में बुल्गारिया की रुचि बेहद पुराने समय से है और रवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर महात्मा गांधी तक सभी को वहाँ रुचि से पढ़ा जाता है।

अवलोकन

लंबे समय से हिंदी साहित्य का अनुवाद करने वाले विद्वान वैश्विक स्तर पर सीधे हिंदी भाषा से हुए अनुवाद की कम दृश्यता पर दु:ख प्रकट करते हैं और कामना करते हैं कि हिंदी लेखक, अनुवादकों के माध्यम से व्यापक पाठक वर्ग तक पहुंचें। वास्तव

में, अकादमिक अनुवादकों के पितृसत्तात्मक रवैये और प्रकाशकों के लोकप्रिय होने के बावजूद, आम पाठक वर्ग उपलब्ध होने पर अच्छी पुस्तकों की सराहना करने में सक्षम होता है।

हिंदी से अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद सीमित है परंतु यदि हिंदी से अंग्रेज़ी में अनुवाद की बात की जाए तो प्रकाशित साहित्य की कोई कमी नहीं है। भारत में अंग्रेज़ी हुकूमत का इतिहास भी एक वजह है कि यहाँ हिंदी भाषा साहित्य का अनुवाद सबसे अधिक इसी भाषा में किया गया है। जहां अन्य भाषाओं में किया गया अनुवाद उपन्यासों और धार्मिक पुस्तकों तक सीमित है, वहीं अंग्रेज़ी भाषा में किए गए अनुवाद कार्यों में कविता संग्रह, दोहे, लघु कथाएँ, संगीत आदि सभी प्रकार के हिंदी साहित्य को अनूदित किया गया है।

'रेत समाधि' की फ्रेंच अनुवादक[7] एनी मोंटौट ने इसी संदर्भ में लिखा कि भारतीय साहित्य और उनके विदेशी भाषाओं में अनुवाद में गहरी विषमता है। यह भी देखा गया है कि अन्य भाषाओं में हिंदी साहित्य के अंग्रेज़ी अनुवाद के सहारे अनुवादक ज़्यादा समझ पाता है कि जिसे वे अपने अनुवाद में प्रयोग कर पाते हैं। हिंदी साहित्य का अंग्रेज़ी अनुवाद इस तरह से एक सेतु का काम करता है जिससे दूसरी भाषाओं में हिंदी साहित्य की जानकारी आसानी से पहुँच पाती है। यदि हम चाहते हैं कि वैश्विक फ़लक पर हिंदी साहित्य की दृश्यता में बढ़ोतरी हो, तो अनुवाद कार्य में अंग्रेज़ी की महत्ता को समझना आवश्यक है।

संदर्भ:

1 Benjamin, Walter, and Steven Rendall. "The translator's task." *The translation studies reader*. Routledge, 2021. 89-97.

2 https://www.unesco.org/xtrans/bsform.aspx (ट्रांसलेशनम यूनेस्को की एक वेबसाइट है, जहां अनुवाद से जुड़ा महत्वपूर्ण डेटा उपलब्ध होता है)

3 Cronin, Michael. "Minority." *Routledge encyclopedia of translation studies*. Routledge, 2019. 334-338.

4 Consolaro, Alessandra. "Translating contemporary Hindi literature in Italy. Academy, publishers, readers." *Selected Papers of the CETRA Research Seminar in Translation Studies 2006*. Leuven: CETRA, 2007.

5 Sarma, Ira. “Politics of Translation: The Difficult Journey of Hindi Literature onto the German Market.” *The Global Literary Field*: 228-248.

6 Source Interview: ‘This Linguist Works at Keeping Hindi Alive, Locally and Globally’

‘‘https://www.thebetterindia.com/96518/vimlesh-kanti-verma-linguist-bulgarian-hindi-dictionary/

7 Source article: ‘How I Translated Ret Samadhi To French’ https://www.outlookindia.com/books/-how-i-translated-ret-samadhi-to-french-annie-montaut-magazine-199799

सुष्मिता पारीक *अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान एवं अनुवाद अध्ययन केन्द्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय की शोध छात्रा रही है और अनुवाद शास्त्र के व्यावहारिक पक्ष पर उन्होंने अनुसंधान कार्य किया है। संपर्क: sushmitaparek@gmail.com*

राहुल पंवार *लोक सभा सचिवालय, भारतीय संसद, नई दिल्ली में अनुवादक के पद पर कार्य कर रहे हैं। संपर्क: localizewithrahul@gmail.com*

खंड -चार
साहित्य संचयन

संयोजन : सुनंदा वर्मा

ओदोलेन स्मेकल **(चेक गणराज्य)**

आखिर कब तक

पूछ रहा रिक्शा चालक
सड़क पर दूसरे
रिक्शा चालक को रोक
ऐ भैया!
मालिक का रिक्शा कब तक चलाते रहोगे
स्वयं मालिक हुए बिना
क्या यह भी कोई
पूछने की बात है?
आखिरी दम तक
भैया!

ऐ भाई,
पुराने मालिक की, पराई भाषा
कब तक लादे फिरोगे?
क्या यह भी कोई
पूछने की बात है?
आखिरी दम तक
भैया!
आखिरी दम तक

अमृत पान

हिंदी ज्ञान मेरे लिए अमृत पान,
जितनी बार उसे पीता हूँ
उतनी बार लगता है, पुनः जीता हूँ
हिंदी का पूर्ण रूपेण ज्ञान,
है सोमरस पान मेरे लिए
जितनी बार उसे पीया,
उतने ही मिले अभिनव प्राण
हिंदी ज्ञान मेरे लिए अमृत पान।।

भारतवासी

पेट खाली
पर हंसना कभी नहीं भूलते
काम काज से मिला जब
छुटकारा
उसी क्षण हिंडोला झूलते
देश उनका अभिराम
तीर्थ ताल घाट शिखर
गंगा मैया अनन्य
गिरिराज में स्वर्ग भू पर
कन्याकुमारी में लावण्य
लो चितवन ही चितवन में
राधिका घनश्याम
पेट खाली
पर हंसते रहते अविराम

सत्येन्द्र श्रीवास्तव (इंग्लैंड)

यह घड़ी

सामने जो बुत बनी-सी चुप खड़ी है
वह परीक्षण की घड़ी है
डेस्क पर रक्खे पड़े हैं कई कोरे पृष्ठ
अँगुलियों में जड़ हुई सहमी रुकी पेंसिल
दृष्टियों में बाढ़ है बीते हुए कल की
बह रहे हैं धड़ों से अलगा चुके कुछ दिल

अरथियाँ हैं स्याह क्षितिजों की
लाश किरणों की पड़ी है
मोह आहत, सीढ़ियों पर झुका बैठा दम्भ
चल रही है ग्रीक ट्रेजडी, गिर रहे स्तम्भ
संतरी ख़ुद बन गया खलनायकों का नृप
यहाँ विधिवत हो रहा है नाश का आरम्भ

प्यार है अपशब्द जग के कोश में
सुधि परीक्षक की छड़ी है

फैलती ख़ामोशियाँ, हर इंच पीड़ा की दरक
हर जगह है प्रश्न, उत्तर अब न लाते कुछ फ़रक
सिर नहीं खुजला रहे हम हैं समय को नोचते
उम्र की जलधार में हर क्षण मगर जाता सरक

पंडित रामलाल **(गयाना)**

संस्कृति राखी बचाय के

अरे जतन कर ले मनवा
मनुज तन पाई कै। ।
कलकत्ता छोड़ा, मदरास छोड़ा,
हमारा मुलुक अपनाई कै,
कुली नाम धराई कै। ।
घर छोड़ा, रिश्ता मोड़ा,
बाहर आने कमाई कै। ।
गोरन के हंटर लात खाए,
दुःख सहे नया देस बनाई कै।
धर्म न छोड़ा, भाषा न छोडी,
संस्कृति रक्खी बचाई कै। ।
एक बिरिछ की हम फूल पाती,
भारत मूल बनाई कै।
संग संग हम रहबे ले भय्या,
हिंदी विश्व में फैलाई कै। ।
जो सुख मिळत है ओम भजन में,
सो सुख नहीं अमीरी में।
ओम भजन में तत्पर रहियो,
पाओगे सुख बहुतेरा। । जो सुख ----
धन दौलत कछु काम न आवे,
भज ले ओम का नाम ले प्यारे। । जो मुख -----
आए अकेला जाओगे अकेला,
मिट्टी में सब मिल जाएगा। । जो सुख ----

लाल बहादुर शर्मा (गयाना)

डमरा फाग बहार

अब दसरथ राज कुमार खेलें सब होरी
राम लच्छमन भारत सत्रुहन हाथ लिए पिचकारी
तेहि बीच सोभित जनक दुलारी हो
तनु पाट पीतांबर सारी
ढ़ोल मृदंग झांझ बहू बाजात भीर भई अति भारी
उड़त अबीर लाल भए बादर
तहां छीपि गए हैं तमारी
खेलत फाग परसपर हिलीमिलि देव सुमन झरि डारी
परम अनन्द अवध नरनारी हो
तहां जय जय शब्द पुकारी
ब्रह्मा विष्णु देव सब आए उमा सहित त्रिपुरारी
अस्तुति करि निज लोक सिधाय हो,
उनके सरण में लाल बिहारी
बृज में राधा और सखियों के संग होली खेलने का वर्णन करते हुए शर्मा कहते हैं
उठुरी बृषभानकिसोरी मची बृज होरी
चली सखी बृज देखन चलिये, सासु ननद की चोरी
ग्वाल सखा सब ताल बजावत
तहँ नाचत राधा गोरी।

कमला प्रसाद मिश्र (फ़ीजी)

क्या मैं परदेसी हूँ

धवल सिन्धु-तट पर मैं बैठा अपना मानस बहलाता
फ़ीजी में पैदा हो कर भी मैं परदेसी कहलाता

यह है गोरी नीति, मुझे सब भारतीय अब भी कहते
यद्यपि तन मन धन से मेरा फ़ीजी से ही है नाता

भारत के जीवन से फ़ीजी के जीवन में अन्तर है
भारत कितनी दूर वहाँ पर कौन सदा जाता आता

औपनिवेशिक नीति गरल है, नहीं हमें जीने देती
वे उससे ही खुश रहते हैं जो उनका यश है गाता

भारतीय वंशज पग-पग पर पाता है केवल कंटक
जंगल को मंगल करके भी दो क्षण चैन नहीं पाता

साहस है, हम सब सह लेंगे हम भयभीत नहीं होंगे
पता नहीं कब गति बदलेगा कालचक्र जग का त्राता।

सुखराम (फ़ीजी)

हिंदी भाषा

हिंदी हमारी मातृभाषा, हिंदी हमारा धर्म है।
हिंदी हमारी संस्कृति, हिंदी हमारा कर्म है।
भारत की प्राचीन भाषा, हिंदी को प्रणाम है।
अन्य भाषा की तरह हिंदी का बड़ा नाम है। ।

करते अपमान हिंदी का, आज कुछ भाई मेरे।
भूल रहे धर्म अपना, आज कुछ भाई मेरे।
अन्य अख़बार पढ़ रहे, आज कुछ भाई मेरे।
हिंदी को भुला रहे, आज कुछ भाई मेरे। ।

वक्त अभी है होश में आओ भाईयो!
घर घर हिंदी का प्रचार करो भाइयो!
मातृभाषा हिंदी कभी मिटने नहीं पाए!
अनमोल निधि पूर्वजों की रखें हृदय में सजाये। ।

फूले फले हिंदी भाषा, यही मेरा अरमान है।
हिंदी को न भूले हम जब तक तन में प्राण है।
कोई उंगली न उठाए हम भारतीयों पर कभी।
प्राचीन भाषा हिंदी हिंदी मिटने नहीं पाए कभी। ।

उठो जागो अभी, हे मेरे वतन के लाल।
अनपढ़ को पढाओ हिंदी, कर दो तुम कमाल।
घर घर और गाँव गाँव में हो हिंदी का प्रचार।
अमर रहे हिंदी भाषा सुखराम कहै पुकार के। ।

ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' (मॉरीशस)

चेतावनी

हिंदी गई रसातल में तो गई हमारी आशा,
संस्कृति सिसक-सिसक रोयेगी धर्म मरेगा प्यासा।
हिंदी को कुचलेगी प्यारे गौरांगों की भाषा,
हिन्दू एक न होगा जग में पलट जायगा पासा।
जिस हिंदी ने स्वतन्त्रता दी उसको नहीं लजायें,
राम, कृष्ण, गौतम, गांधी की सीख सदा अपनायें। ।
युवक-युवतियों आओ मिलकर हिंदी ध्वजा उड़ायें,
दुनिया के कोने-कोने में हिंदी सुमन खिलायें।
हिंदी के रक्षक प्रतिपालक दुर्दिन में बन जायें,
भाषाओं की समर भूमि में विजय सदा अपनायें।
अटल प्रतिज्ञा यही हमारी कभी न पीठ दिखायें,
जय जय जय हिंदी के नारे विश्व सकल गुंजायें। ।

'गिरमिटिया के सपना'

सोनवा के लोभवा में देसवा बिसरले हो,
सोना सुन मरीचिया के नाम।
सुनके कि पग-पग सोना सवा सेर,
मिली करे के न परी एकौ काम।
खाइ के मुफुत मिली मक्खन, मिठाई, मेवा,
पीये खातिर दुधवा बदाम।

नरम नरम मिली सूते के गलइचा हों,
परी करी चाकरी सलाम। ।
अइते मरीचिया में सोनवा सुदेहिया में,
बँधल गुलमियाँ जंजीर।
खाइ के त रात दिन लाठी, गारी,
लात मिले पीये के नयनवा के नीर।
माहुर-जहर भरल गोरवा के बोलिया हो,
बिंधले करेजवा में तीर।
उखवा के खेतवा समनवा सरीर। ।
परती जमीनिया में कनवा उगाइके हो,
सोना से भरिले खलिहान।
खुनवा के बुँदवा से सींचले मरीचिया हो,
सोना नीयर सुघर जवान।
वीर नीयर काम कइले कुलियन के,
लाखों लाल भारत के गरब गुमान।
जेकरा कारन आज देसवा आज़ाद,
भइले चौरंगिया उड़े असमान। ।

अमर सिंह रमण **(सूरीनाम)**

प्रवासी विरह

रे मुन्ना भेंट ना होइहैं हमार
किरवा काटिस मुड़िया[6] में हम भाग आइली परदेस,
अपने देश में अकड़त रहिली यहाँ कुली[7] का भेस।
सात संमदर पार हो आइली छूटा भारत देश।।
रे मुन्ना भेंट ना होइहैं हमार।।

भैसी चरावत दूध खात और खेलत रहत कबड्डी।
आकर पड़ गया भक्खड़[8] मा यहाँ टूट गई मोरी हड्डी।
देह की पीरा सही ना जाए, दाना हो गई मिट्टी।।
रे मुन्ना भेंट ना होइहैं हमार।।

श्रीराम टापू के बदले पकड़ा हमें दलाल,
यहाँ तो चींटी-चूँटा काटे बुरा हो गया हाल।
दिन भर मेहनत करते करते सूख गया मोरा गाल।।
रे मुन्ना भेंट ना होइहैं हमार।।

भाई छूट गइल, बाप भी छूटा औ छूटी महतारी
लड़कन-बालन सब कुछ छूटा, छूट गई मोरी मेहरी
धोती कुरता सब कुछ छूटा बदन पर रह गई लुंगी।।
रे मुन्ना भेंट ना होइहैं हमार।।

हरिदेव सिंह सहतू (सूरीनाम)

महतारी भाषा

हम तोहके का बोली
बोली बोली
भाषा बोली
अवधी की भोजपुरी
हम तोहके का बोली(2)

हम तोहके का बोली(2)
सरनामी कि सरनामी हिंदी
हिंदुस्तानी कि सरनामी हिंदुस्तानी

हम तोहके का बोली(2)
मानक हिंदी कि खड़ी बोली
टूटल भाषा कि अइली गइली
हम तोहके का बोली(2)

अपन भाषा में एक बात बोली
तोहसे हम्मे बहुत है प्यार
महतारी भाषा हमार(2)।

के रहा उ

के रहा उ मैया
के रहा उ जौन
सबेरे तड़के उठा के
प्रार्थना के बाद
गाय बैल, मुर्गी-मुर्गा के
देखभाल करके
लड़कन के सेवा में
लग जात रहा.........
हमार नानी
हमार आजी,
सबके रानी।

के रहा उ हिम्मती मन
के रहा उ जौन
करके खेती
धान बना, बकुआ
ककाउ और भाजी के
धन दौलत कमाइ के
लड़कन के पेट भरत रहा.........
हमार नानी
हमार आजी,
सबके रानी।

के रहा उ
के रहा उ जौन

अपन बोट में लड़कन के
बैठाइके

सरमक्का-नदी में
खे-खेके
ना केवल पानी
के हलफा पे
बाकी जीवन के
के हलफा पे भी
विजय प्राप्त करिस.....
हमार नानी
हमार आजी,
सबके रानी।

के रहा उ गुरुमन
के रहा उ जौन
अपन मेहनत की कमाई से
बाप के ना रहे पे भी
अपन लड़कन के
पढ़ाई लिखाई के
समाज सेवक,
देश सेवक
धर्म –जाति रक्षक
बनाइ के
अमर होइगे.......
हमार नानी
हमार आजी,
सबके रानी।

तुलसी राम पाण्डेय **(दक्षिण अफ्रीका)**

डरबन का बलवा

तारीख तेरह महिना जनवरी संवत उन्नीस सौ उनंचास।
बलवा शुरू हुआ डरबन में, कारण नीचे करूँ प्रकाश।।
एक हिंदी भाई बैपारी, जिसका छोटा था दुकान।
आया वहाँ युवक एक हब्शी, जिसे कहते छोटा अम्फान।।
लेन-देन में हुआ बखेड़ा, हिंदी भाई गया रिसाय।
एक तमाचा दिया युवक को, और शीशा पर दिया गिराय।।
गिरते शीश टुकड़ा हो गया, मस्तक चोट पहुँचा जाय।
तुरंत बुलाए लिय एम्बुलैंस को, और अस्पताल दिए भिजवाए।।
चोट लघु था सिर के उपर, मलहम पट्टी दिया बंधाय।
पुलिस सिपाही पकड़ हिंदी को तुरंत कैद दिया पहुँचाय।।
झूठ-मूठ की अफवाह फैली बातें कही न जाए।
यही बहाना करके हब्शी इंडियन पर इल्जाम लगाय।।

डरबन शहर नटाल के अन्दर जहाँ बड़ी बस्ती इंडियन क्यार।
टेमिल, तेलुगु हिंदी मुस्लिम करते बड़ा बड़ा बैपार।।
देखकर गोरे इनकी उन्नति, हृदय में उनके लगा अंगार।
लगे भड़काने तब हब्शिन को कि इंडियन होत जात हुशियार।।
सुनकर बात कुछ गोरन की, गुंडे हब्शी करें विचार।
मार भगाओ इन कूलन को, जो हमसे करते बैपार।।

देवी दयाल **(दक्षिण अफ्रीका)**

हिंदी आल्हा

कथा सुनावों मात हिन्द के, सुनते हीं कटे कष्ट जंजाल। ।
हिन्द देश के जितने प्राणी, तिनकर भाषा हिंदी माय।
देवनागरी लिपि है उनकी, सब गुण आगर जगत कहाय। ।
चन्द्र कवी सम जिसका प्रेमी, रासो ग्रन्थ रचा बडमार।
कबिरा सूरदास तुलसी भये, बड़-बड़ पोथिन के रचनार। ।
लल्लूलाल हरिचन्द्र होय गये, दयानन्द मुनि उपजै आय।
किनका किनका नाम गनाओं, किये प्रेम हिंदी से भाय। ।
तरह तरह के ग्रन्थ बनाकर, हिंदी साहित्य के भण्डार।
नाम अमर करि गये दुनिया में, कीरति छाय रही संसार। ।
हिंदी साहित्य के रक्षा हित, सम्मेलन हर साल लगाय।
देश देश के हिंदी प्रेमी, जुटकर करें विचार बनाए। ।
हिंदी देश की राष्ट्रीय भाषा, हिंदी गुण पूरण कहलाय।
जाके रचना में रस टपके, बोलत छाती जाय जुडाय। ।
क्या बंगाली क्या मदरासी, क्या गुजराती उड़िया भाय।
सबकी श्रद्धा है हिंदी पर, कहं लगि कहो कही न जाय। ।
सबका अन्त: करण एक है, सबका एकं हीं भाव लखाय।
सबका प्रेम हिन्द माता पर, मन में रहे हुलाशी छाय। ।

खंड-पांच
आकलन: नई किताबें

नेपाल में हिंदी: स्थिति और सम्भावनाएं

समीक्षक: फणीन्द्रराज निरौला
अनुवाद: डिल्ली राम शर्मा संग्रौला

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा तथा डॉ. संजीता वर्मा द्वारा सम्पादित नेपाल में हिंदी स्थिति और सम्भावनाएं (सन 2024) कृति का नेपाल और भारत के उच्च पदस्थ व्यक्तियों एवं लब्ध प्रतिष्ठित लेखकों की उपस्थिति में कुछ दिन पहले काठमांडू में सार्वजनिक लोकार्पण हुआ। हिंदी बुक सेन्टर दिल्ली से प्रकाशित इस कृति में 15 विद्वान/विदुषियों के खोजमूलक व अनुसन्धानमूलक 20 लेख मूलतः नेपाल में हिंदी भाषा साहित्य के साथ ही तराई क्षेत्र में बोली गई मैथिली, भोजपुरी, अवधी आदि भाषा साहित्य पर भी विशद् चर्चा की गई है। हिंदी भाषा साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान तथा विगत पाँच दशक से दीर्घ साधना करके अपने नाम को स्वर्ण अक्षर से लिखाने में सफल डॉ. विमलेश स्वयं में भारतीय क्षेत्र में सुपरिचित नाम है और डॉ. संजीता वर्मा नेपाल में लम्बे समय से साहित्य और समालोचना के क्षेत्र में काम करती आ रही हैं। वर्तमान समय में आप त्रिभुवन विश्वविद्यालय में अध्यक्ष और प्राध्यापनरत हैं। ऐसे सुपरिचित विद्वत वर्ग से सम्पादित यह कृति तीन खण्ड और 430 पृष्ठ में विस्तारित है। भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् के महानिदेशक श्री कुमार तुहिन की 'मंगलकामना' तथा त्रिभुवन विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. शिवलाल भुसाल की शुभाशंसा से इस कृति का ओज और गरिमा और बढ़ गई है। सम्पादक विमलेश कान्ति वर्मा जी के लम्बे प्राक्कथन से इस कृति के प्रकाशन करने के उद्देश्य के बारे में जानकारी मिलती है। इस कृति के उद्देश्य के बारे में वे कहते हैं–"नेपाल में हिंदी अध्ययन अनुसन्धान के लिए एक ठोस भूमि बन सके इसके लिए आवश्यकता है एक ऐसे ग्रन्थ की जो देश में 'हिंदी की स्थिति और सम्भावनाओं' को सही रूप में विचारकों, नीति निर्धारक और राजनेताओं के सम्मुख

प्रस्तुत कर सके, इसी दृष्टि से नेपाल के सभी हिंदी विद्वानों और विचारकों के सहयोग से एक विमर्श की आवश्यकता अनुभव की गई जिसका परिणाम यह पुस्तक...। ” (पृ. 13)

उल्लिखित टिप्पणी का अनुशीलन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस कृति के प्रकाशन का अन्तर्निहित उद्देश्य नेपाल में हिंदी भाषा-साहित्य की विगत तथा वर्तमान स्थिति का वस्तुगत अवस्था में मूल्यांकन करना और भविष्य के मार्गचित्र को प्रशस्त करने के लिए सम्बन्धित निकाय को झकझोरना है। इस प्रकार से नेपाल में हिंदी भाषा-साहित्य के विगत और वर्तमान के विस्तृत आयाम को अनेक कोण से उजागर करने के उद्देश्य के साथ इस कृति को तैयार किया गया है। नेपाल और नेपाली के प्रति सद्भाव, सत्प्रेम और भाईचारा को अनन्तकाल से स्थापित मित्रराष्ट्र भारत और नेपाल बीच के सम्बन्ध को और प्रगाढ़ और सशक्त बनाने हेतु इस कृति ने पुनीत कर्म सम्पन्न किया है और यह प्रशंसनीय तथा स्तुत्य है। इसके लिए सम्पादक द्वय श्रद्धेय विद्वान/विदुषी के प्रति हार्दिक बधाई देना चाहता हूँ और इस प्रकार का कर्म आगामी दिनों में और बहुआयामिक बनता जाए मेरी ओर से शुभकामनाएँ है।

प्रस्तुत कृति के खण्ड एक में सत्रह अध्याय हैं और चौदह विद्वानों के सत्रह विभिन्न प्रकृति के अनुसन्धानमूलक लेख संकलित हैं। इसमें प्रकाशित डा. संजीता वर्मा का “नेपाल और भारत सांस्कृतिक सद्भाव और सम्भाव का आदर्श” शीर्षक है जिसमें उन्होंने नेपाल और भारत का आपसी सम्बन्ध और सद्भाव की परम्परा केवल सुदीर्घ ही नहीं अत्यन्त प्रगाढ़ और आदर्श से परिपूर्ण होने के तथ्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म ढंग से अनुशीलन किया है। दोनों देशों के सम्बन्ध के आयाम कितने व्यापक हैं इसके बारे में इस लेख में अभिव्यक्त निम्नानुसार कथन से स्पष्ट होता है–“नेपाल और भारत बहुभाषिक, बहुधार्मिक, बहुजातीय तथा बहुसांस्कृतिक देश है। यहाँ विभिन्न भाषा बोलने वाले, धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं। प्रकृति ने दोनों ही देशों का बडा सुन्दर शृंगार किया है। दोनों ही देशों में अतिथियों को देवतुल्य माना जाता है। ... भारत मे बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वरम, द्वारकापुरी चार धाम हैं जहाँ नेपाल और भारत के हिन्दू अपने जीवन काल में एक बार तो अवश्य जाना चाहते हैं। ” (पृष्ठ 23)। डा. संजीता वर्मा का दूसरा भी लेख है जिसका शीर्षक है “नेपाल में मैथिली भाषा और साहित्य” इस लेख में उन्होंने नेपाल में नेपाली भाषा के बाद मैथिली भाषा बोलने वालों की संख्या अधिक है, कहा है।

इसके अतिरिक्त इस लेख में भारतीय एवं नेपाली संस्कृति की समान विशेषताओं के ऊपर बिन्दुगत रूप में सविस्तार उल्लेख किया गया है। दोनों देश अलग अलग सार्वभौम सत्ता सम्पन्न देश होते हुए भी समान सांस्कृतिक, धार्मिक, गणतान्त्रिक शासन व्यवस्था से लेकर वैचारिक दृष्टि से भी समान विशेषताओं को ऐतिहासिक सन्दर्भ के आधार में पुष्टि की गई है।

इस कृति के मुख्य सम्पादक डा. विमलेश कान्ति वर्मा के इस पुस्तक में चार लेख प्रकाशित हैं। इसमें संकलित 'हिंदी एक अक्षयवट' शीर्षक लेख में उन्होंने हिंदी को व्यापक सामर्थ्य वहन करने वाली भाषा के रूप में उल्लेख किया है। साथ ही लगभग 17 ग्रामीण बोली बोलने वाली शैलियों की भी टिप्पणी की गई है। इस सन्दर्भ में लेखक की टिप्पणी इस प्रकार से है–"मोटे रूप में हिंदी की सत्रह प्रमुख ग्रामीण शैलियाँ तो हैं ही। यदि पश्चिम से हम इनकी गणना प्रारम्भ करें तो इसमें परिगणित होनेवाले शैली रूप हैं–मारवाड़ी, मेवाती, जयपुरी, मालवी, खड़ीबोली, ब्रज, बुन्देली, हरियाणवी, कन्नौजी, अवधि, बघेली व छत्तीसगढी, मैथिली, मगही व भोजपुरी, गढ़वाली व कुमाउँनी। ये सभी भाषा रूप हिंदी के क्षेत्रीय रूप हैं। " (पृ.31)। हिंदी भाषा का साहित्य और शब्द भण्डार समृद्ध है। यह भाषा देश-विदेश में व्यापक रूप में फैली है और इसका सगर्व प्रयोग भी होता रहा है। इनका दूसरा लेख है–'हिंदी : तात्पर्य निर्णय'। हिंदी भाषा को बड़े-बड़े नेता से लेकर विद्यालय-महाविद्यालयों में हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा और विश्व वंदित संस्कृत हिंदी भाषा की जननी कहकर गलत ज्ञान देने की बात का भी उल्लेख है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है–"हिंदी का जन्म संस्कृत से नहीं अपभ्रंश से हुआ है। संस्कृत से पाली का जन्म हुआ, पाली से प्राकृत का जन्म हुआ, प्राकृत से अपभ्रंश का ओर अपभ्रंश से हिंदी का जन्म हुआ।" (पृ. 38-40)। इस लेख में लिखा गया है कि भारत में 1652 भाषाएं विद्यमान हैं। इन सभी भाषाओं को चार भाषा परिवार में विभाजित किया गया है और "भारत-युरोपीय भाषा परिवार" की भाषा बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक रहने के तथ्य को लेखक ने उजागर किया है। और इस भाषा के इतिहास, क्षेत्र, शैलीगत भेदों के साथ ही इस भाषा को देवनागरी लिपि में लिखे जाने की बात की है। यह भारत, नेपाल सहित विश्व में विस्तारित है एवं भारत की राजभाषा के रूप में सम्मानित है। ऐसी भाषा को हिंदी भाषा के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए, ऐसी लेखक की स्पष्ट धारणा है।

इसी तरह वर्मा जी का तीसरा लेख है—नेपाल का भाषायी परिदृश्य और हिंदी"। इस लेख में भारतीय एवं नेपालियों के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भाषिक आदि संबंध को फेहरिस्त के साथ ही नेपाल में भारतोरोपी, तिब्बती-चीनी, आस्ट्रीक-एसीयाटिक, द्रविड, अन्य अनिर्णित मिलाकर पाँच परिवार की भाषाएँ बोले जाने के तथ्यों को प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही हिंदी तथा नेपाली भाषा की समानता को उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है। नेपाली और हिंदी भाषा के शब्द भण्डार की विशद् चर्चा के साथ ही तराई में बोली जाने वाली भाषा को नेपाल के संविधान ने राष्ट्रीय भाषा का सम्मान देने की चर्चा है और इन भाषा बोलने वाले वक्ताओं की संख्या का भी तथ्य के आधार पर उल्लेख किया है। इनके चौथे लेख "नेपाल में हिंदी सम्भावनाएं और विकास की दिशाएं" शीर्षक में नेपाल में हिंदी भाषा की अवस्था, तराई में बोली जाने वाली मैथिली आदि भाषाओं के साथ हिंदी भाषा के विकास में नेपाल में हो रहे प्रयत्नों और आगामी दिनों में राज्यस्तर और निजी स्तर से किए जाने वाले कार्यों की समीचीन चर्चा की गई है।

हिंदी भाषा एवं साहित्य के विद्वान डिल्लीराम शर्मा संग्रौला ने "नेपाल में हिंदी भाषा-इतिहास, स्वरूप और समस्याएँ" शीर्षक में लिखा है कि नेपाल में नेपाली भाषा के बाद हिंदी भाषा बोलने वालों की उल्लेखनीय संख्या है। उन्होंने नेपाल में हिंदी भाषा की परम्परा अक्षुण्ण और सुदीर्घ होने की चर्चा की है। साथ ही नेपाल और भारत की भौगोलिक निकटता, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भाषिक दृष्टि से सामीप्यता होते हुए भी दोनों देशों के राजनीतिकर्मी कभी कभी एक दूसरे के ऊपर कीचड़ उछालने का प्रयास करते हैं। इस सन्दर्भ में वे आगे कहते हैं—"कभी कभी राजनीतिक उतार-चढ़ाव के कारण एक दूसरे देश के नेताओं का नजरिया कुछ सख्त होता है। उनके कुछ कार्यकर्ता एक दूसरे पर कीचड़ उछालने का काम करते हैं... परन्तु दोनों देशों की जनता में कोई मतभेद, वैमनस्यता नहीं है क्योंकि नेपाली अयोध्या, काशी, गया, मथुरा, हरिद्वार, ऋषिकेश, आदि स्थानों को उसी श्रद्धा भाव से देखते हैं जितना भारतीय देखते हैं... इन दोनों देशों की जनता दोनों देशों से इस प्रकार से बँध गई है कि उन्हें अलग करना मुश्किल है।" (पृ. 69) शर्माजी आगे कहते हैं कि हिंदी भाषा का प्रभाव क्षेत्र केवल तराई ही नहीं अब तो पहाड़ भी हो चुका है क्योंकि व्यापार-व्यवसाय, शिक्षा-दीक्षा, साहित्य, मनोरंजन, कर्मक्षेत्र आदि के कारण हिंदी भाषा को नेपालियों ने सहर्ष स्वीकार किया है। वैसे भी भाषा

कभी भी तोड़ने का नहीं जोड़ने का ही काम करती है। उन्होंने इस लम्बे लेख में नेपाल में हिंदी भाषा का, इसके इतिहास का, हिंदी के स्वरूप का तथा समस्याओं का यथोचित वर्णन किया है।

लम्बे समय से जनकपुर में रहकर हिंदी भाषा साहित्य के प्राध्यापन में जीवन समर्पित करने वाली डॉ. आशा सिन्हा ने "नेपाल में हिंदी की ऐतिहासिक यात्रा" शीर्षक के लेख में लिखा है कि हिंदी भाषा कई विषय क्षेत्रों में फैला हुआ है। उन्होंने लिखा है कि नेपाल में हज़ार वर्ष से भी पहले से सिद्ध, सन्त तथा नाथयोगियों ने अपभ्रंश रूप हिंदी भाषा के माध्यम से रचना की है। इसके बाद नेपाल के अनेक राज्यों में हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है और मल्लकाल तथा राष्ट्र निर्माता पृथ्वीनारायण शाह के एकीकरण अभियान के साथ ही हिंदी भाषा को आधिकारिकता प्राप्त हुई है। केवल हिंदी भाषी स्रष्टाओं ने ही नहीं अन्य मातृभाषी लोगों ने भी हिंदी साहित्य लिखे हैं।

नेपाल में लम्बे समय से हिंदी भाषा-साहित्य एवं समालोचना के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान पहुँचाती आ रही प्रो. उषा ठाकुर अपने लेख "नेपाल का हिंदी साहित्य : एक सिंहावलोकन" में लिखती है कि नेपाली साहित्यकार जैसे लोकेन्द्र बहादुर चन्द, केदारमान व्यथित आदि ने हिंदी भाषा साहित्य के विकास और विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान पहुँचाया है। उन्होंने लिखा है कि नेपाल हिंदी भाषा साहित्य का अपूर्व भण्डार है। हिंदी का प्राचीन साहित्य `चर्यागीत´ नेपाल में ही लिखा गया है और इस भाषा (हिंदी) का प्रयोग हज़ार वर्ष से भी पहले से होने के तथ्य मिलते हैं। मल्ल काल में हिंदी भाषा में बहुत ही नाटक लिखे गए थे साथ ही भवानी भिक्षु, विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, मोदनाथ प्रश्रित, मोहनराज शर्मा प्रभृत्ति ने हिंदी साहित्य के सम्बर्धन में महत्वपूर्ण योगदान पहुँचाया है साथ ही व्यक्तिगत और संस्थागत रूप में भी उल्लेखनीय काम होने के तथ्यों को उन्होंने उजागर किया है।

लम्बे समय से हिंदी भाषा साहित्य प्राध्यापनरत करती आ रही डॉ. मंचला झा ने अपने लेख "नेपाल में हिंदी की साहित्यिक परिधि" में लिखा है कि नेपाल में हिंदी भाषा का प्रयोग कब से हुआ है? इसका सही समय निर्धारण करना मुश्किल है। उन्होंने आगे कहा है कि योगी नरहरीनाथ द्वारा की गई खोज को ही आधार मानकर इसका इतिहास

अवश्य ही ग्यारह सौ वर्ष पुराना होने का निष्कर्ष निकलता है। उन्होंने लिखा है कि नेपाल में हिंदी भाषा का साहित्यिक प्रयोग जोशमणि नामक सम्प्रदाय के कवियों से ही हुआ है। और नेपाल में नेपाली एवं हिंदी साहित्य लेखन की शुरुआत नाथ, सिद्ध जोस्मनी सन्त परम्परा से आरम्भ हुआ है। नेपाल में सन्त साहित्य का व्यापक विकास होने के तथ्य उजागर किया है साथ ही माध्यमिक काल और आधुनिक काल के मोतीराम भट्ट, सिद्धिचरण श्रेष्ठ, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा, लेखनाथ पौडेल, ध्रुवचन्द्र गौतम आदि दर्जनों साहित्यकार और हिंदी भाषी बुन्नीलाल सिंह, उषा ठाकुर, संजीता वर्मा, श्वेता दीप्ति आदि का योगदान होने का अनुशीलन है।

भोजपुरी विशेषज्ञ गोपाल अश्क ने "नेपाल में भोजपुरी भाषा और साहित्य" शीर्षक लेख में भोजपुरी भाषा साहित्य की चर्चा की है और इसी तरह अवधी भाषा साहित्य के विद्वान विक्रम मणि त्रिपाठी ने "नेपाल में अवधी भाषा और साहित्य" शीर्षक से अवधि भाषा साहित्य का विकास और विस्तार के बारे में विस्तृत अनुशीलन किया है। शिक्षक मुकेश मिश्र के लेख का नाम है "नेपाल में हिंदी शिक्षण-विद्यालय स्तर"। प्रस्तुत लेख में उन्होंने लिखा है कि नेपाली भारत के बनारस से शिक्षित होकर नेपाल लौटे और प्राप्त हिंदी भाषा के सम्यक ज्ञान को नेपाल में प्रचार प्रसार करते गए। वे आगे लिखते हैं कि हिंदी सिनेमा, सिरियल, गीत तथा संगीत के माध्यम से व्यापक रूप में जनस्तर में प्रचार प्रसार हुआ है और इसे जनता ने स्वीकार किया है। जनस्तर में यदा-कदा ही हिंदी भाषा के ऊपर विवाद देखा जाता है, परन्तु धीरे धीरे उसका निराकरण किया गया। विशेषतः उद्योगपति और भारतीय सरकार के निवेश से नेपाल में 10 सीबीएससी विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई होती है।

हिंदी भाषा साहित्य के प्राध्यापक विनोद कुमार विश्वकर्मा का "नेपाल में हिंदी अध्ययन अनुसन्धान-स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर" नामक शीर्षक का लेख है। उन्होंने बहुत गहन अध्ययन करके प्रमाण सहित प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं कि हिंदी भाषा नेपाली जनजीवन में सदियों से सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्णता प्राप्त करती आ रही है और नेपाल में राणाकाल से ही हिंदी पठन-पाठन आरम्भ हुआ है। पंचायती शासनकाल में विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही स्नातक और स्नातकोत्तर पठन-पाठन का आरम्भ

हुआ है। उन्होंने पाठ्यक्रम, अनुसन्धान तथा प्रकाशन के क्षेत्र में किए गए कार्य को सविस्तार से विवरण सहित प्रस्तुत किया है। साथ ही नेपाल में पठन-पाठन के ऐतिहासिक तथ्यांक की जानकारी दी है एवं शिक्षकों द्वारा हिंदी भाषा साहित्य विकास और विस्तार में पहुँचाए गए योगदान का भी स्पष्ट उल्लेख किया है।

इसी प्रकार से हिंदी भाषा साहित्य की प्राध्यापक डॉ. श्वेता दीप्ति ने "नेपाल में हिंदी पत्रकारिता: स्वरूप और विकास" नामक लेख में लिखा है कि नेपाल में साहित्यिक पत्रकारिता का इतिहास विक्रम सम्वत 1955 में प्रकाशित 'सुधासागर' नामक पत्रिका से हुआ है और हिंदी पत्रिका का प्रारम्भ प्रजातन्त्र के उदय के साथ ही होने का उल्लेख है और नेपाल में हिंदी साहित्यिक पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल दिखता है।

हिंदी संचारकर्मी कंचना झा ने "नेपाल और भारत : अनुवाद का सेतु" नामक शीर्षक से लेख लिखा है। इस लेख में उन्होंने लिखा है कि नेपाल तथा भारत के बीच अनुवाद की भूमिका अहम रही है। अपने इस लेख में लम्बे समय से अनुवाद के क्षेत्र में योगदान पहुँचाते आ रहे विभिन्न विद्वान/विदुषियों द्वारा किए गए कार्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

राजनीतिज्ञ गोपाल ठाकुर ने "नेपाल और हिंदी : राग विराग" नामक लेख में नेपाल में बोली जाने वाली प्रमुख भाषाओं के यथार्थ विवरण के साथ ही हिंदी की अवस्था, इसके प्रयोक्ता, हिंदी भाषा के प्रति नेपालियों द्वारा की जाने वाली उपेक्षापूर्ण अवधारणा तथा इस भाषा की गरिमा और नेपाल में इसके विकास के लिए आवश्यक कार्य का मार्गचित्र प्रस्तुत किया है।

इस कृति के परिशिष्ट में पुस्तकालयकर्मी अंशु कुमारी झा "त्रिभुवन विश्वविद्यालय में विद्यावारिधि उपाधि प्राप्त शोध ग्रन्थ : एक अनुशीलन" नामक लेख में हिंदी केन्द्रीय विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय से विभिन्न विषयों में चार शोधकर्ताओं से सम्पन्न शोध कार्य का अनुशीलन किया गया है। इसी तरह हिंदी भाषा साहित्य की प्राध्यापक मौसमी तिवारी ने "नेपाल में हिंदी साहित्य : कृति और कृतिकार" नामक लेख में नेपाली साहित्य का कालविभाजन अनुसार प्राथमिक, माध्यमिक, आधुनिक काल में हिंदी स्रष्टाओं के सिर्जना कर्म का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। अन्त में हिंदी भाषा साहित्य की

प्राध्यापक डॉ. लक्ष्मी जोशी ने "नेपाल के समकालीन हिंदी लेखक : एक संक्षिप्त विवरण" नामक लेख में नेपाल के हिंदी भाषा के लेखक तथा उनके विभिन्न विधाओं में पहुँचाए गए विशिष्ट योगदान का अनुशीलन किया गया है।

इस कृति के खण्ड दो में 'साहित्य संचयन' शीर्षक के अन्तर्गत प्राचीनकाल से वर्तमान काल तक की कृति संकलित हैं। खण्ड 3 में समय समय पर प्रकाशित अनेक हिंदी संबंधी समाचार समेटे गए हैं और अन्त में पठनीय कृति और लेखों का विवरण भी दिया गया है।

निष्कर्ष

उल्लेखित चर्चा के आधार से यह हिंदी भाषा साहित्य के विभिन्न विज्ञों से नेपाल में हिंदी भाषा साहित्य का विगत से वर्तमान समय तक की अवस्था का छवि चित्र बहुत ही गौरवपूर्ण रहने का निष्कर्ष निकाला जा सकता है। वास्तव में इस क्षेत्र में समर्पित विज्ञों द्वारा मेहनत के साथ तैयार की गई यह पुस्तक एक खोजमूलक बहुउपयोगी कृति के रूप में ली जाएगी। यह कृति हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में नेपाल और भारत के बीच के सम्बन्ध में एक माइलस्टोन के रूप में काम करेगी। ऐसा इस पुस्तक में संकलित रचनाओं से लगता है। यह कृति हिंदी भाषा साहित्य के अध्ययन अनुसन्धान करने वालों के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय सामग्री के रूप में रहने का निश्चित है। इसके साथ ही यह पुस्तक नेपाल और भारत के सदियों से चले आए सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषिक, ऐतिहासिक सम्बन्ध को और अधिक प्रगाढ़ एवं सुदृढ़ बनाने का मार्ग प्रशस्त करेगी ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

इस कृति की ओज और गरिमा को आजीवन हिंदी भाषा साहित्य क्षेत्र में लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान-विदुषियों के खोजमूलक लेखों ने बढ़ाया है। इसमें हिंदी भाषा और साहित्य स्रष्टा के प्रति पूर्ण सम्मान व आदरभाव प्रकट किया गया है। इस पुस्तक ने अग्रजों के प्रति सम्मान और अनुजों के प्रति उत्प्रेरणा जगाने का कार्य किया है। इसमे संकलित सभी रचनाएँ स्वयं में पूर्ण और कृति की गरिमा बढ़ाने के लिए पर्याप्त हैं। परन्तु इसमें विभिन्न समाचार माध्यम में आए समाचारों का समावेश नहीं किया गया होता तो सोने

पर सुहागा होता, ऐसी मेरी मान्यता है। जो भी हो इतनी महत्वपूर्ण कृति की परिकल्पना का सपना साकार हुआ है इसके लिए हमें खुशी मनानी ही चाहिए। अस्तु।

समीक्षा पुस्तक : नेपाल में हिंदी–स्थिति और सम्भावनाएं: विमलेश कान्ति वर्मा व संजीता वर्मा, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली 2024 पृष्ठ 403

समीक्षक : डॉ. फणीन्द्रराज निरौला, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू

अनुवादः नेपाली से हिंदी, डिल्ली राम शर्मा संग्रौला, हिंदी प्राध्यापक, पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू

फणीन्द्रराज निरौला प्रोफ़ेसर, पद्मकन्या परिसर, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल। संपर्क: phniraula@gmail.com

डिल्ली राम शर्मा संग्रौला हिंदी प्राध्यापक, पद्मकन्या परिसर, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल। संपर्क: sdilliram6@gmail.com

विदेश में हिंदी पत्रकारिता

समीक्षक: सोमदत्त शर्मा

'विदेश में हिंदी पत्रकारिता'–डा. जवाहर कर्नावट की अपने किस्म की, अब तक की अकेली पुस्तक है। जिसमें एक ही जगह पर 27 देशों की 120 वर्ष की हिंदी पत्रकारिता के विकास पर प्रकाश डाला गया है। शायद इसीलिये इस पुस्तक को 'लिम्का बुक आफ रिकॉर्ड्स 2023-' में स्थान मिला है।

डॉ. कर्नावट बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। इनकी बहिर्मुख वृत्ति ने इन्हें वैश्विक धरातल पर हिंदी पत्रकारिता को भारतीय पत्रकारिता जगत के सामने लाने के लिये प्रोत्साहित किया है। यद्यपि प्रकटत: उन्होने सन 1999 के लंदन में आयोजित 'विश्व हिंदी सम्मेलन' में शामिल हुए विदेशी प्रतिनिधियों से हुई बातचीत के बाद उत्पन्न हुई जिज्ञासा और प्रेरणा को पुस्तक लेखन के लिये उत्प्रेरक बताया है लेकिन पुस्तक की सामग्री का व्यापक धरातल लेखक की रुचि और प्रेरणा दोनों का परिचायक है।

पुस्तक चार भागों में विभाजित है। पहला भाग गिरमिटिया देशों यथा मॉरीशस, फीज़ी, सूरीनाम, गुआना, दक्षिण अफ्रीका और ट्रिनिडाड- टोबैगो की हिंदी पत्रकारिता से सम्बंधित सामग्री ली गयी है। दूसरा भाग उत्तरी अमरीका और ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप के देशों यानि अमरीका, कनाडा, औस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलेंड की हिंदी पत्रकारिता की सामग्री से भरा है। तीसरे भाग में यूरोप महाद्वीप के ब्रिटेन, नीदरलेंड, जर्मनी, नार्वे, हंगरी, बुल्गारिया और रूस की हिंदी पत्रकारिता सम्बंधी जानकारी से भरा है। जब कि चौथे भाग में एशिया महाद्वीप के जापान, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत, कतर, चीन, तिब्बत, सिंगापुर, म्यांमार, श्रीलंका, थाईलेंड, तथा नेपाल की हिंदी पत्रकारिता से सम्बंधित सामग्री

समाहित है। पुस्तक के अंत में विविध देशों की हिंदी पत्र–पत्रिकाएं उप्लब्ध करवाने वाले महानुभावों और संस्थाओं की जानकारी दी गयी है।

कहने को यह 27 देशों की हिंदी पत्रकारिता की विकास यात्रा का इतिहास है पर इसमें इन देशों में बसे भारतीय मूल के लोगों के सामाजिक, आर्थिक संघर्ष और उनके द्वारा अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को बचाने में आर्यसमाज और आर्य प्रतिनिधि सभा जैसी अनेक सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाओं की भूमिका को भी रेखांकित किया गया है। कनाडा जैसे देश जहां हिंदी पत्रकारिता देर से शुरु हुई वहां के बारे में लेखक ने किन्हीं बंगाली क्रांतिकारी तारकनाथ का जिक्र करते हुए लिखा है कि–

> 'उन्होंने अन्य क्रांतिकारी साथियों के सहयोग से एक एसोसिएशन का गठन किया और एक समाचार पत्र 'आज़ाद भारत' नाम से निकाला। इसका मुख्य उद्येश्य भारतीयों को देश की आज़ादी के लिये संगठित करना था एक तरह से 'आज़ाद भारत' के माध्यम से कनाडा में भारतीयों की पत्रकारिता की शुरुआत हुई।' (पृष्ठ 116)

> हम जानते हैं कि सन 1835 में एग्रीमेंट के आधार पर जो गरीब मजदूर अंग्रेजों द्वारा मॉरीशस, फ़ीजी आदि देशों में ले जाये गये थे उनमें भोजपुरी भाषियों की संख्या अधिक थी पर, इनमें अवधी, बंगाली, तमिल, तेलुगु, मराठी आदि भाषा भाषियों की संख्या भी कम नहीं थी। लेकिन आपसी मेल-मिलाप के लिये भोजपुरी ने सम्पर्क भाषा का स्थान ले लिया था इसलिये भोजपुरी से इतर भाषा भाषी श्रमिकों को भी भोजपुरी सीखनी पड़ी। इस कारण एक नये भारतीय समरस समाज की स्थापना इन देशों में हुई। इस कार्य में इन देशों की तत्कालीन हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं ने बड़ी भूमिका निभायी थी। श्री विजयदत्त श्रीधर जी के शब्दों में कहें तो इन देशों में "प्रतिरोध, असहमति, सूचना, सम्वाद, एकजुटता, जागृति के लिये ज़रूरी सम्वाद–संचार माध्यम के रूप में पत्रकारिता को अपनाया गया।" (प्रस्तावना, पृष्ठ 8)

इन देशों की पत्रकारिता ने तब न केवल भारतीय मूल के लोगों के लिये सम्वाद-संचार का मंच स्थापित किया था बल्कि उनके मध्य में नये वैचारिक माहौल के अतिरिक्त नयी दृष्टि और नये सोच वाले सम्पादक, लेखक और कवियों को भी प्रोत्साहित किया।

पत्रिकाओं में भारत केंद्रित समाचारों के साथ-साथ आर्य समाज जैसी संस्थाओं के उद्देश्य और कार्यों के अलावा लेखकों के लेख, कवितायें तथा निबंध आदि भी छपते थे। इस तरह ये पत्रिकाएं विदेशों में बसे भारतीय मूल के लोगों को भारत से जोड़े रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। इन पत्रिकाओं में भारतीय समाज के स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े समाचार भी प्रकाशित किये जाते थे। अंग्रेजों के खिलाफ भारत में चल रहे स्वतंत्रता संघर्ष और उसमें सभी जाति, धर्म, वर्ग के लोगों की सहभागिता से परिचित कराने का प्रयास भी रहता था। ऐसे समाचार निश्चय ही एक तरफ विदेशों में बसे भारतीय मूल के लोगों के बीच एकता के सूत्र मजबूत करने का काम करते थे तो दूसरी ओर रूढिवादी परम्पराओं और अंधविश्वासों से ऊपर उठकर एक नये समरस भारतीय समाज के निर्माण में भी अपना योगदान देते रहे थे। 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स' के प्रकाशन का एक वर्ष पूरा होने के अवसर पर पत्र के सम्पादक ए. एफ. फोकीर की यह सम्पादकीय टिप्पणी इसकी गवाह है–

> "गत साल में कई एक पुरुषों के चित्तों में अपनी जाति भलाई का शुभ संकल्प उत्पन्न हुआ और बाबू गणेश सिंह अग्रसर हुए। सब जाति हितैषी भाइयों ने इस लोकोपकार में उदारता से दान दिया और 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स' का जन्म हुआ और आज इसको चलते एक वर्ष हुआ एवं आज इसका वार्षिकोत्सव है। बहुत अन्य जाति वाले कहते थे कि हिंदुस्तानी लोग समाचार पत्र नहीं चला सकते हैं। कोई कोई यह भी श्राप दे दिये थे कि यह पत्र दो चार महीने में बंद हो जायगा किंतु हमारे जाति हितैषी ग्राहकों की बडी कृपा सहानुभूति से टाइम्स अपनी एक वर्ष का आयु आज प्राप्त किया।" (पृष्ठ 7)

उन दिनों विदेशों में बसे भारतीयों के लिये अपनी सांस्कृतिक अस्मिता बचाकर रखना बड़ी चुनौती थी। इस चुनौती का सामना करने के लिये जागृत, साहसी और ऊर्जावान समाज के निर्माण में वहां की पत्र–पत्रिकाएं एक मात्र साधन थीं। वहां के जागरूक लोग

इस बात से बखूबी परिचित थे। इसलिये तमाम आर्थिक संकटों से जूझते हुए भी उन्होने ऐसे प्रयास विभिन्न स्तरों पर जारी रखे। भले ही इसके लिये 'दुर्गा' जैसी हस्तलिखित पत्रिका निकालनी पड़ी हो। यद्यपि ऐसी पत्रिकाओं की प्रसार संख्या बहुत अधिक नहीं होती थी परंतु इनमें छपने वाले समाचारों के प्रति ललक के कारण ऐसी पत्रिकाएं एक से दूसरे के हाथ पहुंचतीं थीं। पढ़ी जाती थीं। इनमें छपी सामग्री पर प्रतिक्रियायें भी आती थीं।

इन पत्रिकाओं के अपने 'ध्येय वाक्य' भी होते थे। जैसे मॉरीशस से सन 1909 में 'हिंदुस्तानी' का प्रकाशन शुरु हुआ। प्रारम्भ में यह गुजराती और अंग्रेज़ी में छपती थी। बाद में गुजराती का स्थान हिंदी ने ले लिया। इस पत्रिका के मुख पृष्ठ पर आदर्श वाक्य लिखा होता था–

> "व्यक्ति की स्वतंत्रता, मनुष्य की समानता और जातियों का भाईचारा" (पृष्ठ 4)

ऐसे आदर्श वाक्य उन दिनों की पत्रिकाओं के मुख पृष्ठ पर तब छपते थे जब दुनिया भर में अंग्रेजों, फ्रेंचों, ऑस्ट्रेलियनों और पुर्तगालियों ने जगह-जगह अपने उपनिवेश बनाये हुए थे और इन उपनिवेशों में रहने वाले मूल नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन किया जा रहा था। मनुष्य और मनुष्य के बीच शासक और शासित जैसा भाव था। स्थानीय जातिवाद के कारण उत्पन्न मतभेदों को और बढ़ावा देकर शासक वर्ग अपनी शक्ति में इज़ाफा करने में लगा रहता था। ऐसे में उपनिवेशवासियों के सम्मुख अन्याय, असमानता के विरुद्ध प्रतिकार प्रतिवाद के लिये मानसिकता तैयार करने का काम ये पत्र–पत्रिकायें कर रही थीं।

इस तरह हम देखते हैं कि ये पत्र-पत्रिकायें अपने समय के समाज के प्रति होने वाले अन्याय और अत्याचार के प्रति विरोध और ऐसी स्थिति उत्पन्न करने वाली शक्तियों के साथ न्यायोचित संघर्ष, इस संघर्ष के लिये अपने लोगों को जाग्रत कर एक नये मानसिक धरातल के निर्माण और आपसी मतभेद भुलाकर, एक जुट होकर संघर्ष की प्रेरणा दे रही थीं।

उन दिनों की पत्रकारिता के एक और वैशिष्ट्य की ओर डा. कर्नावट ने दृष्टि डाली है। वे लिखते हैं कि अन्याय और अत्याचार का एक जुट होकर विरोध करते हुए भी

भारतीय मूल के लोगों ने कभी भी उस देश को हानि नहीं पहुंचायी, जहां वे आवासित रहे। बल्कि उस देश के सर्वांगीण विकास के लिये जी तोड़ मेहनत करते रहे। इसी का परिणाम हुआ कि फ़ीजी, मॉरीशस, सूरीनाम जैसे देशों में और अब ब्रिटेन और अमरीका जैसे देशों में भारतीय मूल के लोगों ने एक राजनैतिक शक्ति के रूप में स्वयं को स्थापित कर लिया है।

उत्तरी अमरीका और ऑस्ट्रेलिया के देशों में हिंदी पत्र पत्रिकाओं का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। अमरीका में 'गदर पार्टी' ने 1913 से 'गदर' नाम से साप्ताहिक अख़बार निकाला। 'सीमांतिका' (1984), सौरभ (1991), हिंदी जगत (2000) आदि कनाडा में 1975 में 'भारती' के प्रकाशन से, ऑस्ट्रेलिया में 1991में 'चेतना' के प्रकाशन के साथ आरम्भ हुआ। न्यूजीलैंड में वैसे तो 1921 से भारतीय भाषओं में पत्रिकायें निकलनी शुरु हो गयी थीं। लेकिन वहां पत्रकारिता में हिंदी का समावेश सन 1992 में 'द इंडियन टाइम्स' में रोहित कुमार हैप्पी द्वारा कुछ हिंदी की सामग्री जोड़ने के प्रयास स्वरूप हुआ। लेकिन इस समय तक तकनीक का अधिक विकास हो जाने से पत्रिकाओं के मुद्रण, प्रकाशन और वितरण में तेजी ही नहीं आयी तो उसकी क्वालिटी में भी उत्कृष्टता दिखायी देने लगती है। यही स्थिति यूरोपीय महाद्वीप के देशों की पत्रिकारिता के बारे में भी कही जा सकती है। यद्यपि ब्रिटेन में 1883 से हिंदी की 'हिंदोस्तान' नाम से त्रैमासिकी पत्रिका का प्रकाशन कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह ने सन 1958 में शुरू करा दिया था। इसी तरह ऐशियाई देशों में जापान में जापान–भारत सोसायिटी ने 'इंदो-बुका' नाम से पत्रिका की शुरुआत हो चुकी थी। चीन में भी 1956 से 'आज का चीन' नाम से पत्रिका निकलती रही है। इस तरह लेखक ने 27 देशों की पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो प्रसारण, इंटरनेट आदि के माध्यम से प्रकाशित–प्रचारित होने वाली पत्रिकाओं की जानकारी जुटायी गयी है।

डॉ. कर्नावट ने कहने को तो विदेशों में हिंदी पत्रकारिता के 120 वर्षों की विकास यात्रा को रेखांकित किया है पर यह केवल पत्रकारिता की विकास यात्रा नहीं है बल्कि 27 देशों की पत्रकारिता की विकास यात्रा के बहाने 27 देशों में रहने वाले भारतीयों के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन के अनेक पहलुओं को उद्घाटित किया है। उन देशों के आर्थिक जीवन के विकास में भारतीय मूल के लोगं के योगदान को रेखांकित किया है। ये लोग जिस देश में गये उस देश की मिट्टी को अपने देश की मिट्टी की तरह

प्यार और समर्पण दिया है। भारतीय संस्कार के विरुद्ध जाकर उस देश का अहित करने से स्वयं को बचाया है।

इन अर्थों में पुस्तक अपने किस्म का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। डॉ. विमलेश कांति वर्मा, डॉ. प्रेम जनमेजय, डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण और डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह जैसे विद्वानों ने इन देशों में हिंदी के विकास से लेकर वहां के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के अनेक आयामों पर लेखनी चलायी है किंतु पत्रकारिता जैसे निश्चित विषय को केंद्र में रखकर समूचे समाज को पढने का काम डॉ. कर्नावट ने किया है। निश्चित रूप से यह कार्य निरंतर प्रवास, सम्पर्क और अध्ययन का परिणाम है। लेखक ने 20 वर्ष से अधिक का समय इस काम के लिये दिया है। 27 देशों की यात्रा की है। वहां के राष्ट्रीय अभिलेखागारों को खंगाला है। महत्वपूर्ण विद्वानों से सम्पर्क और सम्वाद किया है। जहां तक सम्भव हुआ है उल्लिखित पत्र-पत्रिकाओं के मुख्य पृष्ठ के फोटोग्राफ़ उपलब्ध कराये हैं। इससे इस कार्य की प्रामाणिकता असंदिग्ध हो जाती है।

जैसा ऊपर बताया गया है कि पुस्तक लेखक केवल प्रिंट मीडिया तक ही सीमित नहीं रहा उसने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के योगदान को भी रेखांकित किया है। लेकिन यह योगदान हिंदी के विकास को ध्यान में रख कर किया गया है। चाहे फिर वह श्रीलंका ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन हो या फिर थाई रेडियो। डॉ. जवाहर कर्नावट ने जहां भी सम्भव हुआ है विषयानुकूल सामग्री को समेटा है। इन सूचनाओं में नेपाल, भूटान, श्रीलंका, म्यांमार, आदि देशों से निकलने वाली हिंदी की स्तरीय पत्र पत्रिकाओं के साथ-साथ तमाम देशों के महत्वपूर्ण हिंदी लेखकों, कवियों, रचनाकारों और उनके काम के बारे में भी सूचनायें समाहित की हैं। इस तरह पुस्तक हिंदी पत्रकारिता का विस्तृत और महत्वपूर्ण दस्तावेज होकर उभरी है। मुझे लगता है ऐसी पुस्तकें अन्य शोधार्थियों और अध्येताओं का तो मार्गदर्शन करती ही हैं बल्कि इस तरह की और सामग्री जुटाने के लिये भी प्रेरित करती हैं। साथ ही भारत सहित विभिन्न देशों के बीच सौहार्द का पुल बनाने का भी काम करती हैं जिस पर विभिन्न क्षेत्रों के विद्वान अपनी अपनी दृष्टि से विचरण दृष्टि करते हुए भारत और भारतीयों के स्वभाव, संस्कार और वैकासिक दृष्टि पर दृष्टिपात कर सकते हैं। लेखक ने पुस्तक के अंत में उन पत्र-पत्रिकाओं, सम्पादकों, पत्रिका के प्रकाशन वर्ष, बंद होने और पुन: प्रकाशन शुरु होने के वर्ष के साथ उनमें प्रकाशित होने वाली सामग्री के

बारे में भी प्रकाश डाला है। पुस्तक के अंत में उन संस्थानों और महानुभावों के बारे में भी सूचना दी गयी है जिन्होने इस कार्य में उसकी सहायता की है।

पद्मश्री विजयधर श्रीधर ने अपनी प्रस्तावना में डॉ. कर्नावट के परिश्रम और दृष्टि की सराहना की है। डॉ. श्रीधर ने स्वयं सप्रे संग्रहालय की भोपाल में स्थापना करके उसमें 5 करोड़ से अधिक पृष्ठों की पत्र-पत्रिकाओं सम्बन्धी शोध सामग्री का संग्रह करके हिंदी पत्रकारिता के ऐतिहासिक अभिलेखों का संग्रह किया है।

समीक्षा पुस्तक : विदेश में हिंदी पत्रकारिता, जवाहर कर्नावट, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली 2024 पृष्ठ 299

समीक्षक: डॉ सोमदत्त शर्मा, प्रख्यात हिंदी साहित्यकार, नई दिल्ली

सोमदत्त शर्मा *वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार, दिल्ली। संपर्क: s88317566@gmail.com*

विश्व हिंदी के भगीरथ [प्रवासी हस्ताक्षर]

समीक्षक: अरुण मिश्र

भाषा और संस्कृति का निकट का सम्बन्ध है -भाषा संस्कृति की संवाहक है। भाषा ही व्यक्ति की अस्मिता का प्रमुख लक्षण भी है।

हिंदी आज विश्व की प्रमुख भाषाओँ में से एक है। दुनिया के अधिकांश देशों में उसकी उपस्थिति अलग अलग रूपों में है। वस्तुतः यह वैविध्य ही उसकी शक्ति है। प्रवासी हिंदी पर होने वाली ज्यादातर चर्चाएँ योरोपीय और अमेरिकी रचनाकारों तक ही सीमित रहती हैं। इस के बाहर का हिंदी भाषा और साहित्य प्रायः इनमें स्थान नहीं पाता। शर्त बंदी प्रथा के अतर्गत विभिन्न देशों में गए भारतवंशियों की हिंदी का गंभीर विश्लेषण कम ही मिलता है।

गिरमिटियों ने अनेक कष्ट और अमानुषिक यातनाएं सहकर अपनी जड़ें उस दूर देश में जमाईं। संघर्ष के उन दिनों में रामचरित मानस और हनुमान चालीसा उनके सम्बल रहे। भारत के विभिन्न हिस्सों से गए इन गिरमिटिया मजदूरों में, बहुतायत हिंदी पट्टी के लोगों की रही। अन्य इलाकों से गए मजदूरों ने भी कालांतर में हिंदी को ही सम्पर्क भाषा के रूप मे अपनाया। हिंदी अपनेपन, भारतीयता और आत्मीयता की पहचान और सम्वाहक दोनों बनी।

लब्धप्रतिष्ठ भाषा वैज्ञानिक, प्रख्यात शिक्षक और वर्षों से हिंदी प्रवासी साहित्य के अध्ययन अनुसन्धान में संलग्न डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा और सुनंदा वर्मा की पुस्तक ‘विश्व हिंदी के भगीरथ’–हिंदी के वैश्विक आयाम का अनुशीलन है। प्रवासी हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा पर कई पुस्तकें डॉ विमलेश कांति वर्मा के नाम हैं।

फ़ीजी, मॉरीशस, सूरीनाम और दक्षिण अफ़्रीका आदि देशों में प्रचलित हिंदी का स्वरूप यूरोपीय और अमेरिकी देशो से अलग है। गिरमिटिया देशों के सामाजिक-सांस्कृतिक, भाषाई प्रभावों के साथ 'इस हिंदी' ने अलग अलग रूप लिए। फ़ीजी में 'फ़ीजी बात' है तो सूरीनाम में 'सरनामी' तथा दक्षिण अफ़्रीका में 'नाटाली'।

विमलेश कान्ति वर्मा ने पुस्तक में 14 हिंदी सेवी विभूतियों का चयन किया है–कथाकार सुब्रमनी, भाषा वैज्ञानिक राजेन्द मेस्त्री, राजनीतिज्ञ बृजलाल, ध्वजवाहक हीरालाल शिवनाथ, पत्रकार नीलम कुमार, रचनाकार बीरसेन जागासिंह, इतिहासकार बृज विलास लाल, आचार्य रामभजन सीताराम, ध्वजवाहक सुनीता नारायण, आचार्य बिसराम राम विलास, प्रशासक आर्य रत्न भुवनदत्त, अनुसंधाता इन्द्राणी राम परसाद, उन्नायक बिरजानंद बदलू 'गरीब भाई'और संस्कृतिकर्मी वीणा लछमन सिंह। इन हिंदी सेवियों में समाज के विभिन्न वर्गों तथा अनेक देशो के लोग सम्मिलित हैं पर इन सबका उद्देश्य एक ही है–हिंदी का प्रचार -प्रसार, संवर्धन एवं नयी पीढ़ी में हिंदी के प्रति रुचि पैदा करना–उससे परिचित करना।

लेखक ने जिनका चयन इस अध्ययन में किया है उसका आधार वे भूमिका में स्पष्ट करते हैं–"मैंने सभी भारतीयों का भारत के प्रति, भारतीय जीवन मूल्यों, भारतीय संस्कृति तथा हिंदी के प्रति अप्रतिम लगाव देखा जिसने मुझे प्रभावित किया" (पृष्ठ 11)। इसी क्रम में आगे वे कहते हैं–"मुझे लगा कि भारत प्रेमियों से" हिंदी पाठकों का परिचय होना चाहिये क्योंकि ये ही हैं जो हिंदी के अपने देश में प्रचारक हैं और हिंदी को अपने देश मे प्रतिष्ठित देखना चाहते है। मुझे तो ये हिंदी के ध्वजवाहक लगे ही, अपने देश में भी वे निष्ठावान कार्यरत प्रतिष्ठित हिंदी सेवी के रूप में जाने जाते हैं।''[13]

निरंतर बदलते और एकरूप होते विश्व में भाषाओं, विशेषकर मातृभाषा एवं स्थानीय भाषाओ के समक्ष गंभीर संकट और चुनौतियां हैं। इन हिंदी सेवियो ने अपने पूर्वजों की भाषा को सहेजने, उसके प्रति सम्मान की भावना और उसे विकसित और जीवंत बनाने में अपना जीवन खपा दिया।

पहचानो तुम न पहचानो, तुम इसे
बेचैन कर रही मेरी हिंदी

काईवीती, चीनी, अंगरेजी हिन्द इसके दीवाने
अब नाचने लगी मेरी हिंदी
तुम मानो या न मानो इसे लेकिन
बनने लगी हर एक की पहचान मेरी हिंदी।।

इन सभी का लक्ष्य डॉ विमलेश कांति वर्मा के शब्दों में–"अपनी इच्छा से हिंदी को अपने देश में, बढ़ाने का कार्य करते हैं और केवल इसलिए क्योंकि वे पूर्वजों की अपनी भाषा, हिंदी को किसी भी कीमत पर अपने देश में लुप्त होने से बचाना चाहते हैं।" उनका मानना है कि भाषा गई तो संस्कृति गई। हिंदी इनके लिए केवल भाषा न होकर अपनी जड़ों से जुड़े रहने, सांस्कृतिक आधार और भारत बोध का पर्याय है।

शताब्दियों पूर्व गए गिरमिटिया परिवारों की पहली पीढ़ी ने कैसे अपनी भाषा और संस्कृति को बचाने के उपाय किये, दूसरी पीढ़ी ने अपनी भाषा के महत्व को समझा और तीसरी पीढ़ी ने कैसे उसको प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न किये। यह पुस्तक गंभीरता और प्रामाणिकता से इसकी पड़ताल करती है।

लेखकों के सामने यह विकल्प था कि वे इन व्यक्तित्वों और कृतित्व पर लेख लिखते अथवा लिखवाते। किन्तु उन्होंने इन हिंदी सेवियों का साक्षत्कार लिया। इन साक्षात्कारों के माध्यम से उनका जीवन, हिंदी सेवा, संघर्ष, देश -समाज, संस्कृति और राजनीति आदि विषयों पर विस्तार से और प्रमाणिक जानकारी मिली है। जो इस विषय को समझने में पाठकों की सहायता करती है।

भाषा एवं लिपि का प्रश्न जटिल है। एक ही भाषा कई लिपियों मे लिखी जा सकतीं है। हिंदी की लिपि देवनागरी है किन्तु प्रवासी साहित्य के कुछ रचनाकार और अध्येता इसे रोमन में लिखते हैं–लिखने के पक्षधर हैं। हिंदी के वैश्विक रूप को देखते हुए इस सन्दर्भ में उदारता बरतनी होगी।

प्रोफ़ेसर सुब्रमनी फ़ीजी के प्रसिद्ध लेखक है और 'फ़ीजी बात' में लिखा 'डऊका पुरान' उनका चर्चित उपन्यास। एक लेखक अपनी भाषा में जितनी सहजता से लिख सकता है, दूसरी भाषा में नहीं। लेखक के शब्दों में–"जो मै अपनी भाषा में लिख सकता हूँ, उतने अधिकार से किसी भी दूसरी भाषा में नहीं, चाहे वह अंग्रेज़ी हो या मानक हिंदी ही क्यों न हो।"

सुनीता नारायण हिंदी के प्रति अपनी भावना को ऐसे व्यक्त करती हैं–

हिंदी मेरी नानी माँ
फ़ीजी मेरी माँ
ऐसी इनकी दोस्ती (पृष्ठ 266)

दुनिया में हिंदी को विस्तार देने में हिंदी फिल्मो की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकताहै। पहले फिल्मों और अब इन्टरनेट ने हिंदी भाषा के प्रति ललक को बढ़ाया है और उसे नए पाठक-श्रोता दिए हैं।

संगीत, विशेषकर लोक संगीत भारतीय संस्कृति में अत्यंत समृद्ध तथा विविधतापूर्ण है। इन देशों में गए पूर्वजों ने अपने संस्कार गीतों को बचाए रखा कालान्तर में यही थाती हिंदी के लिए आकर्षण का कारण भी बनी–

मीठी बोली बोलले बनारस की मैना
उडी उड़ी बैठी सेंदुरवा के ऊपर

चटनी संगीत इन्ही देशों की उपज है जो आज दुनिया भर में लोकप्रियता बटोर रहा है–"चटनी संगीत माता-पिता, नाना-नानी, दादा-दादी की पीढ़ियों को जोड़ता है। उसकी धुन और ताल युवाओं और दिल से जवान" लोग उसके दीवाने हैं।

गिरमिटिया देशो में हिंदी के प्रचार में धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है विशेषकर आरंभिक वर्षो में। इन्होने अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय मूल के लोगों के बीच हिंदी को जीवित रखा। दक्षिण अफ्रीका के विद्वान आचार्य सीताराम रामभजन के शब्दों में "अफ्रीका का हिंदी शिक्षा संघ, हिंदी को बढ़ाने के लिए बना एक राष्ट्रीय संघ है।"

इन प्रयासों का अगला चरण है–हिंदी शिक्षण की औपचरिक व्यवस्था–स्कूल कॉलेज अदि में। इन देशो में हिंदी शिक्ष्ण के कई स्तर और पद्धतियाँ प्रचलित हैं।

हिंदी के विकास के सन्दर्भ इन सभी हिंदी सेवियों की भारत से बहुत अपेक्षाएं हैं। इनमें से कुछ लोगों ने भारत की यात्रा की है और शिक्षा भी प्राप्त की है। भारत उनके लिए विश्व का कोई अन्य देश मात्र न होकर 'पुण्य भूमि' है जो उनके अतीत, वर्तमान

और भविष्य को एक साथ सूत्रबद्ध करता है। भारत जाने के स्वप्न और आकांक्षा प्रत्येक गिरमिटिया के ह्रदय में बसी है और हिंदी उसी ह्रदय और स्वप्न की भाषा है।

पुस्तक डॉ. विमलेश कांति वर्मा एवं सुनंदा वर्मा के वर्षो के परिश्रम का सुफल है। तथ्य संकलन, विश्लेषण और सुंदर सम्पादन पुस्तक की विशेषता है। आशा है अनुसन्धानकर्ताओं को हिंदी के वैश्विक रूप को समझने में यह पुस्तक सहायक होगी।

समीक्षा पुस्तक : विश्व हिंदी के भगीरथ [प्रवासी हस्ताक्षर] विमलेश कान्ति वर्मा व सुनंदा वर्मा, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली 2024 पृष्ठ 312

समीक्षक: डॉ अरुण मिश्र, एसोसिएट प्रोफ़ेसर, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

अरुण मिश्र *एसोसिएट प्रोफ़ेसर, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, संपर्क: karundav@gmail.com*

फ़ीजी हिंदी: हिंदी का विश्व फलक

समीक्षक: हेमांशु सेन

'फ़ीजी हिंदी: हिंदी का विश्व फलक' प्रवासी साहित्य के विशेषज्ञ, हिंदी भाषा और व्याकरण के मूर्धन्य विद्वान प्रोफ़ेसर विमलेश कांति वर्मा की वृहत परिकल्पना -हिंदी का अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य के अंतर्गत प्रकाशित महत्वपूर्ण पुस्तक है। वर्ष 2003 में इस पुस्तक की परिकल्पना की गई। 20 वर्षों के अनवरत अध्ययन, संकलन, विश्लेषण और शोध के पश्चात यह पुस्तक इस रूप और आकार में प्रस्तुत हो सकी है। इस पुस्तक की सह लेखिका प्रख्यात पत्रकार सुनंदा वर्मा हैं। वर्तमान में सिंगापुर में निवास करती हैं। उन्होंने फ़ीजी में रहकर, वहां के परिवेश, संस्कृति और भाषा का गहन अध्ययन, अनुसंधान और विश्लेषण किया है। वैश्वीकरण और वैश्विक गांव की अवधारणा को साकार करने वाले वर्तमान युग में हिंदी भाषा के वैश्विक स्वरूप को निर्मित करने में प्रवासी भारतीयों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से विमलेश जी की हिंदी के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप एवं उसकी भाषिक स्थिति का विश्लेषण करती यह पुस्तक–फ़ीजी हिंदी :हिंदी का विश्व फलक बहुत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है।

फ़ीजी हिंदी, हिंदी का विश्व फलक पुस्तक का प्रकाशन केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से हुआ है। केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक प्रोफ़ेसर सुनील बाबूराव कुलकर्णी ने बहुत सारगर्भित, सुचिंतित एवं सरस आमुख में लगभग 310 पृष्ठों की इस पुस्तक का बीज रूप प्रस्तुत किया है। आज के परिवेश में विदेशी धरती पर हिंदी के व्यवहार और लेखन के संबंध में उनके भावोद्गार सार्थक और उल्लेखनीय हैं। श्री सुनील बाबूराव कुलकर्णी के अनुसार मानव किसी भी देश और काल का हो उसके लिए माँ, मातृभूमि और मातृभाषा का महत्व सबसे अधिक है। माँ उसे जन्म देती है, मातृभूमि उसे अपनत्व और सुरक्षा देती है तथा मातृभाषा उसे अभिव्यक्ति की शक्ति देती है। (पृष्ठ संख्या 3-, आमुख, फ़ीजी हिंदी, (हिंदी का विश्व फलक)

विमलेश जी ने इस पुस्तक में फ़ीजी में व्यवहृत होने वाली फ़ीजी बात अथवा फ़ीजी हिंदी को ही स्थापित करने का प्रयास किया है। फ़ीजी, भारत के अतिरिक्त दुनिया का अकेला ऐसा देश है जहां हिंदी को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। लेखक ने पुस्तक के आमुख में चिंता व्यक्त की है कि अगर विदेशों में प्रचलित हिंदी को उस रूप में स्वीकार न करके उसे मानकीकृत और परिनिष्ठित करने का प्रयास किया जाता रहा तो धीरे-धीरे उसका मूल रूप विलुप्त हो जाएगा। यह कठिनाई सूरीनाम जैसे देश में देखी जा रही है जबकि फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों मुख्यतः प्रोफ़ेसर सुब्रमनी (अंग्रेज़ी भाषा), प्रोफ़ेसर बृज बिलास लाल (इतिहासकार), प्रोफ़ेसर रेमंड पिल्लई (इतिहासकार) हैं, जो हिंदी क्षेत्र में नहीं है बल्कि अलग-अलग क्षेत्र और विषयों के विद्वान है लेकिन फ़ीजी में प्रचलित हिंदी के स्वरूप को सुरक्षित, संरक्षित करने हेतु इस दिशा में अनवरत कार्य और लेखन कर रहे हैं। अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर सुब्रमनी ने डउका पुराण और फ़ीजी माँ जैसे बड़े उपन्यास लिख करके फ़ीजी बात को सुरक्षित करने का एक प्रयास किया है तथा फ़ीजी बात की लोकप्रियता की वकालत की है। लेखक की मान्यता है कि जिस प्रकार भारत में हिंदी की अनेक शैलियों का प्रयोग होता है उसी प्रकार विदेशों में भी हर एक देश और प्रत्येक क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली हिंदी वस्तुत: हिंदी भाषा की एक शैली विशेष है। विमलेश जी के अनुसार–हिंदी में फ़ीजी हिंदी (हिंदी का विश्व फलक, फ़ीजी देश में व्यवहृत होने वाली हिंदी पर) पहला अनुसंधानात्मक कार्य है और आशा की जाती है कि अन्य विदेशी भाषिक शैलियों पर भी भविष्य में कार्य होगा और हिंदी की विश्वव्यापी शक्ति का परिचय भी विश्व को मिलेगा। (पुरोवाक, पृष्ठ संख्या, 10)।

भाषा के विभिन्न रूप स्वरूपों पर विचार करती इस पुस्तक की भाषा सहज, सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। यह पुस्तक गिरमिट मजदूरों के साथ गई हिंदी भाषा की विभिन्न बोली रूपों के, विदेश की धरती पर पुष्पित और पल्लवित होने, उन प्रवासी भारतीयों के संघर्ष की मार्मिक व्यथा कथाओं और संवेदनाओं को संरक्षित और पोषित रखने वाली उनकी महतारी भाषा की मार्मिक दास्तान है।

फ़ीजी हिंदी, हिंदी का विश्व फलक पुस्तक चार खण्डों में विभाजित है। खंड एक में फ़ीजी हिंदी :हिंदी की एक नई विदेशी भाषिक शैली संबंधी विचार-विमर्श है। इस विमर्श के लिए लेखक ने कुल नौ अध्याय लिखे हैं। फ़ीजी मूलत: द्वीपों के समूह का देश है। अध्याय एक–फ़ीजी प्रशांत महासागर में एक लघु भारत में लेखक ने फ़ीजी का भौगोलिक, प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक परिचय दिया है।

द्वितीय अध्याय में लेखक ने फ़ीजी के द्वीपों में बोली जाने वाली संविधान स्वीकृत तीनों भाषाओं–फ़ीजीयन (आई-ताउकेई), फ़ीजी हिंदी (फ़ीजी बात) और अंग्रेज़ी का भाषिक, व्यावहारिक और सांख्यिकीय विवरण दिया है। तीसरे अध्याय में फ़ीजी में भारतीयों के आगमन और फ़ीजी हिंदी का उदय तथा विकास की बात की गई है। इस अध्याय में भारत के विभिन्न क्षेत्रों, जिलों से आए गिरमिटों की संख्या एवं प्रतिशत का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात उनके द्वारा बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं तथा हिंदी की विविध उप भाषाओं की भी संख्या तथा प्रतिशत को दर्शाया गया है। विमलेश जी ने प्रवासी भारतीयों के उस द्वंदको भी अध्याय में उद्घाटित किया है जिसमें वहाँ के प्रवासी भारतीय मानक हिंदी की तुलना में अपनी हिंदी का भ्रंश रूप देखकर उसके मानकीकरण का प्रयास करते हैं। शुद्धिकरण की इस प्रक्रिया में उनकी अपनी भाषा का मूल रूप विलुप्त होता जा रहा है जबकि वास्तविकता यह है की भाषा के मूल रूप में ही इन प्रवासी भारतीयों की आत्मा बसती है, भाव और विचार अधिक गहराई से अभिव्यक्ति पाते हैं। फ़ीजी हिंदी भाषा के सार्थक रूप को स्पष्ट करने के लिए विमलेश जी ने फ़ीजी में प्रचलित कुछ लोक कथाओं को उद्धृत भी किया है। इन लोक कथाओं में भाषा के सहज, सरल और सरल रूप का दर्शन होता है। चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत फ़ीजी हिंदी और मानक हिंदी की की द्वंदात्मक स्थिति (जिससे फ़ीजी के लेखक और प्रवासी भारतीय जूझ रहे हैं) का उद्घाटन किया है। शांतिदूत फ़ीजी का एक अत्यंत लोकप्रिय हिंदी पत्र रहा है। हिंदी पत्र शांतिदूत के एक स्थाई स्तंभ थोड़ा हमारी भी तो सुनो (लेखक श्री तिरलोक तिवारी) के माध्यम से विमलेश जी ने फ़ीजी में फ़ीजी बात की लोकप्रियता को दर्शाया है और उसकी वकालत भी की है। पांचवें अध्याय में लेखक ने फ़ीजी हिंदी के भाषिक स्वरूप का विवेचन किया है। विमलेश जी लिखते हैं कि फ़ीजी बात या फ़ीजी हिंदी ना तो शुद्ध भोजपुरी है और ना ही शुद्ध अवधी। वह हिंदी की एक नई विकसित भाषिक शैली है (पृष्ठ 29)। फ़ीजी हिंदी की ध्वनियों, शब्द भंडार, वाक्य विचार, लिपि पर विचार करते हुए लेखक विमलेश कांति वर्मा जी ने फ़ीजी की हिंदी और हिंदी के तुलनात्मक स्वरूप को स्पष्ट किया है और कुछ शब्दों की सूची भी प्रस्तुत की है। अध्याय 6 के अंतर्गत लेखक ने फ़ीजी में रचित हिंदी साहित्य और लेखन का विवरण दिया है तथा हिंदी में लेखन करने वाले रचनाकारों प्रोफ़ेसर सुब्रमनी, प्रोफ़ेसर रेमंड पिल्लई, प्रोफ़ेसर बृज बिलास लाल, महेश चंद्र शर्मा, विनोद बाबूराम शर्मा, करुणा नायर, कुशाल सिंह, अमरजीत कौर, विवेकानंद शर्मा, रेजिना नायडू, नरेश चंद का उल्लेख किया है। आठवें अध्याय फ़ीजी हिंदी :अध्ययन और अनुसंधान का संदर्भ के अंतर्गत विमलेश कांति वर्मा ने फ़ीजी भाषा

पर शोधपरक पुस्तकों, फ़ीजी तथा अन्य प्रवासी देश में रचित हिंदी साहित्य की पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय दिया है। अध्याय 9 में फ़ीजी हिंदी के संरक्षण और संवर्धन में लेखक में फ़ीजी बात के मूलभूत स्वरूप को सुरक्षित और संरक्षित करने की समस्या पर विचार-विमर्श किया है।

वस्तुतः पुस्तक का प्रथम खंड फ़ीजी देश का संपूर्ण साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिदृश्य का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करता है। इस खंड में लेखक ने फ़ीजी में व्यवहृत होने वाली हिंदी भाषा के रूप-स्वरूप और उसमें रचित साहित्य का परिचय दिया है, साथ ही उसके संरक्षण और संवर्धन संबंधी अपने विचारों को प्रस्तुत किया है।

पुस्तक के द्वितीय खंड में विमलेश कांति वर्मा ने फ़ीजी में रचित हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण रचनाओं के कुछ अंशों का संकलन प्रस्तुत किया है। विमलेश जी ने साहित्य संचयन खंड को गद्य और पद्य दो भागों में विभक्त किया है। पद्य खंड के अंतर्गत फ़ीजी में प्रचलित गिरमिट गीत तथा वहां के प्रख्यात रचनाकारों अमरजीत कौर, करुणा नागरन नायर, कुशल सिंह, नरेश चन्द, रेजीना नायडू, सरिता देवी चंद की कविताओं को संकलित किया है। गद्य खंड में कुशल सिंह, बृज बिलास लाल, बाबूराम शर्मा, महेश चंद्र शर्मा 'विनोद', रेमंड पिल्लई, विवेकानंद शर्मा, सुब्रमनी की महत्वपूर्ण रचनाओं से कुछ अंशों का संकलन प्रस्तुत किया है। यह खंड इस दृष्टि से अत्यंत उल्लेखनीय बन पड़ा है कि इन रचनाओं के माध्यम से फ़ीजी बात (फ़ीजी हिंदी) का मूल स्वरूप सुरक्षित और संरक्षित हो रहा है। फ़ीजी हिंदी में लेखन करने वाले रचनाकार देवनागरी लिपि तथा रोमन लिपि, दोनों लिपियों में रचना करते हैं।

पुस्तक फ़ीजी हिंदी के तृतीय खंड में वर्मा जी ने फ़ीजी हिंदी में लेखन करने वाले तथा उसकी संरक्षण में प्रयासरत फ़ीजी के रचनाकारों विशेष रूप से प्रोफ़ेसर सुब्रमनी, प्रोफ़ेसर बृज बिलास लाल, सुश्री सुनीता नारायण, सुश्री सुभाषिनी लता कुमार, पंडित भुवन दत्त, सुश्री नीलम कुमार और डॉक्टर बृजलाल के साक्षात्कार प्रस्तुत किए हैं। इन साक्षात्कारों के माध्यम से फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों की उस उत्कट भावना और संवेदना को भी उद्घाटित किया है कि यह विद्वान प्रवासी भारतीय किसी भी क्षेत्र में कार्यरत क्यों न हो परंतु अपनी मूल भाषा, अपनी बानी को सुरक्षित और संरक्षित करना चाहते हैं। इसलिए फ़ीजी हिंदी में सार्थक लेखन कर उसको सुरक्षित और संरक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं।

पुस्तक के चतुर्थ खंड को लेखक ने दस्तावेज नाम दिया है। इस खंड में प्रेस कतरने, फ़ीजी हिंदी के प्रसंग, लघु लेख आदि का संकलन किया गया है। यह पुस्तक फ़ीजी हिंदी बोलने, समझने, रचने वालों के भाव, मन और लेखन पर प्रकाश डालने तथा फ़ीजी हिंदी के भाषिक वैशिष्ट्य का उद्घाटन करने में सक्षम है। पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह फ़ीजी हिंदी के रचनाकारों के विचारों को उद्घाटित करती है। उन के साक्षात्कारों के माध्यम से उनकी अभिलाषा को अभिव्यक्त करती है। यह पुस्तक प्रथम प्रामाणिक तथ्य के रूप में सामने आती है तथा वैश्विक हिंदी की परिकल्पना को साकार करने वाली दृष्टि रखती है। फ़ीजी में प्रचलित हिंदी को विमलेश जी ने हिंदी की एक शैली विशेष के रूप में देखा है। विमलेश जी के शब्दों में ही उनकी इस पुस्तक की उपादेयता को रेखांकित करते हुए लिखा जा सकता है कि "आज हमें यह समझना चाहिए कि विश्व की अनेक भाषाएं लुप्त होने के कगार पर हैं। हमारी प्रोत्साहन और प्रश्रय के अभाव में त्रिनिदाद में हिंदी लुप्त हो गई, गुयाना में हिंदी लुप्त हो गई, दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी लुप्त होने के कगार पर है। मॉरीशस में हिंदी का स्थान धीरे-धीरे क्रियोली लेती जा रही है। यही स्थिति फ़ीजी और सूरीनाम में भी होगी यदि समय रहते हमने इन हिंदी के विविध रूपों पर ध्यान नहीं दिया। हम जानते हैं कि भाषा मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं होती वह एक समाज की संस्कृति का दर्पण भी होती है। संस्कृति की रक्षा यदि हम चाहते हैं तो उस भाषा की रक्षा भी उतनी ही आवश्यक है जिसमें उसकी संस्कृति प्रतिबिंबित होती है।

भारत सरकार हिंदी को एक विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहती है और यह तभी संभव होगा जब हम प्रवासी भारतीयों की अपनी भाषा जिसे वे 'महतारी भाषा' कहते हैं उसके संरक्षण और संवर्धन का हम प्रयत्न करेंगे। फ़ीजी की यूनिवर्सिटी ऑफ़ साउथ पेसिफ़िक के अंग्रेज़ी विभाग के प्रोफ़ेसर और प्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकार प्रोफ़ेसर सुब्रमनी अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि यदि फ़ीजी हिंदी लुप्त होती है तो प्रवासी संस्कृति के लुप्त होने का भी खतरा है और यह भाषा लोप का खतरा आज फ़ीजी बात, सरनामी तथा नेटाली सभी पर मंडरा रहा है।

यदि भारत चाहता है कि हिंदी वैश्विक स्तर पर महत्वपूर्ण भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो तो इन भाषा रूपों को पुष्ट करना होगा और इनकी रचनात्मक निधियो को मान्यता देनी होगी, उनके विकास और प्रसार के उपाय खोजने होंगे। वैश्विक हिंदी के संदर्भ में आज सबसे बड़ी चुनौती हिंदी की इन शैलियों को लुप्त होने से बचाना तथा उनके संरक्षण और संवर्धन का प्रयत्न है।

वस्तुत: विमलेश कांति वर्मा और सुनंदा वर्मा द्वारा लिखित फ़ीजी हिंदी, हिंदी का विश्व फलक पुस्तक वर्तमान समय में वैश्विक हिंदी की मूलभूत समस्या पर सार्थक विचार प्रस्तुत करती है। इसमें संदेह नहीं कि वैश्विक परिदृश्य में हिंदी के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को निर्मित, सुरक्षित और संरक्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि हम विश्व के अलग-अलग देश में प्रयुक्त होने वाली हिंदी की अलग शैलियों को समझें, स्वीकार करें और उसकी स्वीकृति भी दें अन्यथा हिंदी के परिनिष्ठित और परिमार्जित रूप के समानांतर मानकीकरण करने की प्रक्रिया में हिंदी की इन विदेशी भाषिक शैलियों का संरक्षण नहीं हो पाएगा। जिस प्रकार भारत में हिंदी की विभिन्न शैलियाँ, विभिन्न उप भाषायें और बोली वर्ग हिंदी में समाहित हैं। अपनी मूलभूत प्रवृत्ति को सुरक्षित रखते हुए वे हिंदी भाषा की अभिन्न अंग हैं, ठीक उसी प्रकार वैश्विक परिदृश्य में इन समस्त विदेशी बोली रूपों को स्वीकार करते हुए, हमें इन्हें हिंदी भाषा के साथ जोड़कर देखना चाहिए। भारत की नई शिक्षा नीति, 2020 भाषा के मातृभाषा रूप को सुरक्षित, संरक्षित, विकसित तथा व्यवहार करने की प्रक्रिया पर विशेष बल देती है। मातृभाषा के उन्नयन और विकास की परिकल्पना करने वाल नई शिक्षा नीति 2020 के दौर में विभिन्न देशों में प्रचलित हिंदी के मूल रूप को सुरक्षित रखने की कामना करती यह पुस्तक और भी प्रासंगिक हो जाती है।

समीक्षा पुस्तक : फ़ीजी हिंदी: हिंदी का विश्व फलक, विमलेश कान्ति वर्मा व सुनन्दा वर्मा, केंद्रीय हिंदी संस्थान (शिक्षा मंत्रालय), आगरा 2023 पृष्ठ 304

समीक्षक : डॉ. हेमांशु सेन, प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

हेमांशु सेन *प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश। संपर्क: drhemanshusen@gmail.com*

फ़ीजी का हिंदी साहित्य–एक संचयन

समीक्षक: शोभना देवी

मनुष्य की मातृ भाषा उनकी पहचान बनतीं है। साथ में देश की प्रगति में भाषा एक अच्छी भूमिका निभाती है। फ़ीजी देश बहुजातीय देश है। 'फ़ीजी का हिंदी साहित्य- एक संचयन' ज्ञान लघु कथाओं और कविताओं का संकलन है, जिसका संपादन सुभाषिनी कुमार, श्यामला कुसुम चंद और रोहिणी कुमार ने किया है। पुस्तक में फ़ीजी द्वीप समूह से हिंदी में साहित्यिक कृतियों को शामिल किया गया है। कई स्थानीय लेखकों की रचनाएं एवं उनकी कलम की ताकत को एक ही पुस्तक में पिरोया गया है।

साहित्य लेखन एक अच्छा विचार है। लिखने के कई कारण हैं। लेखक अपने विचारों को अन्य लोगों तक पहुँचाते हैं और उनसे बात करते हैं। विभिन्न प्रकार के लेखकों में एक बात समान है; वे सभी आने वाली कठिनाइयों के बावजूद लेखन की प्रक्रिया का आनंद लेते हैं। कई लोग अपनी भावनाओं को व्यक्त करके अपने लेखन को कागज पर उतारते हैं और आनंद लेते हैं।

सुभाषिनी कुमार ने अपने सहायकों श्रीमती श्यामला कुसुम चंद तथा रोहिणी कुमार के साथ मिलकर स्थानीय लेखकों के साहित्य को ऐसा मंच दिया और उन्हीं की बदौलत हमारे हिंदी प्रेमियों का सपना साकार हुआ है। इस तरह हमारे देश में जो हिंदी को लेकर लोगों की सोच है, वह बदल सकती है। इस बदलती दुनिया में, हिंदी भाषा को हेय की दृष्टि से देखा जाता है क्योंकि इसका ज्ञान जीविकोपार्जन नहीं करेगा। लोगों का ऐसा मानना है कि हिंदी को बढ़ावा देना समझदारी नहीं होगी क्योंकि फ़ीजी में, सांस्कृतिक और धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने के अलावा इसका ज़्यादा उपयोग नहीं है। परन्तु ऐसे मंच पर 'फ़ीजी का हिंदी साहित्य–एक संचयन' का विमोचन होना बड़े ही गर्व की बात है जब

12वां विश्व हिंदी सम्मेलन फ़ीजी में आयोजित हुआ था। इतने सारे लोगों की उपस्थिति में, इस प्रकाशित पुस्तक ने अन्य साहित्य लेखकों के लिए दरवाज़े खोल दिए हैं जिन्होंने सोचा था कि उनके लेखन पर किसी का ध्यान नहीं जाएगा।

'फ़ीजी का हिंदी साहित्य-एक संचयन' पुस्तक में कुल मिलाकर 6 भाग हैं। पहला खंड विभिन्न लेखकों की 13 लघु कथाओं से बना है। कुछ कहानियां जीवन संबंधित तो कुछ काल्पनिक है जो बहुत ही प्रेरणादायक है। इन में आदर्श व यथार्थ की झलकियां मिलती हैं इन में कहानी के विशेष सभी विधाएँ हैं।

दूसरे खंड में 33 अलग-अलग कविताओं को डालकर पाठकों को रसास्वादन करवाया है। फ़ीजी के उभरते कवियों ने सरल हिंदी मे अपनी कविताओं को रचा है जो पढ़नेवाले को समझने में मुश्किलों का सामना न करना पड़े। वे रिश्ते, देश की स्थिति एवं सुंदरता जैसे विषयों को भांपते हुए अपनी भावनायें प्रकट की हैं।

तीसरे खंड में तीन एकांकी शामिल हैं। इस किताब में नाटक अच्छी तरह से प्रस्तुत किए गए हैं और इस वर्तमान युग मे बच्चों का अपने माता-पिता के साथ व्यवहार, विदेशों के बारे में लोगों के विचारों और निश्चित रूप से इस भूमि पर अंग्रेज़ों द्वारा गिरमिटिया मजदूरों के कष्टों को दर्शाता है।

चौथे खंड में फ़ीजी के प्रसिद्ध लेखकों की जीवनी शामिल हैं जैसे तोताराम सनाढ्य, पंडित अमिचंद्र विद्यालंकार, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, श्री जोगिन्दर सिंह कंवल, श्री विवेकानन्द शर्मा, श्रीमती अमरजीत कौर तथा प्रोफ़ेसर सुब्रमनी। इस में उन सुविख्यात लेखकों की जीवनी शामिल हैं जिन्होंने हिंदी के प्रति योगदान दिया है और जीवित रखा है।

जबकि पहले के चार भाग मानक हिंदी में हैं तो वहीं पांचवां भाग 'फ़ीजी हिंदी' का साहित्य हैं जिनमे 8 कहानियाँ, एक नाटक तथा पांच कविताएँ हैं। फ़ीजी हिंदी, जिसे 'फ़ीजी बात' के नाम से जाना जाता है, एक रत्न है जो पीढ़ियों से भारतीय गिरमिटिया मज़दूर प्रणाली में जड़ों के साथ संरक्षित है। हालांकि भाषा का एक दर्दनाक अतीत है, यह भारतीय मजदूरों के तप का एक वसीयतनामा है जिन्हें 19वीं शताब्दी के अंत मे फ़ीजी लाया गया था। आज, फ़ीजी हिंदी का विकास दुनिया भर मे इंडो-फ़ीजीयन समुदाय को एकजुट करता है। जबकि यह एक बोली जाने वाली भाषा है, कुछ लेखकों ने साहित्य में फ़ीजी हिंदी का उपयोग करना शुरू कर दिया है। फ़ीजी हिंदी इंडो फ़ीजीयन के बीच की

एक आम भाषा के रूप में कार्य करती है, फ़ीजी में विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों में बोलियों में भिन्नता हैं। ये बोलियां ऐतिहासिक कारकों, स्थानीय प्रभावों और व्यक्तिगत पृष्ठभूमि के कारण विकसित हुई हैं। इसलिए, जबकि एक साझा आधार है, आपको उच्चारण, शब्दावली और अभिव्यक्तियों में कुछ अन्तर मिलेंगे। मानक हिंदी और फ़ीजी हिंदी को साहित्य में साथ नहीं रखना चाहिए। जब मानक हिंदी में साहित्य को पढ़ेंगे, तभी अपनी बोलचाल में वृद्धि ला पाएंगे। पाठकों को फ़ीजी हिंदी में लेखन देने से पाठक पीछे ही रहेंगे और मानक हिंदी में प्रगति नहीं करेंगे। मेरा मानना है कि हमें आगे बढ़ना चाहिए ताकि बोलचाल में प्रगतिशील बने रहें।

साहित्य एक कला, विज्ञान या अन्य व्यवसाय के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें लेखन की आवश्यकता होती है। एक लेखक, एक कहानी या उपन्यास इस इरादे से लिखता है कि इसे किसी के द्वारा पढ़ा जाए। जैसे कि कोई किताब या पत्रिका का लेख। भारतीय साहित्यकारों के अनुसार साहित्य की परिभाषा विभिन्न हो सकती हैं: प्रेमचंद के अनुसार, साहित्य जीवन की आलोचना है। बालकृष्ण भट्ट के अनुसार, साहित्य जनता समूह के हृदय का विकास है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, साहित्य ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम है।

फ़ीजी में फ़ीजी हिंदी और मानक हिंदी के उपयोग में सामाजिक संचार और शिक्षा दोनों के लिए निहितार्थ है। इनके परिणाम कुछ ऐसे हैं: फ़ीजी हिंदी को सामाजिक सेटिंग्स में पसन्द किया जाता है जिसके लिए अनौपचारिक संचार की आवश्यकता होती है। य़ह रोजमर्रा की बातचीत के लिए इंडो-फ़ीजीयन के बीच एक आम भाषा के रूप में कार्य करता है। दूसरी ओर मानक हिंदी को औपचारिक सेटिंग्स में पसंद किया जाता है, जैसे कि शैक्षणिक संस्थान या आधिकारिक सन्दर्भ। फ़ीजी हिंदी स्थानीय वातावरण के अनुकूल बनाया गया है, अंग्रेज़ी और स्वदेशी भाषाओं से शब्द उधार लिए हैं। फ़ीजी हिंदी के लिए विशिष्ट अद्वितीय शब्द उभरे हैं। प्रारंभ में “फ़ीजी बात”, “फ़ीजी टॉक” के रूप में जाना जाता था, य़ह कई इंडो-फ़ीजीयन के लिए पहली भाषा बन गई है, जो उनकी सांस्कृतिक पहचान को दर्शाती है। इसलिए मुझे लगता है कि फ़ीजी हिंदी सिर्फ़ अनौपचारिक बातचीत के लिए होना चाहिए न कि साहित्य के रूप में।

अंतिम भाग में फ़ीजी की लोक-कृतियां जैसे बिरहा, होली गीत, गिरमिट गाथा, चौताल, झूमर, बिदेसिया, लोरी, विवाह गीत और सोहर शामिल हैं जो हमारे पूर्वजों

के कष्ट भरे दिनों की याद दिलाती हैं। अंत में लोक द्वारा रचित एवं लिखे गए गीत जो प्राचीनकाल से लेकर आज तक निरंतर चले आ रहे हैं। यह गीत पूरे लोक समाज द्वारा अपनाए जाते है। इनके गीतों को विभिन्न अवसरों पर बड़े मधुर राग से गाया जाता है।

अंत में यही कहूँगी कि स्थानीय लेखकों के लिए दरवाज़े खोल दिए हैं सुभाषिनी जी ने। अपने सहायकों श्रीमती श्यामला कुसुम चंद तथा रोहिणी कुमार के साथ मिलकर ऐसी पुस्तक में उनके लेखन को डालकर। उम्मीद है ऐसी प्रक्रिया यूं ही चलती रहेगी।

समीक्षा पुस्तक : फ़ीजी का हिंदी साहित्य-एक संचयन, सुभाषिनी कुमार, श्यामला चंद और रोहिणी कुमार, पी. टी सी प्रेस, 2023 पृष्ठ 322

समीक्षक: शोभना देवी, प्राध्यापक, यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ीजी, लौटोका परिसर, फ़ीजी।

शोभना देवी *प्राध्यापक, यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ीजी, लौटोका परिसर, फ़ीजी। संपर्क: shobhnad@unifiji.ac.fj*

गिरमिटिया महाकाव्य

समीक्षक: राजेश कुमार 'माँझी'

हम सभी जानते हैं कि बीसवीं सदी में अनेक भारतीय लोगों को कैरेबियन देशों अर्थात् फिज़ी, मॉरीशस, सूरिनाम, गुयाना, ट्रिनिडाड आदि देशों में शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत भारत के विभिन्न हिस्सों और विशेषकर बिहार और उत्तर-प्रदेश से बहला-फुसलाकर ले जाया गया जिन्हें गिरमिटिया मज़दूर के नाम से जाना जाता है। वे गिरमिटिया मजदूर सशरीर भले ही विदेशों में रहे परंतु उनका मन सदैव भारत की सभ्यता- संस्कृति, रीति-रिवाज, भाषा-बोली, धर्म-आस्था आदि के इर्द-गिर्द ही घूमता रहा। इसी कारण कुछ प्रवासी भारतीयों में साहित्य सृजन की तीव्र इच्छा जागृत हुई होगी और इसी कारण आज हम देखते हैं कि ज़्यादातर हिंदी के प्रवासी साहित्यकार चाहे वह अभिमन्यु अनत हों, कल्पना लालजी हों, राज हीरामन हों, स्नेह ठाकुर हों, तेजेन्द्र शर्मा हों, पूर्णिमा बर्मन हों, या कोई और प्रवासी साहित्यकार, उन सभी लोगों का ज्यादातर साहित्य भारत की सभ्यता-संस्कृति, रीति-रिवाज, परंपरा आदि का बखान करता है।

कल्पना लालजी की प्रस्तुत रचना "गिरमिटिया महाकाव्य" भारतीय प्रवासी किसानों और श्रमिकों के अनजान एवं सुदूर देश में आगमन की पीड़ा, जिजीविषा के लिए संघर्ष, विषम परिस्थितियों में अपनी भाषा-बोली, सभ्यता-संस्कृति, रीति-रिवाज, आस्था-धर्म आदि को संरक्षित रखने की लयबद्ध गाथा है। इसमें भारतीय सभ्यता-संस्कृति, भाषा-बोली, रीति-रिवाज़ आदि के संरक्षण और संवर्धन का भरसक प्रयास किया गया है जिसके लिए कल्पना लाल जी बधाई की पात्र हैं। साहित्य सृजन का आपका मूल क्षेत्र कविता है जिसकी सृजन प्रक्रिया पूरी तरह से भावात्मक है। विशुद्ध रूप से भारतीय सभ्यता-संस्कृति, भाषा-बोली, रीति-रिवाज़, परिधान, भोजन आदि की पोशाक होने के कारण कल्पना लालजी की समस्त काव्य-कृतियाँ इस प्रभाव से परिपोषित हैं। आप

एक अत्यंत संवेदनशील रचनाकार हैं जिनकी कृतियों में दोनों देशों अर्थात भारत और मॉरीशस की मनभावन खुशबू रहती है। आपकी रचनाओं का फ़लक बहुत ही व्यापक है।

कल्पना लालजी द्वारा रचित "गिरमिटिया महाकाव्य" अनुभूति से परिपूर्ण है जिसमें भाषिक परिकल्पना और शिल्पगत कौशल देखते ही बनता है जिसके आधार पर यह कृति एक नई ऊंचाई छू रही है। "गिरमिटिया महाकाव्य" की सरलता और भाव-प्रवणता का गुण सभी पाठकों को आकर्षित करने वाला है। कल्पना लालजी का "गिरमिटिया महाकाव्य" भावानुवाद और काव्यानुवाद का श्रेष्ठतम उदाहरण है जहाँ कवयित्री ने स्रोत-ग्रंथ (लाल पसीना) के भावों को शत-प्रतिशत काव्यात्मक रूप प्रदान करने का सराहनीय कार्य किया है। कुल मिलकर इस रचना में आशा की किरणें हैं, खुशी के गीत हैं, संघर्ष की खरोंचें हैं, विषम परिस्थितियों एवं सामाजिक व्यवहारों के प्रति आक्रोश और विद्रोह के स्वर हैं, अपनी जड़ों से दूर होकर अर्थात भारत से दूर होकर भी भारत से जुड़े रहने का अहसास है तथा साथ ही इस कृति में दु:ख और निराशा की झलक भी मौजूद है।

कल्पना लालजी का "गिरमिटिया महाकाव्य" दो खंडों में रचित महाकाव्य है जिसके पहले खंड में कुल छत्तीस और दूसरे खंड में कुल तैंतीस सर्ग हैं। इसकी खासियत यह भी है कि प्रत्येक सर्ग के पूर्व उसका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। जहां पहला खंड मॉरीशस की उत्पत्ति/खोज के बारे में है वहीं दूसरे खंड में गिरमिटिया मजदूरों की दयनीय स्थिति का बहुत ही मार्मिक वर्णन संवेदनशील कवयित्री द्वारा किया गया है और पूरे महाकाव्य में भारतीय सभ्यता-संस्कृति, भाषा-बोली, पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज, धर्म-आस्था, परंपरा, खानपान एवं परिधान के बिंब सबको आकर्षित कर रहे हैं। तो आइए "गिरमिटिया महाकाव्य" में स्वतः रूपायित कुछ महत्वपूर्ण बिंब चित्रों को जानने-समझने का प्रयास करते हैं।

इस महाकाव्य के पहले खंड के पहले सर्ग में ही भारतीय जीवन-मूल्य और ज्ञान-परंपरा का उल्लेख करते हुए कल्पना जी लिखती हैं –

बहुजन हिताय बहुजन सुखाये, बुद्धम शरणम का गूँजे शोर।
राह कठिन थी जल चहुं ओर, दूर अभी थी उनकी भोर ॥

भारत के बिहार प्रांत की चर्चा और साथ ही अहीर जाति के लोगों द्वारा गाए जाने वाले बिरहा गीत का वर्णन करते हुए कवयित्री दूसरे सर्ग में लिखती हैं–

आई याद बिहार की शाम, बिरहा सुन लौटा था घर।
मकई बिन पूछे क्या तोड़ी, अब तक पीट रहा था सर ॥

इस सर्ग में भारत का परिवेश बोध कुछ इस प्रकार झलकता है जहां पर भारत जैसे रीति –रिवाज और काली माँ के स्थान का उल्लेख आया है –

झोपड़ियाँ भी एकदम वैसी, वैसे ही हैं रीत-रिवाज।
है काली माई का चौंतरा भी, वैसे ही हैं घर के काज ॥

सर्ग संख्या तीन में भारत में बनाए जाने वाले मकई के भात का वर्णन निम्नानुसार किया गया है जहां हम यह भी देखते हैं कि किस प्रकार गिरमिटिया मजदूरों के लिए बीमार होने पर उपचार की कोई सुविधा नहीं थी–

भात मकई का वह पचा न पाता, रातों को तड़पता था।
न कोई पूछने वाला था, न दवाई से कोई नाता था ॥

सर्ग संख्या पाँच में रामायण और महाभारत के पात्रों के जिक्र किया गया है जो भारतीय परिवेश का बोध कराते हैं। रामायण और महाभारत के पात्रों का जिक्र इस प्रकार आया है–

मूछों वाले को मामा कंस, कहकर सभी बुलाते थे।
जरासंध था दुःशासन था, कुम्भकरण विभीषण भी थे ॥

इसी सर्ग में भारत के कुछ एक लोगों द्वारा धारण किए जाने वाले ताबीज़ का वर्णन देखने को मिल रहा है और साथ ही यह भी देखने को मिल रहा है कि किस प्रकार गिरमिटिया मजदूरों पर कोड़े बरसाए जाते थे एवं उन्हें यातना दी जाती थी–

ताबीज़ वीर हनुमान का, था उसके गले का हार।
खाता रहा कोड़े मगर, निकालने से किया इंकार ॥

सर्ग संख्या आठ में भारतीय परिधान का उल्लेख निम्नानुसार आया है और यहाँ यह भी देखने को मिलता है कि किस प्रकार गिरमिटिया मजदूरों को गन्ने के खेतों में कठिन परिश्रम करना पड़ता थी मॉरीशस जैसे अनजाने देश में–

ईख के पैने पत्तों ने, खून से लथपथ किया शरीर।
धोती और अंगोछे तक में, चुभते हों जैसे शहतीर ॥

अगले सर्ग में भारतीय परिवेश बोध का वर्णन अनाज को साफ करने वाले सूप, छत की ओरी और चावल के टुकड़े जिसे भोजपुरी प्रदेश में खुद्दी कहा जाता है आदि के द्वारा कवयित्री द्वारा सुंदर ढंग से इस प्रकार किया गया है–

शाम ढलते ही ओरी तले, महिलाएं वहीं बैठ जाती थीं।
खुद्दियों को फटक कर, स्वयं ही चावल भी बिनवाती थीं ॥
........चावल सूप में बीनती ....।

खंड एक के नवम सर्ग में ही हम यह भी देखते हैं कि किस प्रकार गोदना भारतीय महिलाओं में प्रसिद्ध था जो गिरमिटियों संग गिरमिटिया देशों तक जा पहुंचा। इसी सर्ग में इस बात का उल्लेख किया गया है कि भारतीय समाज में और खास तौर से भोजपुरी क्षेत्र में गाय के गोबर से घर की लिपाई की जाती थी और गोबर से घर लीपने की प्रथा दूर देश में जा पहुंची। भोजपुरी के प्रयोग से भी भारतीय परिवेश का बोध यहाँ हो रहा है और साथ ही भारतीय सभ्यता-संस्कृति का परिचय हो रहा है–

गोदना भी उन दिनों, महिलाओं में चर्चित था।
"आज गोदना गोदाऊँगी', संध्या का मन हर्षित था॥

x x x

गोबर से घर लीपती, फूलवन्ती नखरे से बोली।
"आज काम बहुते बाटे", कल पर उनसे बात टाली॥

खंड एक के दसवें सर्ग में बिरहा गाने का उल्लेख निम्नानुसार हुआ है और साथ ही भोजपुरी प्रदेश में बाँस से बनाए जाने वाले सूप–दौरी का सुंदर चित्रण किया गया जो भारतीय परिवेश का बोध करा रहा है–

नौजवान गाँव के सब, अब देव ननन के साथ थे।
रात रात भर बिरहा गाते, उसका दायाँ हाथ थे॥

x x x

जौने बजे बाँस बांसुरी, तौने ही बाँस सूपहू दौरी॥

खंड एक के तेरहवें सर्ग में भारतीय लोक-आस्था का दर्शन देखते ही बनता है जब कवयित्री कल्पना लालजी लिखती हैं–

चमक रहे थे सूर्य देवता, अपनी पूरी शक्ति से।
इन्द्रदेव से करें विनय, बरसों घन पूरी भक्ति से॥

सोलहवें सर्ग में भारतीय मुहावरे का निम्नानुसार प्रयोग भारतीय परिवेश का बोध करा रहा है–

.........पानी में रह ई लईका, मगरमच्छ संग बैर खोजता।

इसके आगे सत्रहवें सर्ग में भारत का सुंदर चित्र उकेरा गया है जहां बरगद-पीपल की छांव, मकई और सत्तू पीसने का उल्लेख और जतसारी गीत गाने का वर्णन सहित माँ दुर्गा की आराधना एवं भारत की याद पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। कवयित्री भारतीय बिंब इस प्रकार खींच रही है–

बरगद के पीछे से देखा, चक्की की आवाज़ें आतीं।
मकई पीस रही थीं बैठी, जतसार स्वर में थीं वे गातीं ॥
दृश्य देख यह आ गया याद, बिहार का वह अपना गाँव।
सतुआ पीसती माँ थी उसकी, पा पीपल की ठंडी छांव ॥
भीतर भीतर गुनगुना उठा, उन पंक्तियों को याद कर।
आँखें भी भर आयीं पल में, दुर्गा माँ से फरियाद कर ॥

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी व्यक्ति या लेखक अपने संस्कार अपने घर-परिवार और परिवेश से ही ग्रहण करता है और विभिन्न कारणों से जब वह अपने जन्म स्थान, मातृभूमि से अलग होकर किसी नए देश या परिवेश में चला जाता है और वहां जीवनयापन करने लगता है तब परिवेश बदल जाने से प्रवासी के जीवन में विषमताएं और जटिलताएं आ जाती हैं। इस कारण नए संस्कार, नए दृष्टिकोण, नए विचार और नई सोच व नई मान्यताएँ उसके मन में बनने लगती हैं। वह पुराने मूल्यों को नए दृष्टिकोण से देखने लगता है। हिंदी के प्रवासी लेखकों के काव्य साहित्य और गद्य साहित्य में ये सारी बातें देखने को मिलती हैं। और शायद इसी कारण सत्रहवें सर्ग में कल्पना लाल जी ने भोजपुरी में एक गीत की रचना इस प्रकार की है–

मोरे नैहर के संदेसवा, लेके तू पहुँचो।
मोरे भैया ताकत हूँ, मैं तोरी रह ॥
गवां के कुवां, पानी से भरल होवे।
कि अकाले मचेला चहुं ओर......।

तमाम विषम परिस्थितियों में रहते हुए प्रवासी लेखक द्वारा हिंदी या भोजपुरी में लिखना बहुत ही कठिन कार्य है। परंतु सच्चाई यह है कि अच्छा साहित्य उसी भाषा में लिखा जाता है जिसके संस्कार हमें बचपन से मिले हों। यदि मातृभाषा में न लिखकर किसी और भाषा में साहित्य की रचना की जाए तब वह साहित्य इतना संवेदनशील नहीं होता है। हिंदी का प्रवासी साहित्य इस कसौटी पर खरा उतरता है क्योंकि उसे पढ़कर तनिक भी यह नहीं लगता है कि वह भारतीय हिंदी लेखकों की रचनाओं से किसी भी

रूप में कमतर है। भारत में जन्मे, पले-पढ़े लोगों के लिए पराए देश में जाकर उस देश की सभ्यता-संस्कृति के साथ सामंजस्य बिठाना अत्यंत कठिन होता है। प्रवासी लोगों को बहुत सारी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शायद यही वजह है कि कल्पना लालजी तेइसवें सर्ग में भोजपुरी में कुछ इस प्रकार लिखती हैं–

रतवा भयानक बीत गयल भैया
टूट गयल नींदवा हमारी ओ भैया
अगेवा बढ़न को हो गयल फजिरवा...

इसके आगे के सर्गों में हम देखते हैं कि कल्पना लालजी ने "गिरमिटिया महाकाव्य" के पृष्ठ संख्या 70 पर मेंढक के टर्टराने का जिक्र किया है; पृष्ठ संख्या 127 पर पांडवों के एकांतवास का उल्लेख किया है; पृष्ठ संख्या 128 पर पूरनमासी; पृष्ठ संख्या 137 पर कृष्ण जन्माष्टमी और देवी सीता का वर्णन किया है; पृष्ठ संख्या 139 और पृष्ठ संख्या 176 पर भारत के खेल गिल्ली-डंडा और कबड्डी; पृष्ठ संख्या 140 पर प्राचीन भारत की कुप्रथा सती प्रथा; पृष्ठ संख्या 140 पर रामायण की चर्चा; पृष्ठ संख्या 148 पर काली माई के चौंतरा और बलि के बकरे का उल्लेख सुंदर ढंग से किया है। इसके आगे कवयित्री ने पृष्ठ संख्या 155 पर एक भोजपुरी विरह गीत, *लोरवा से भीगी गइले गोरी के चुनरिया* लिख डाला है। पृष्ठ संख्या 156 पर हिन्दू महिलाओं द्वारा मांग में भरे जाने वाले सिंदूर का जिक्र किया है। पृष्ठ संख्या 164 पर भारत में किस प्रकार जातिप्रथा है उसका बिंब खींचा है। पृष्ठ संख्या 167 पर भारत की त्याग-तपस्या के गुण को चित्रित किया गया है। पृष्ठ संख्या 178 पर भारतीय वाद्य-यंत्रों ढोलक, झाल आदि का जिक्र किया गया है। पृष्ठ संख्या 180 पर भारतीय गाँव का चित्र खेती-किसानी के उल्लेख में मिल रहा है। पृष्ठ संख्या 183 पर भारतीय समाज में व्याप्त अंध-विश्वास और ओझा-गुणी का वर्णन कल्पना लालजी ने किया है। पृष्ठ संख्या 203 पर कवयित्री ने विरह-वेदना का सुंदर चित्र भोजपुरी में कुछ इस प्रकार उकेरा है–

झरी गइले रे सभी गछवन के फूलवा।
बही गइले रे सभी अंखियन के लोरवा ॥

कवयित्री द्वारा "गिरमिटिया महाकाव्य" के पृष्ठ संख्या 183 पर हनुमान जी की पूजा-अर्चना को दर्शाया गया है। पृष्ठ संख्या 184 पर यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार भारत के लोग माटी से तिलक लगाते हैं और धरती माँ की पूजा करते हैं तथा गंगा उनके

लिए कितना पवित्र एवं महत्वपूर्ण है। पृष्ठ संख्या 189 पर हिन्दू धर्म के प्रति अटूट आस्था और ईसाई धर्म को न अपनाने के निर्णय को सुंदर ढंग से रूपायित किया गया है। कल्पना जी इसके बारे में लिखती हैं –

धर्म संस्कृति को बेचकर हम सुख कौन सा पाएंगे।
आँखों में गर आँसू आए, तो क्या चैन से जी पाएंगे ॥

"गिरमिटिया महाकाव्य" के उपरोक्त उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि कल्पना लालजी का हृदय भारत के लिए धड़कता है और उनके काव्य में भारतीय सभ्यता-संस्कृति, भाषा-बोली, धर्म-आस्था, रीति-रिवाज, गीत-संगीत, भोजन और परिधान आदि की झलक काबिले तारीफ़ है। इस सुंदर और महत्वपूर्ण काव्य-कृति "गिरमिटिया महाकाव्य" के लिए मैं कल्पना लालजी को बधाई देता हूँ और मंगल कामना करता हूँ कि माँ सरस्वती की कृपा उन पर सदैव बनी रहे।

समीक्षा पुस्तक : गिरमिटिया महाकाव्य: कल्पना लालजी, स्टार पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2023 पृष्ठ 216

समीक्षक: डॉ. राजेश कुमार 'माँझी', हिंदी अधिकारी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), नई दिल्ली

राजेश कुमार 'माँझी' *हिंदी अधिकारी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली। संपर्क: manjhirk@gmail.com*

फ़ीजी में हिंदी : विविध प्रसंग

समीक्षक: ऋतु शर्मा नंनन पांडे

डॉ. राजेश कुमार माँझी द्वारा संपादित पुस्तक "फ़ीजी में हिंदी: विविध प्रसंग" प्रवासी भारतीय हिंदी भाषा और साहित्य के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है।

इस पुस्तक में फ़ीजी में हिंदी से संबंधित 29 महत्वपूर्ण लेखों का संकलन है। उनमें डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा, डॉ. जवाहर कर्नावट, डॉ. विवेकानंद शर्मा, डॉ. हरीश नवल, अनिल जोशी, डॉ. शैलजा सक्सेना, भावना सक्सेना, डॉ. दीपक पाण्डेय, डॉ. मनीषा रामरखा, प्रोफ़ेसर हरिमोहन, डॉ. नूतन पाण्डेय, डॉ. सुनीता वर्मा, डॉ. कमल किशोर मिश्र, सुनंदा वर्मा, डॉ. सुभाषिनी लता कुमार, डॉ. श्रद्धा दास, डॉ. सरिता देवी चंद, धीरा वर्मा, डॉ. राकेश पाण्डेय, डॉ. नरेश चन्द्र, सुएता दत्त चौधरी, रोहिणी लता कुमार, श्यामला कुसुम चंद, दीप्ति अग्रवाल व शर्मिला चंद हैं।

डॉ राजेश कुमार माँझी की यह पुस्तक चार खंडों में विभाजित है। पहला खंड फ़ीजी का गिरमिट इतिहास और संघर्ष-गाथा को बताता है। दूसरा खंड–फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य के विषय में विस्तार से जानकारी देता है। तीसरे खंड में–फ़ीजी में हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के विषय में वहाँ के विद्यालयों की शिक्षा पद्धति के विषय में प्रकाश डालता है। चौथे खंड में–फ़ीजी की सभ्यता-संस्कृति एवं विविध प्रसंग में आपको भारत से दूर बसे एक छोटे भारत के विषय में वहाँ की सांस्कृतिक, धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

1879 से 1920 तक भारतवर्ष से गन्ने के खेतों तथा चीनी मिलों में काम करने के लिए भारतीय किसान व मज़दूर फ़ीजी लाए गये। यह काल उस समय के गिरमिटिया प्रवासी भारतीयों के लिए शोषण, उत्पीड़न एवं निराशा का काल था। इन्हें इंसान कम, पशु

अथवा गुलामों से भी गिरे हुए रूप में औपनिवेशिक मालिकों ने देखा। उनका व्यवहार भी अधिकांशतः अमानुषिक, क्रूर, अत्याचार तथा अन्यान्य पूर्ण था।

भावना सक्सेना जी ने फ़ीजी के गिरमिट संघर्ष-गाथा के वाहक व फ़ीजी गिरमिटिया इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले "पं. तोताराम सनाढ्य" के विषय में बहुत विस्तार पूर्वक गहन जानकारी अपने लेख के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाई है।

अनिल जोशी जी ने अपने लेख "गिरमिट प्रथा की समाप्ति भारत का दूसरा स्वतंत्रता संग्राम'' में गिरमिटिया प्रथा के इतिहास के बारे में बताते हुए इस प्रथा के समाप्त होने तक के विषय में विस्तार से जानकारी दी है।

लोकगीत मूलतः मानव मन के प्रतिबिंब होते हैं। प्रायः जो बातें हम स्पष्ट रूप से कह नहीं पाते वह हम गीतों, कविताओं के माध्यम से बहुत सहज व सुंदर रूप से व्यक्त कर सकते हैं। लोकगीतों में व्यक्ति की विभिन्न मानसिक दशाओं का बड़ा सहज व उन्मुक्त चित्रण होता है। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए धीरा वर्मा ने अपने आलेख में 'प्रवासी भारतीय' जब फ़ीजी गए उस समय वह अपने साथ भारतीय संस्कृति, भाषा, परंपरागत गीत, मान्यताओं को अपने साथ ले जाने का ज़िक्र अपने लेख में किया हैं। उस समय की विषम परिस्थितियों में उनके पीड़ित मन के उद्गार उनके गीतों में दिखाई देते हैं। गिरमिटिया गीत प्रवासी भारतीयों की आशा और निराशा के गीत हैं। इन गीतों में उनके परिश्रम की सौंधी ख़ुशबू आती है। इनमें इनके संघर्ष का स्वर है और मन की करुण अभिव्यक्ति है।

फ़ीजी में सृजनात्मक हिंदी का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना कि वहाँ रहने वाले प्रवासी गिरमिटिया भारतीयों का इतिहास। जब पहले प्रवासी ने वहाँ पग रखा होगा उसी के साथ हिंदी भाषा का वहाँ आगमन हुआ। क्योंकि फ़ीजी ले जाएँ जाने वाले अधिकांश भारतीय हिंदी भाषी क्षेत्रों से ही थे इसलिए हिंदी वहाँ अधिकारिक भाषा के रूप से स्थापित हो गई।

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा ने अपने लेख में फ़ीजी के सृजनात्मक लेखन को तीन खंडों में विभाजित करने की बात लिखी है। फ़ीजी में कई लेखक व कवि हुए हैं जिनमें पं. तोताराम सनाढ्य, काशी राम कुमुद, कवि सुखराम, अमरजीत कौर, भरत वी. मॉरिश, पं. कमला प्रसाद मिश्र, और रामदेव धुरंदर के नाम प्रसिद्ध है।

श्यामला कुसुम चंद जी ने अपने लेख में कहा है कि फ़ीजी के विद्यालयों में हिंदी भाषा की शिक्षा कक्षा एक से कक्षा तेरह तक मान्य है। यह शिक्षा निःशुल्क है। डॉ. सुभाषिनी लता कुमार जी ने फ़ीजी में रामायण संस्कृति के प्रभाव की बात की है।

प्रभावी भारतीयों ने जहाँ एक तरफ़ परदेस को अपनी कर्मभूमि बनाया वहीं दूसरी और अपनी भाषा और संस्कृति की ध्वजा भी सबसे ऊँची लहराई है। फ़ीजी में भी लोग रामचरितमानस के अनुरूप ही अपने धर्म और नियमों का पालन करते हैं।

यूँ तो गिरमिटिया मज़दूरों या फ़ीजी पर अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, फिर भी मैं यह कहना चाहूँगी कि डॉ. राजेश कुमार माँझी ने अपनी इस पुस्तक को एक छोटे से पुष्प गुच्छ का रूप दिया है जिसमें एक से एक बेहतरीन पुष्पों को सजा कर इस पुस्तक में उनके लेख की सुगंध को समाहित कर दिया है।

यह पुस्तक शोधकर्ताओं के लिए भी बहुत उपयोगी पुस्तक है। इस पुस्तक द्वारा फ़ीजी देश में सिर्फ़ भारतीय संस्कृति के बारे में ही नहीं अपितु वहाँ की अपनी संस्कृति, भाषा, भूगोल की जानकारी है। पुस्तक में दिए गये प्रवासी भारतीयों के लोक गीत, कविताएँ और दोहें आदि इस पुस्तक को रोचक बनाते हैं।

समीक्षा पुस्तक : फ़ीजी में हिंदी [विविध प्रसंग] राजेश कुमार माँझी, सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली 2023

समीक्षक: डॉ. ऋतु शर्मा नंनन पांडे, नीदरलैंड

ऋतु शर्मा नंनन पांडे *प्रवासी हिंदी साहित्यकार, नीदरलैंड, संपर्क: Ritus0902@gmail.com*

सरनामी हिंदी : हिंदी का विश्व फलक

समीक्षक: दीप्ति अग्रवाल

हिंदी को यदि हम विश्वभाषा बनाना चाहते हैं तो हिंदी के लिए हमें कुछ ठोस काम करना होगा। पूरे माह दो पखवाड़ों में चलने वाला हिंदी दिवस कितना हिंदी भाषा का विकास कर पाएगा यह सब हम से छिपा नहीं है। हम हिंदी उत्सव मनाएंगे, कवि सम्मेलेनों का आयोजन होगा, हिंदी का यशोगान होगा, लंबे चौड़े भाषण होंगे, हिंदी के नाम पर सरकारी बजट के करोड़ों रुपए व्यय भी होंगे। पर क्या ये आयोजन आपको वार्षिक रस्म अदायगी से नहीं लगते? हर वर्ष हम यही करते हैं। इससे आगे हम नहीं बढ़ पाते। हम हिंदी को विश्वभाषा बनाने का सपना तो सँजोये हुए हैं पर अपने दिल पर हाथ रख कर पूछिये कि क्या यह मात्र छलावा नहीं है। क्या इन आयोजनों से हिंदी की प्रतिष्ठा में कभी वृद्धि होगी? क्या इन प्रयासों से हिंदी विश्वभाषा बन पाएगी? शायद नहीं, इसके लिए हमें आज ठोस व्यावहारिक योजनाओं की आवश्यकता है, जिससे हिंदी समृद्ध हो। हिंदी के संवर्धन के लिए हम ऐसे कुछ प्रयास करें जिससे भारत के भारतीयों और विदेशों में बसे भारतीयों को विश्वास हो जाये कि हम हिंदी के लिए सच्चे मन से कुछ करना चाहते हैं।

हम यह क्यों भूल जाते है कि हिंदी हमारी मातृभाषा है और इसी भाषा में हमने सबसे पहले बोलना सीखा था। सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में आज हिंदी का स्थान विश्व फलक पर तीसरा है। लेकिन हमारे ही देश में हमारे ही लोगों द्वारा यह भाषा उपेक्षित है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हिंदी की साहित्यिक और भाषिक समृद्धि ही हिंदी को विश्व पटल पर प्रतिष्ठित कर सकेगी। ऐसा होगा तो विश्व में हमारे अस्तित्व की पहचान बढ़ेगी। कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा है–

“आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल के समान है जिसका एक एक दल एक-एक प्रांतीय भाषा और उसकी साहित्य संस्कृति है...हम चाहते हैं कि भारत

की सारी प्रांतीय बोलियाँ जिनमें सुंदर साहित्य सृष्टि हुई है आपने अपने घर में रानी बनकर रहे और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्य मणि हिंदी भारत भारती होकर विराजती रहे।"

कवीन्द्र रबीन्द्र के इस कथन में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाएँ और उनकी विविध शैलियाँ समाहित हैं और वे मणि सदृश हैं जबकि अपनी विराटता के कारण 'हिंदी' मणि जटित हार की मध्य मणि है। हिंदी की विभिन्न विदेशी शैलियाँ जिनका विदेश में प्रवासी भारतीयों द्वारा विकास हुआ जैसे सूरीनाम की 'सरनामी हिंदी' फ़ीजी की 'फ़ीजी हिंदी' दक्षिण अफ्रीका की 'नैटाली हिंदी', मॉरीशस की 'मोरिशसीय हिंदी', उज्बेकिस्तान और कजाकिस्तान की 'पारया' आदि भी अपने अपने देशों में रानी बनकर रहे। जिस प्रकार माँ अपने बच्चों की प्रगति से गौरान्वित होती है उसी प्रकार भारत की हिंदी भी इन विभिन्न विदेशी हिंदी शैली रूपी अपनी बेटियों को बढ़ते देख गौरान्वित होगी। इससे माँ यानी हिंदी, भारत में भी शक्तिशाली बनेगी और वैश्विक फ़लक पर भी हिंदी की चमक बढ़ेगी।

यदि हम चाहते हैं कि हमारी हिंदी विश्व-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो तो हमें प्रवासी भारतीयों की हिंदी की नव भाषिक शैलियों को जैसे 'सरनामी हिंदी', 'फ़ीजी हिंदी' और 'नैताली हिंदी' आदि को मात्र प्रोत्साहित ही नहीं करना होगा उसे संरक्षण देना होगा और उसका संवर्धन करना होगा। हिंदी के विकास के लिए भाषाविज्ञानी, साहित्यकार, अनुवादक, राजभाषा अधिकारी, शिक्षक, नीति-निर्माता, राजनयिक, सरकार सभी का संयुक्त प्रयास और सहयोग अपेक्षित है।

इसी दिशा में देश के जाने माने भाषा वैज्ञानिक, पूर्व वरिष्ठ राजनयिक, लेखक और विभिन्न देशों में हिंदी के प्राध्यापक रह चुके डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा और सूरीनाम स्थित भारतीय दूतावास में 'अताशे' पर पदासीन रह चुकी प्रवासी साहित्य विशेषज्ञ सुश्री भावना सक्सैना जो प्रतिष्ठित कथाकार और अनुवादक भी है, के सौजन्य से 'सरनामी हिंदी: हिंदी का विश्व फलक' अनुसंधानपरक पुस्तक, देश की प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्था नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ़ इंडिया से प्रकाशित हुई है। डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा और सुश्री भावना सक्सेना की संयुक्त रूप से लिखी हुई और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा तथा राधाकृष्ण प्रकाशन (राजकमल प्रकाशन समूह) नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शोध परक पुस्तक 'सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य' प्रकाशित हो चुकी है जो बहुत चर्चित रही है। और अब उनकी यह अत्यंत उपयोगी, दूसरी पुस्तक

'सरनामी हिंदी : हिंदी का विश्व फलक' पुस्तक प्रकाशित हुई है जो हिंदी को वैश्विक पहचान दिलाने की दिशा में पहला प्रयास है।

प्रवासी साहित्य पर अध्ययन और अनुसंधान करने वाले सभी डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा के इस दिशा में अध्ययन और अनुसंधान से परिचित हैं। अभी तक भारत में और विशेषकर हिंदी में अधिकांश अध्ययन प्रवासी साहित्य को लेकर ही हुआ है और प्रवासी हिंदी पर कार्य नहीं के बराबर है। डॉ.मोती लाल माढ़े की पुस्तक 'सरनामी ब्याकारण' डच भाषा में प्रकाशित है। डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा के सरनामी हिंदी पर लिखे महत्वपूर्ण शोध आलेख शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं पर आज वे सहज उपलब्ध नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन से एक बड़ी रिक्ति की पूर्ति हुई है।

सरनामी हिंदी पर लिखी इस अनुसंधानपरक पुस्तक में तीन खंड हैं। पुस्तक के पहले खंड में सरनामी हिंदी की समग्र जानकारी के साथ साथ दस्तावेज़ भाग में सूरीनाम के प्रख्यात हिंदी साहित्यकारों जैसे प. हरिदेव सहतू, जीत नराईन, सुरजन परोही, राजमोहन आदि के साथ साक्षात्कार, प्रेस कतरने आदि अभिलेखीय सामग्री प्रस्तुत की गई है जिनको पढ़ कर हमें आश्चर्य होता है कि भारत से बहुत दूर दक्षिण अमरीका के उतरी छोर पर बसे सूरीनाम में भी भारत की आत्मा वास करती है।

पुस्तक का दूसरा खंड साहित्य संचयन का है जिसमें प्रमुख साहित्यकार अमर सिंह रमन, आशा राजकुमार, कर्मलेखा, कारमेन जगलाल, गार्गीवती चुन्नी, चित्रा गयादीन, जन सुरजनारायण सिंह, डॉ जीत नराईन, देवानंद शिवराज, मार्टिन हरिदत्त लछमन 'श्री निवासी', रवीन बलदेव सिंह, राज रामदास, राजमोहन, सरवन 'हृदयेश' बख्तावर, सुरजन परोही, सूर्य प्रसाद बीरे, हरिदेव सहतू आदि की रचनाओं से पाठक परिचित होता है। उन साहित्यकारों द्वारा सृजित गद्य और पद्य साहित्य एक तरह से ऐतिहासिक दस्तावेजों का काम करते हैं और हमें अतीत, वर्तमान के प्रवासी भारतीयों के जीवन से परिचित करवाते हैं।

पुस्तक के गहन अध्ययन के पश्चात मुझे अनुभव हुआ कि पुस्तक समग्रता लिए हुए है लेकिन परिशिष्ट में दिया गया सरनामी शब्दों का भंडार अल्प मात्रा में है। उसको विस्तार देना आवश्यक है सरनामी व्याकरणिक संरचना में तो मोती माढ़े की पुस्तक उपलब्ध है इसलिए लेखक ने पुनरावृति से बचने के लिए सरनामी व्याकरण को विस्तार

नहीं दिया। लेकिन सरनामी हिंदी का एक भी शब्दकोश अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है और जिसकी बहुत आवश्यकता है। इस विषय डॉ. विमलेश कान्ति से बात करने पर पता चला कि वे और सुश्री भावना सरनामी-हिंदी शब्दकोश पर काम कर रहे हैं और आशा है कि निकट भविष्य में सरनामी-हिंदी शब्द कोश पाठकों को उपलब्ध हो सकेगा जो भावी पीढ़ी के लिए दिशा निर्देशक का काम करेगा। मैंने उनसे हिंदी की अन्य प्रवासी शैलियों जैसे फ़ीजी बात, नैताली हिंदी, मॉरीशस की भोजपुरी मिश्रित हिंदी आदि पर भी इसी तरह के शोधपरक ग्रंथ लिखने का आग्रह किया। अंत में पाठकों, शोधार्थियों के लिए हिंदी भाषा के क्षेत्र में सरनामी हिंदी पर इतनी ज्ञानवर्धक पुस्तक का आना सौभाग्य की बात है और यह हिंदी पखवाड़ा मनाने की दिशा में एक ठोस कदम का उदाहरण है जिससे हिंदी का नाम विश्व में चमकेगा, हिंदी बढ़ेगी और भारत गौरवान्वित होगा।

सद्यः प्रकाशित यह पुस्तक 'सरनामी हिंदी : हिंदी का विश्व फ़लक' प्रवासी हिंदी पर शोध करने वाले छात्र-छात्राओं के हिंदी अध्ययन और अनुसंधान में मील का पत्थर सिद्ध होगी। हिंदी मठाधीशों के दो खेमे है जिनमे से एक का मानना है कि साहित्य परिनिष्ठित हिंदी में ही लिखा जाना चाहिए लेकिन दूसरे खेमे का मानना है कि जितनी सहज और मौलिक अभिव्यक्ति अपनी बोलचाल की भाषा में हो सकती है उतनी परिनिष्ठित हिंदी में नहीं और यह बात प्रवासी साहित्यकारों पर तो बहुत खरी उतरती है, क्योंकि चाहे वे भारत की स्वतन्त्रता से पहले गिरमिट के रूप में भारत से मॉरीशस, गयाना, दक्षिण अफ़्रीका, त्रिनिदाद, सूरीनाम आदि देशों में गए या स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा या रोजी-रोटी कमाने विकसित देशों में गए। भाषा ही एकमात्र माध्यम थी जिसने समस्त भारतीयों को परस्पर जोड़े रखा। देश, काल, परिस्थिति ने विभिन्न देशों में हिंदी के स्वरूप को बदला अवश्य लेकिन फिर भी रही तो हिंदी ही। और यह हिंदी के वैश्विक विकास और संवर्धन की दिशा में एक ठोस कदम है। यह पुस्तक जो सूरीनाम की 'सरनामी हिंदी' की पृष्ठभूमि, भाषिक संरचना, ध्वनि विचार, इसके पक्ष में हुए आंदोलन, इसकी लिपि, इसका साहित्य और सरनामी हिंदी की शक्ति और सीमाओं से पाठकों का इतने रोचक और ज्ञानवर्धक तरीके से परिचय करवाती है कि पाठक को पुस्तक उपयोगी लगती है।

मॉरीशस के प्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकार डॉ. बीरसेन जागासिंह इस किताब के प्रकाशन पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहते हैं–"विमलेश कान्ति वर्मा जी जैसे विश्व प्रसिद्ध विद्वान भाषा वैज्ञानिक की रची 'सरनामी हिंदी' शीर्षक कृति महत्वपूर्ण होगी

ही। प्रसन्नता की बात यह है कि वर्मा जी सरनामी हिंदी लिखते हैं न कि मात्र 'सरनामी' क्योंकि यदि 'गयानी', 'फ़ीजी' बात, 'सरनामी', 'नैताली' आदि नामों को बिना हिंदी शब्द जोड़े लिखा और माना जाएगा तो हिंदी का अंतरराष्ट्रीय रूप कब और कैसे बनेगा?"

इस महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखन और प्रकाशन के लिए डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा और सुश्री भावना को तथा इसके प्रकाशन के लिए प्रकाशन संस्था नेशनल बुक ट्रस्ट को बधाई।

समीक्षा पुस्तक : सरनामी हिंदी–हिंदी का विश्व फलक: विमलेश कान्ति वर्मा व भावना सक्सेना, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली 2021 पृष्ठ 263

समीक्षक: डॉ दीप्ति अग्रवाल, अतिथि प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

दीप्ति अग्रवाल *प्रवासी भाषा व साहित्य विशेषज्ञ, पूर्व अतिथि प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। संपर्क: deeptiaggarwalmail@gmail.com*

कालापानी के पार
उत्तर प्रदेश से फ़ीजी तक

समीक्षक: डोनिका बेलिसले
अनुवाद: दीप्ति अग्रवाल

लेखिका और इतिहासकार सुनीता नारायण ने इस विचारोत्तेजक, मनोरंजक पुस्तक द्वारा, गिरमिटिया लोगों के जीवन और अनुभवों की, जब वे गुलामी के तहत भारत से फ़ीजी तक यात्रा कर रहे थे, एक सम्मोहक समझ प्रदान की है। यह पुस्तक रंगीन चित्रण, सूचनात्मक मानचित्रों और विस्तृत शब्दावली से परिपूर्ण है और पाठकों को यह सोचने के लिए मजबूर करती है कि 19वीं और 20वीं शताब्दी के आरंभ में जो 1.3 मिलियन पुरुष, महिलाएँ और बच्चें कलकत्ता (कोलकाता) और मद्रास (चेन्नई) के उत्प्रवास डिपो से यात्रा करके भारत से बाहर दुनिया भर में औपनिवेशिक बागानों में गए और गिरमिट की हिंसक स्थितियों को झेला, उनके अनुभव कैसे थे।

यह पुस्तक चार भागों में विभाजित है जिसमें–प्रारंभिक टिप्पणियां, गिरमिटियों के अनुभवों का एक काल्पनिक पुनर्निर्माण, गिरमिटिया का एक ऐतिहासिक अवलोकन, और एक शब्दावली और संदर्भ है। यह गिरमिटियों के अनुभवों का एक सस्पेंसपूर्ण पुनर्निर्माण और गिरमिटिया के वैश्विक इतिहास पर एक मूल्यवान चर्चा प्रदान करती है। इनमें से प्रत्येक भाग महत्वपूर्ण है। पहले भाग में एक ‘समर्पण’ अनुभाग शामिल है (जिसमें लेखक अपने प्रयासों का समर्थन करने के लिए अपने माता-पिता, महेश और विद्या प्रसाद को धन्यवाद देती है), एक ‘आभार’ अनुभाग है जिसमें न्यूज़ीलैंड में फ़ीजी के उच्चायुक्त का एक ‘संदेश’, और न्यूजीलैंड में भारत के उच्चायुक्त द्वारा एक ‘प्रस्तावना’ दी गई है।

इन अनुभागों के बाद 'कालापानी के पार' का मुख्य भाग दिखाई देता है, जो चुनिंदा गिरमिटिया के जीवन का एक काल्पनिक पुनर्निर्माण है। सावधानीपूर्वक किए गए ऐतिहासिक शोध के आधार पर, यह कहानी उत्तर प्रदेश के बिनाइका से कलकत्ता में उत्प्रवास डिपो और फिर फ़ीजी तक की यात्रा के बारे में गहराई से जानकारी देती है। इस कहानी की पृष्ठभूमि 19वीं सदी के उत्तरार्ध, विशेष रूप से 1890 के दशक की है। यह दशक इस कहानी में वर्णित अनुबंधित जहाज़ 'एवन' की नौवहन यात्रा से मेल खाता है, जो 1892 और 1899 में कलकत्ता से फ़ीजी तक गया था।

'कालापानी के पार' में एक मुख्य पात्र मंगल और कई सहायक पात्र हैं, जिनमें भारत, नेपाल और जमैका के पुरुष, महिलाएं और बच्चे शामिल हैं। इसकी कथा के केंद्र में वह धोखा है जिसका शिकार गिरमिटिया हुए थे। भारत में, धोखेबाज अराकाटी (भर्तीकर्ता) ग्रामीण इलाकों में यात्रा करते थे और वहाँ से लोगों को ढूंढ़ कर धोखे से अनुबंधित जहाज़ों पर चढ़ा देते थे। अराकाटिया कई झूठे वादे करते थे जैसे बागान का काम कठिन नहीं होगा, बहुत पैसा कमाया जाएगा, और यह भी कि भारत वापस आना आसान होगा। एक बार गिरमिटिया लोग उत्प्रवास डिपो में प्रवेश कर गए, तो उन्हें कहा जाता कि जब तक वे दिए जाने वाले भोजन का भुगतान नहीं कर देते, वे वापस नहीं जा सकते। इन कई कारणों से, गिरमिटिया लोग काले पानी की यात्रा करने के लिए सहमत हो जाते थे।

'कालापानी के पार' में गिरमिटिया लोगों की विविधता बहुत महत्वपूर्ण है। जैसा कि लेखक ने बताया है, 'एवन' पर यात्रा करने वाले गिरमिटिया लोग ब्राह्मण और कुम्हार सहित सभी जातियों से थे। वे कई क्षेत्रों से और विभिन्न धार्मिक पृष्ठभूमि से भी आए थे। फ़ीजी में तमुनुआ चीनी बागान में, जहाँ मंगल ने अपना अनुबंध पूरा किया, हिंदू, मुस्लिम, सिख और ईसाई सभी धर्मों के लोग थे गिरमिटिया लोगों ने जिन भयानक परिस्थितियों को झेला, उसके कारण उनके बीच घनिष्ठ संबंध बन गए। इन संबंधों ने गिरमिटिया लोगों के बीच जाति, भाषा, धर्म और क्षेत्र के संभावित विभाजनों को दूर करने में मदद की। अन्यथा वे अलग-अलग ही रहते।

अनुबंधित प्रथा के विशेषज्ञ बागानों की भयावहता से परिचित हैं, लेकिन फिर भी इस विषय पर चर्चा करना महत्वपूर्ण है। 'कालापानी के पार' के तीसरे खंड में, जिसे 'उपसंहार' कहा जाता है, नारायण ने अपनी बेटी अनुक्षा नारायण जब वह 17 वर्ष की

थी द्वारा वर्ष 2007 में लिखित एक निबंध शामिल किया है। तब लिखे गए इस निबंध का शीर्षक 'फ़ीजी में गिरमिटिया बच्चा होना' है, जिसमें कहा गया है कि गिरमिटिया लोगों पर होने वाले व्यापक अत्याचारों का आमतौर पर "फ़ीजी के बाहर पैदा हुए कई फ़ीजी भारतीय युवाओं" को बोध नहीं है। (155)। अनुक्षा नारायण के अनुसार, "आम समझ यह है कि भारतीय बेहतर जीवन के लिए फ़ीजी गए थे... लेकिन... यह इतना आसान नहीं था। वे स्वेच्छा से नहीं गए थे; उन्होंने वहाँ रहने का विकल्प नहीं चुना था, और उनका जीवन एकदम से 'बेहतर' नहीं हो गया था (155)। गिरमिटिया लोगों के जीवन के बारे में वर्तमान और भावी पीढ़ियों को जानकारी देना महत्वपूर्ण है इसलिए यह ज़रूरी है कि भविष्य के किसी भी गिरमिट अध्ययन में उन पर हुई हिंसा और यातना की चर्चाओं को शामिल करना जारी रखें।

'कालापानी के पार', गिरमिटिया लोगों द्वारा झेले गए अत्याचारों को व्यापक रूप में दर्शाया गया है। इनमें गिरमिटिया लोगों के वेतन को रोकना, सरदारों (क्षेत्र पर्यवेक्षकों) और कुलंबरों (ओवरसियर) द्वारा पिटाई और कोड़े मारना, अधिक काम, यौन हिंसा, मनोवैज्ञानिक हिंसा; और, जो लोग भागने की कोशिश करते हैं, उनके लिए सज़ा, जेल की सजा और अनुबंधों का विस्तार शामिल है। यह पीड़ा इतनी तीव्र थी कि कई लोग मारे गए। कई लोगों ने आत्महत्या भी की (94)। फिर भी, 'कालापानी के उस पार' में केवल इन यातनाओं पर ही ध्यान केंद्रित नहीं किया गया है। यह गिरमिटिया लोगों की प्रतिक्रियाओं को भी दर्शाता है। जैसा कि नारायण कहती हैं, कई गिरमिटिया लोग एक-दूसरे के साथ जानकारी साझा करते थे और न्याय पाने की कोशिश करते थे। 'कालापानी के उस पार' में बहादुर की कहानी भी शामिल है, जो लगातार बागानों में होने वाली हिंसा से नाराज था। एक बार, जब ओवरसियर में से एक ने बहादुर को मुक्का दिखाया, तो बहादुर ने पहले उसे मारा और फिर उसे 'ज़मीन पर पटक दिया' (89)। बहादुर को फटकार नहीं लगाई गई, लेकिन उसकी बहादुरी को औपचारिक रूप से दर्ज भी नहीं किया गया जैसा कि नारायण ने लिखा, 'यह मामला सुर्खियों में नहीं आया' (89)। जैसा कि इस कथन से पता चलता है, अनुबंध के कुछ पहलुओं को औपचारिक रूप से दर्ज नहीं किया जाता था अत: इस तरह की बातों और अन्य कारणों से आज के शोधकर्ताओं के लिए गिरमिट को पूरी तरह से समझना मुश्किल हो सकता है।

गिरमिटिया लोगों द्वारा गन्ने के खेतों की विशेषज्ञ की तरह देखभाल एक और उल्लेखनीय विषय है। 'कालापानी के उस पार' में, गिरमिटिया लोगों द्वारा देखभाल

किए गए गन्ने के खेत उनकी देखरेख के कारण हरे-भरे और अच्छे से उगते हैं। जैसा कि नारायण की कहानी बताती है (86) कि ऐसा खास तौर पर तब हुआ जब ओवरसियर ने हिंसा और क्रूरता छोड़कर मानवीय प्रबंधन शैली अपना ली। यह पुस्तक चीनी के खेतों की व्यवस्थितता और प्रचुरता पर जोर देकर, गिरमिटिया के कौशल और कड़ी मेहनत को मान्यता देती है। इस तरह, यह गिरमिटियों को श्रेय देती है। गिरमिटिया के अपने समय में ऐसा श्रेय कभी नहीं दिया गया था। अर्थात बागान मालिक बस गिरमिटियों से काम करवाना जानते थे और कभी भी गिरमिटिया के योगदान को स्वीकार नहीं करते थे। इस विषय पर नारायण का काम महत्वपूर्ण है।

अपने सभी दुखों और कठिनाइयों के दौरान, गिरमिटिया अपने कौशल, मूल्यों, परंपराओं और शायद सबसे महत्वपूर्ण–एक-दूसरे पर निर्भर थे।

जैसा कि मुख्य पात्र मंगल बताता है:

> हम लगभग पाँच साल पहले यहाँ आए, कूलम्बर [ओवरसियर] और सरदारों [पर्यवेक्षकों], सरकार [ब्रिटिश अधिकारियों], डॉक्टरों, मजिस्ट्रेटों और कानून [कानून] के अपमान और उत्पीड़न को सहन किया... हमने इन लोगों के अत्याचारों के सामने घुटने टिका दिए। देखो हमने अपने पसीने और खून से इस मिट्टी को उपजाऊ बनाया है... यह वह मिट्टी है जो आने वाली पीढ़ियों को खिलाएगी।
>
> हम अपने नए रिश्तों के माध्यम से जीवित रहे हैं और अपनी भाषा, रीति-रिवाजों, परंपराओं और संस्कृति को बनाए रखने के अपने संकल्प के साथ इस वातावरण के अनुकूल बने हैं। हमने अपने माता-पिता से भगवान राम, माता सीता और राजकुमार लक्ष्मण की तरह मजबूत बने रहना सीखा, हालांकि उन्हें कई कठिनाइयों को पार करना पड़ा लेकिन वे इंसान होने के नाते जीवित रहे। (108)।

जैसा कि इस अंश से पता चलता है, गिरमिटिया लोग विश्वास और आपसी सहयोग पर भरोसा करते थे, जबकि उन्हें उन सभी लोगों, जो बंधुआ मजदूरी से लाभ उठाते थे, द्वारा दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता था। अपने बंधनों, मूल्यों, परंपराओं और कौशल के माध्यम से, उनमें से कई बच गए और अपने वंशजों के लिए नई दुनिया बनाई।

मंगल के ये शब्द समुदाय के महत्व को प्रकट करने के लिए तो महत्वपूर्ण हैं ही, साथ ही वे औपनिवेशिक निष्कर्षण के असमान संबंधों को प्रकट करने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं जो अनुबंध का समर्थन करते हैं। भले ही गिरमिट के प्रशासन में शामिल पर्यवेक्षक, डॉक्टर, अधिकारी और अन्य लोग अपनी गलती स्वीकार न करें, गिरमिटिया श्रमिक अच्छी तरह जानते थे कि उनके साथ दुर्व्यवहार करने वाले कौन थे, और इसके अलावा वे किस पक्ष में थे। गिरमिट का अध्ययन करते समय यह याद रखना महत्वपूर्ण है। गिरमिटिया के अपने शब्दों और कथनों पर ध्यान देने से ही हम उनके इतिहास को सही मायने में समझ सकते हैं।

'कालापानी के पार' की कई अन्य विशेषताएं भी महत्वपूर्ण हैं। पाठ में फ़ीजी हिंदी के व्यापक उपयोग को पाठकों ने विशेष रूप से सराहा, क्योंकि इसकी उपस्थिति ने अनुबंध के बारे में मेरी अपनी समझ को गहरा करने में मदद की। 'कालापानी के पार' पढ़ने से पहले, मुझे यह एहसास नहीं था कि रमणीक दीप शब्द, जिसे कभी-कभी अराकाटी और गिरमिटिया फ़ीजी के लिए इस्तेमाल करते थे, मूल रूप से यह अर्थ रखता था कि फ़ीजी 'एक आनंदमय स्थान' था (163)। इसी तरह, मुझे पहले कालापानी का मतलब गहरा पानी पता था, मुझे यह एहसास नहीं था कि कुछ लोग कालापानी को पार करना 'पापपूर्ण' मानते हैं (162)। इन मामलों को समझने में मेरी मदद चार-पृष्ठ की शब्दावली ने की जो किताब के पीछे दी गई है।

गिरमिटियों के इतिहास को काल्पनिक पुनर्रचना के माध्यम से बताने का नारायण का निर्णय उल्लेखनीय है। अक्सर, शुष्क ऐतिहासिक ग्रंथ पाठकों की रुचि को आकर्षित करने या उनका ध्यान बनाए रखने में विफल रहते हैं। नारायण एक सस्पेन्स से भरपूर कथा प्रस्तुत करके उन पाठकों तक पहुँचने में सक्षम हो पाई हैं जो शायद अन्य विधाओं की तुलना में कथा साहित्य पढ़ना पसंद करते हैं। साथ ही, कथा साहित्य के माध्यम से, नारायण गिरमिट के कुछ पहलुओं को व्यक्त करने में सक्षम हैं जिन्हें अन्यथा व्यक्त करना मुश्किल हो सकता है। उदाहरण के लिए, प्रियजनों को खोने का दर्द, बागान हिंसा की यातना, भारत छोड़ने की कठिनाई और समुदाय का महत्व सभी को 'कालापानी के पार' में संबोधित किया गया है। इन विषयों का पता लगाने के लिए नारायण ने अपने काम में पारंपरिक तरीकों की बजाय कथा साहित्य का उपयोग करके, शायद अधिक गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान की है।

काल्पनिक कथा को आगे बढ़ाने में नारायण ने चित्रों को शामिल किया हैं। 'कालापानी के पार' में कलाकार कुएल मारक द्वारा कई रंगीन कलाकृतियाँ शामिल हैं। ये गिरमिटिया के अनुभवों का विशद् चित्रण प्रस्तुत करते हैं। एक चित्र में गिरमिटिया को एक अनुबंधित जहाज़ पर दिखाया गया है, जो कलकत्ता की तटरेखा को दूर तक जाता हुआ देख रहा है। ऊपर डेक पर यूरोपीय मूल का एक कप्तान खड़ा है, जिसकी चौकस निगाहें और भयावह मुद्रा उस खतरे को दर्शा रही है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है (50)। एक अन्य चित्रण में, पाँच गिरमिटिया श्रमिक एक गाड़ी में गन्ने लाद रहे हैं। एक दृश्य में दो कूलंबर तने हुए घोड़े पर सवार होकर जा रहे हैं, उन्होंने भारी जूते पहने हुए हैं और उनके हाथ में चाबुक हैं (79)। यह चित्रण गिरमिटिया लोगों के गन्ने के खेतों में झेली जाने वाली यातनाओं के बारे में गहनता से याद दिलाता है जहाँ उन्हें क्रूर ओवरसीयर द्वारा लगातार दर्द और हिंसा की धमकी के तहत भारी, कठिन काम करने को मजबूर किया जाता था (81)।

गिरमिटिया लोगों के इतिहास के बारे में कभी-कभी बाहरी विद्वानों द्वारा बताया जाता है, ऐसे लोग जिनका गिरमिट से व्यक्तिगत संबंध नहीं होता। अपने निबंध के 'उपसंहार' में नारायण की बेटी अनुक्षा ने गिरमिटिया लोगों से अपने संबंधों को स्पष्ट किया है। वह कहती है, "मेरे परदादा मदारी ने लखनऊ शहर के ठीक बाहर वाले अपने घर को छोड़ा और 1900 के आसपास वादा किए गए देश में पहुँचे। और मेरे परदादा गुदर बाईस साल की उम्र में 1909 में प्रतापगढ़ से, संगोला जहाज़ के ज़रिए फ़ीजी पहुँचे" (156)। इन तथ्यों से पाठक को अवगत कराते हुए, अनुक्षा नारायण अपनी और अपनी माँ के अपनी पुस्तक के विषय-वस्तु से संबंध को बताती हैं। उनके शब्द बताते हैं कि अतीत वर्तमान से जुड़ा हुआ है। वे वस्तुनिष्ठता के उस पर्दे को हटा देते हैं जो कभी-कभी ऐतिहासिक लेखन में व्याप्त हो जाता है। इसके अलावा, अपनी बेटी के निबंध को साझा करके और व्यक्तिगत संबंधों को उजागर करके, नारायण उन लोगों को भी प्रोत्साहित करती हैं, जो अनुबंध पर अध्ययन करते हैं, कि वे अपने स्वयं के संबंधों के बारे में भी सोचें। जैसे शोधकर्ताओं को अनुबंध के बारे में लिखने के लिए क्या प्रेरित करता है, और ये लेखन किस (और किसके) हितों की सेवा करते हैं? अपने और अपनी बेटी के अपने उदाहरणों के माध्यम से, नारायण की पुस्तक जवाबदेही और आपसदारी का एक मॉडल पेश करती है जिसका भविष्य के विद्वान अनुसरण कर सकते हैं।

शायद 'कालापानी के पार' की सबसे अधिक सराहना की जाने वाली बात गिरमिटिया के इतिहास के लिए इसकी विस्तृत, समावेशी दृष्टि है। यह पुस्तक केवल एक आवाज़ का उत्पाद नहीं है, बल्कि इस पुस्तक में कई दृष्टिकोण शामिल हैं। अनुक्षा नारायण के शब्दों, कुएल मारक की छवियों और शुरुआती अंशों में ऊपर उल्लिखित उच्चायुक्तों की टिप्पणियों के अलावा, पाठ में न्यूज़ीलैंड की कौशिकी रॉय द्वारा 'सोशल मीडिया पोस्ट' के रूप में एक लघु निबंध भी शामिल है, जिन्होंने 2015 में कोलकाता के गार्डन रीच के आसपास का दौरा किया था, जहाँ उत्प्रवास डिपो स्थित थे। इस निबंध में, रॉय ने बताया कि डिपो कैसे काम करते थे; उन्होंने वहाँ स्थित सूरीनाम जाने वाले गिरमिटिया लोगों के स्मारक की तस्वीरें भी शामिल की हैं। रॉय के शब्दों और तस्वीरों के साथ-साथ अन्य योगदानकर्ताओं की तस्वीरों को शामिल करके, नारायण ने सामूहिक दृष्टिकोण प्रदान करने के महत्व को उजागर किया है। कई आवाज़ों और दृष्टिकोणों के माध्यम से, अनुबंधित और गिरमिटिया दोनों के योगदान के बारे में हमारा ज्ञान और परिचय समृद्ध और विस्तारित होते हैं।

'कालापानी के पार' एक महत्वपूर्ण कार्य है, जो गिरमिटिया के जीवन की एक विशद् पुनर्कथन प्रस्तुत करता है, और साथ ही उनके अनुभवों का एक मूल्यवान ऐतिहासिक रिकॉर्ड प्रदान करता है। अपने दृष्टिकोणों की बहुलता के माध्यम से, यह गिरमिट के व्यक्तिगत, अनुभवजन्य और समानता के पहलुओं को संप्रेषित करता है। गिरमिटिया एक हिंसक और दर्दनाक वैश्विक घटना थी जिसमें भारत से 1.3 मिलियन से अधिक लोगों का दुनिया भर के स्थानों पर प्रवास शामिल था। इस इतिहास को सही मायने में समझने के लिए, हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि इसने प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक व्यक्तिगत समुदाय को अतीत में कैसे प्रभावित किया और कैसे प्रभावित करता है। हमें यह भी समझना चाहिए कि गिरमिटिया लोगों ने अनुबंधित प्रथा के अत्याचारों का जवाब कैसे दिया, जिसमें नई संस्कृतियों और परंपराओं को गढ़ना भी शामिल है। 'कालापानी के पार' पढ़ने से, हम उन लोगों के करीब आ सकते हैं जिन्होंने उस काले पानी को पार किया, और ऐसा करने से हम उनके अनुभवों और योगदानों को समझ सकते हैं।

अपने विशेषज्ञतापूर्ण शोध और लेखन के माध्यम से, लेखिका सुनीता नारायण ने सिद्ध किया है कि गिरमिटिया साधन संपन्न लोग थे जिन्हें अपनी नई ज़िंदगी बनाने के दौरान भी भारी बाधाओं का सामना करना पड़ा। गिरमिटियों द्वारा जिए गए इतिहास, उनके द्वारा दिए गए योगदान और उनके द्वारा सिखाए गए सबक को बेहतर ढंग से समझने के

लिए, यह अनुशंसा की जाती है कि भारत से गिरमिटिया प्रवास के इतिहास में रुचि रखने वाले और इससे प्रभावित होने वाले सभी लोग सुनीता नारायण की महत्वपूर्ण नई किताब, 'कालापानी के उस पार' को पढ़ें।

समीक्षा पुस्तक : कालापानी के पार : उत्तर प्रदेश से फ़िजी तक: सुनीता नारायण, पेसिफ़िक स्टडीज़ प्रेस, सुवा, 2021 पृष्ठ 263

समीक्षक: डॉ. डोनिका बेलिसले, इतिहास की प्रोफ़ेसर, यूनिवर्सिटी ऑफ़ रेजिना, कनाडा

अनुवाद: डॉ दीप्ति अग्रवाल, अतिथि प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डोनिका बेलिसले *इतिहास की प्रोफ़ेसर, यूनिवर्सिटी ऑफ़ रेजिना, कनाडा।*

दीप्ति अग्रवाल *प्रवासी भाषा व साहित्य विशेषज्ञ, पूर्व अतिथि प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। संपर्क: deeptiaggarwalmail@gmail.com*

मॉरीशस और फ़ीजी: विश्व हिंदी सम्मेलन के झरोखे से

समीक्षक: राकेश पांडेय

विश्व में हिंदी को लेकर अनेक आयोजन होते रहते हैं, किंतु विश्व हिंदी सम्मेलन इनमें से अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसका आकर्षण और अनुभव सबसे अलग है। विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन विदेश मंत्रालय करता है, इसलिए उसमें तमाम प्रकार की सरकारी बाध्यताएं भी होती हैं। कृपाशंकर चौबे देश के जाने माने पत्रकार तो हैं ही साथ ही वे वर्तमान में अंतरराष्ट्रीय महात्मा गांधी हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के डायसपोरा विभाग में प्रोफ़ेसर के पद पर भी कार्यरत है। उनकी नई पुस्तक 'मॉरीशस और फ़ीजीः विश्व हिंदी सम्मेलन के झरोखे से' विगत दो विश्व हिंदी सम्मेलनों का यात्रा वृत्तांत तो है ही, साथ ही यह पुस्तक इन विश्व हिंदी सम्मेलनों का लेखा-जोखा भी है।

सन् 2018 में मॉरिशस में ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन में कृपाशंकर चौबे के पत्रकार होने के अनुभव का लाभ सरकार ने इस सम्मेलन में प्रकाशित होने वाले सम्मेलन समाचार के संपादन कार्य की ज़िम्मेदारी सौंप कर लिया। कृपाशंकर चौबे ने 12 वें विश्व हिंदी सम्मेलन फ़ीजी में भी इसी दायित्व का निर्वाह किया। इसलिए इन दोनों विश्व हिंदी सम्मेलनों को कृपाशंकर चौबे की दृष्टि से देखना और प्रामाणिक महत्व रखता है। मॉरीशस और फ़ीजी दोनों ही समुद्र के तटों पर बसे हुए द्वीप देश हैं, जहाँ की जंगली और पथरीली माटी में गिरमिटिया मज़दूरों ने अपने श्रम की ताक़त से भारतीय संस्कृति और अस्मिता को इन देशों में रोपा है। विश्व हिंदी सम्मेलन का इन देशों में होना केवल भाषाई आयोजन नहीं है बल्कि लगभग 190 वर्ष पूर्व गये श्रम साधक गिरमिटिया पूर्वजों को स्मरण करना भी है।

इस पुस्तक में पहले अध्याय मॉरीशस विश्व हिंदी सम्मेलन के वृतांत को खिदिरपुर घाट से आप्रवासी घाट का शीर्षक दिया गया है। क्योंकि गिरमिटिया मज़दूर कलकत्ता के खिदिरपुर घाट से ही इन देशों में गये थे। लेखक ने खिदिरपुर घाट पर मज़दूरों को समुद्र के रास्ते से ले जाने की प्रक्रिया का भी वर्णन इस पुस्तक में किया है। वे लिखते हैं कि डिपो में रखते हुए गिरमिटिया मज़दूर डीपुआ भाई बन जाते थे। डिपों में आप्रवासन अधिकारी उन्हें बताता था कि उन्हें अमुक देश में 5 साल तक की खेती का काम करना होगा। जब जहाज़ पर चढ़ने के दो दिन रह जाते थे तो उनकी मेडिकल जाँच होती थी। पानी का जहाज़ आने पर कुली डिपों से इन मज़दूरों को खिदिरपुर घाट पहुंचाया जाता था और यहाँ से उनकी यात्रा आरंभ होती थी। पुस्तक में इन मज़दूरों पर होने वाले अत्याचारों को भी वर्णित किया गया है कि उनसे मैला साफ़ कराया जाता था और आपत्ति करने वालों को पीटा भी जाता था। साथ ही यदि रास्ते में कोई बीमार होकर मर जाता था तो उसकी लाश समुद्र में फेंक दी जाती थी। इस प्रकार यह पुस्तक खिदिरपुर घाट की कहानी को बयां करती है। विश्व हिंदी सम्मेलन की बात कहने से पहले कृपाशंकर चौबे खिदिरपुर घाट की अपनी यात्रा का वर्णन इस पुस्तक में करते हैं। यहाँ घाट पर एक स्मारक भी सरकार ने बनाया है जिसका नाम 'अनुबंधित स्मारक' रखा गया है। इसी के बग़ल में सूरीनाम घाट भी है जहाँ से मज़दूर सूरीनाम ले जाए जाते थे। यह पुस्तक विश्व हिंदी सम्मेलन की यात्रा पर चलने से पहले गिरमिट काल की यात्रा पर ले जाती है।

यह पुस्तक मॉरीशस और फ़ीजी विश्व हिंदी सम्मेलनों का जीवंत दस्तावेज है। इस पुस्तक में विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरिशस के आयोजन स्थल के बारे में विस्तार से उल्लेख किया गया है कि मुख्य सभागार का नाम अभिमन्यु अनत के नाम पर रखा गया था। यह 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 18-20 अगस्त 2018 को था और अभिमन्यु अनत जी की मृत्यु जून माह में हो गई थी इसलिए उन्हें भी स्मरण किया गया। विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस के सभी सत्रों का विस्तार से वर्णन है और जिन विद्वानों ने इसमें सहभागिता की थी उनका भी उल्लेख चौबे जी ने विस्तार से किया है। उन्होंने अपने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा की विश्व हिंदी भूमिका को भी रेखांकित किया है। उन्होंने सम्मेलन समाचार के संपादन में अपनी भूमिका का बखूबी निर्वाह किया था, जिसकी झलक इस पुस्तक में भी दिखाई देती है।

यह पुस्तक विश्व हिंदी सम्मेलन के वृतांत को वर्णित करते-करते गिरमिटिया प्रथा के इतिहास की ओर भी ले जाती है। जहाँ पर एक ओर विश्व हिंदी सम्मेलन में होने वाले

आयोजन का विस्तार से वर्णन है दूसरी ओर मॉरीशस के ऐतिहासिक और पर्यटन स्थलों का गहराई से अवलोकन कराती है। मॉरीशस विश्व हिंदी सम्मेलन की पूर्व संध्या पर गंगा तलाब में आरती का आयोजन किया गया था, वहाँ से लेकर सभी तकनीकी सत्रों के बिन्दुवार उल्लेख और अंत में सम्मेलन में क्या-क्या प्रस्ताव पारित हुए थे उनकी भी जानकारी दी गई है। इस अवसर पर जितनी भी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित की गई थीं उनका भी उल्लेख प्रमुखता से किया है।

इस पुस्तक का दूसरा अध्याय फ़ीजी विश्व हिंदी सम्मेलन पर है। जिसका शीर्षक 'नागपुर से नादी' दिया गया है। यह 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 15-17 फ़रवरी 2023 को और फ़ीजी के नादी शहर में आयोजित किया गया था। फ़ीजी में नगोना की परंपरा को लेखक ने उद्धृत किया है। जब भी कोई अतिथि फ़ीजी में आता है तो उसके सम्मान में नगोना पेय प्रस्तुत किया जाता है, यह थोड़ा सा मादक होता है। विश्व हिंदी सम्मेलन उद्घाटन सत्र में विदेश मंत्री एस० जयशंकर का स्वागत भी नगोना से किया गया था। इस अध्याय में भी उन्होंने सभी सत्रों का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने अपनी होटल यात्रा से लेकर फ़ीजी के विभिन्न पर्यटन और ऐतिहासिक स्थलों तक का विस्तार से वर्णन किया है। यह पुस्तक विश्व हिंदी सम्मेलन के वृतांत तक सीमित नहीं है बल्कि पूर्वजों द्वारा सहे गए अत्याचार और संघर्ष की गाथाओं का भी दस्तावेज़ है। इस अध्याय में तोताराम सनाढ्य की पुस्तक 'फ़ीजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' वर्ष का विस्तार से वर्णन किया गया है और भारतीयों की संघर्ष गाथा को रेखांकित किया गया है। विश्व हिंदी सम्मेलन के समय में जाने वाले सहभागियों के साथ उनकी भूमिका को भी लेखक ने अपनी पुस्तक में स्थान दिया है। इस पुस्तक में आरंभ से लेकर अंत तक भारतीयों की संघर्ष गाथा का वर्णन मिलता है। इस पुस्तक को पढ़ कर अहसास होता है कि मॉरीशस और फ़िजी विश्व हिंदी सम्मेलन भाषाई उत्सव होने के साथ साथ इन देशों में भारतीयों की उपस्थिति और उनकी संघर्ष गाथा को गौरान्वित करने का उत्सव भी है। इस पुस्तक में लेखक को फ़ीजी द्वीप के पर्यटन स्थलों में भ्रमण का जो अवसर मिला उसका भी विस्तार से वर्णन किया गया है, इसके कारण पाठक फ़ीजी के पर्यटन स्थलों से भी परिचित होगा। इस पुस्तक में तीसरा और चौथा अध्याय मॉरीशस के सुप्रसिद्ध हिंदी लेखक रामदेव धुरंधर और फ़ीजी के सुप्रसिद्ध लेखक सुब्रमणी के साथ संवाद को लेकर है। दोनों वरिष्ठ साहित्यकारों ने अपनी लेखन प्रक्रिया और अपने साहित्य के बारे में विस्तार से बात की है। ये दोनों साक्षात्कार प्रवासी हिंदी साहित्य पर शोध कार्य कर रहे छात्रों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। हिंदी जगत में भी पाठकों को प्रवासी साहित्य को लेकर ये बातचीत उपयोगी सिद्ध होगी।

कृपाशंकर चौबे ने अपनी इस पुस्तक के माध्यम से विश्व हिंदी सम्मेलन के दस्तावेजीकरण करके एक महत्वपूर्ण कार्य किया है, जिसका लाभ आने वाले विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन में भी मिलेगा। संक्षेप में कहें तो यह पुस्तक मात्र आँखों से देखा यात्रा वृतांत नहीं है बल्कि गिरमिट काल से लेकर वर्तमान तक की भाव यात्रा भी है, जो आनंद के साथ साथ उद्वेलित भी करती है।

समीक्षा पुस्तक : मॉरीशस और फ़ीजी : विश्व हिंदी के झरोखे से, लेखक : कृपाशंकर चौबे, प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन, मुंबई, वर्ष 2024, पृष्ठ 112

समीक्षक: डॉ. राकेश पाण्डेय, प्रवासी भाषा व साहित्य विशेषज्ञ, संपादक एवं प्रकाशक एवं मुख्य सम्पादक 'प्रवासी संसार' पत्रिका

राकेश पांडेय *प्रवासी भाषा व साहित्य विशेषज्ञ, सम्पादक 'प्रवासी संसार' पत्रिका, संपर्क: rakeshkpandey@hotmail.com*

लेखक-मंडल

संपर्क सूत्र

अरुण मिश्र	नई दिल्ली	karundav@gmail.com
अर्चना पेन्यूली	डेनमार्क	apainuly@gmail.com
अलका धनपत	मॉरीशस	drdunputh@gmail.com
अशोक चक्रधर	दिल्ली	ashok@chakradhar.com
उषा देवी शुक्ला	दक्षिण अफ़्रीका	ushadevishukla56@gmail.com
उषा राजे सक्सेना	ब्रिटेन	usharajesaxena@gmail.com
ऋतु शर्मा नंनन पांडे	नीदरलैंड	Ritus0902@gmail.com
एल्मार रेनर	डेनमार्क	pxd337@hum.ku.dk
कुसुम नैप्सिक	अमरीका	kusum.knapczyk@duke.edu
चेतना वशिष्ठ	दिल्ली	vashishtchetna@gmail.com
जवाहर कर्नावट	भोपाल	jkarnavat@gmail.com
डिल्ली राम शर्मा संग्रौला	नेपाल	sdilliram6@gmail.com
डोनिका बेलिसले	कनाडा	sunita.d.narayan@gmail.com
ताकाहाशी आकीरा	जापान	atul53jp@zeus.eonet.ne.jp
दीप्ति अग्रवाल	दिल्ली	deeptiaggarwalmail@gmail.com
देवेन्द्र शुक्ल	आगरा	profdevendrashuklakhs1@gmail.com
धर्मयश	इंडोनेशिया	darmayasa@darmayasa.com

निकौला पौत्ज़ा	स्विटज़रलैंड	nicola.pozza@unil.ch
नूतन पाण्डेय	दिल्ली	pandeynutan91@gmail.com
पीटर नैप्सिक	अमरीका	knapczp@wfu.edu
पीटर फ़्रीडलैंडर	ऑस्ट्रेलिया	peterfriedlander@yahoo.com.au
पूनम गुप्त	कानपुर	mrsvpoonam@gmail.com
पैतून सांग्केओ	थाईलैंड	paitoon.songkaeo@gmail.com
फणीन्द्रराज निरौला	नेपाल	phniraula@gmail.com
बायोत रख़्मातोव	उज़्बेकिस्तान	bayot@list.ru
बीना शर्मा	आगरा	dr.beenasharma@gmail.com
बीरसेन जागासिंह	मॉरीशस	beersen.jugasing@icloud.com
बोरिस्लाव कोस्तोव	बुल्गारिया	kostovbk@yahoo.com
भावना सक्सैना	दिल्ली	bhawnasaxenactb@gmail.com
मनीषा रामरक्खा	मॉरीशस	mrsramrakha@gmail.com
राकेश पांडेय	दिल्ली	rakeshkpandey@hotmail.com
राजेश कुमार 'माँझी'	दिल्ली	manjhirk@gmail.com
राहुल पंवार	दिल्ली	localizewithrahul@gmail.com
विभा नायक	दिल्ली	shephalika.naik@gmail.com
विमलेश कान्ति वर्मा	दिल्ली	vimleshkanti@gmail.com
विवेक मणि त्रिपाठी	चीन	vivekmani.bhu@gmail.com
विवेक शुक्ल	डेनमार्क	vivekshukla@cas.au.dk
शुभंकर मिश्र	मॉरीशस	directordaemoe@gmail.com
शोभना देवी	फ़ीजी	shobhnad@unifiji.ac.fj
संजीता वर्मा	नेपाल	drsanjitaverma@gmail.com

सुनन्दा वर्मा	सिंगापुर	sunandaverma@yahoo.com
सुनीता नारायण	न्यूज़ीलैंड	sunita.d.narayan@gmail.com
सुब्रमनी	फ़ीजी	ramansubramani25@gmail.com
सुभाषिनी लता कुमार	फ़ीजी	Subashni.Kumar@fnu.ac.fj
सुरेन्द्र गंभीर	अमरीका	surengambhir@gmail.com
सुष्मिता पारीक	हैदराबाद	sushmitaparek@gmail.com
सोमदत्त शर्मा	दिल्ली	s88317566@gmail.com
हंसा दीप	कनाडा	hansadeep8@gmail.com
हरजेन्द्र चौधरी	दिल्ली	visproharosa@gmail.com
हिदेआकि इशिदा	जापान	ishardas920@gmail.com
हीरोको नागासाकी	जापान	nagasakihiroko.hmt@osaka-u.ac.jp
हेमचन्द्र पाँडे	दिल्ली	hcpande1@rediffmail.com
हेमांशु सेन	लखनऊ	drhemanshusen@gmail.com

रचनाकारों से अनुरोध

- ❖ गगनांचल हेतु भेजे जाने वाले आलेख मौलिक, अप्रकाशित तथा अप्रसारित होने चाहिए। इसकी उद्घोषणा आलेख के प्रारंभ में होनी चाहिए।
- ❖ कृपया अपनी रचना यूनीकोड फॉन्ट में ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि कृतिदेव या किसी अन्य फॉन्ट में हो तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।
- ❖ यदि रचना हस्तलिखित है, तो वह सुस्पष्ट अक्षरों में लिखी होनी चाहिए। ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।
- ❖ रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अत: उनकी प्रतिलिपि (फोटोकॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- ❖ आलेख की शब्द-सीमा न्यूनतम 1500 या अधिकतम 3000 शब्दों की है।
- ❖ रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त परिचय भी प्रेषित करें।
- ❖ रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन) फोटो अवश्य भेजें।
- ❖ रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें। यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- ❖ स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।
- ❖ रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- ❖ आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया editor-iccr@govcontractor.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पाँच सहस्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पाँच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्सावर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान–शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृति व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

महानिदेशक	:	**23378103, 23370471**
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	**23370784, 23379315**
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	**23379249, 23370794**
हिंदी अनुभाग	:	**23370237, 23379309-10**
		एक्स. 2256/2272

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा गत 47 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद् की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद् द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकार्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

....

....

....

....

पत्रिका भिजवाने का पता

....

....

....

....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनाचंल वर्ष.............	एक वर्ष ₹ 500 (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200 (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10% पुस्तक विक्रेता 25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.. दिनांक ....

रु./US$ .... बैंक...

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ:

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002, भारत

फोन नं. 011-2339309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....

नाम ....

पद ....

दिनांक ....

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

printed at : www.sitafinearts.co.in